अध्याय – 1

पर्यावरण व पर्यावरण अध्ययन

(Environment and Environment Studies)

संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 पर्यावरण

1.3 पर्यावरण की अवधारणा

1.4 पर्यावरण की परिभाषाएं

1.5 पर्यावरण की विशेषताएं

1.6 पर्यावरण के अंग

1.7 पर्यावरण के तत्त्व

1.8 पर्यावरण के प्रकार

1.9 पर्यावरण का महत्त्व

1.10 पर्यावरण अध्ययन का अर्थ

1.11 पर्यावरण अध्ययन की अवधारणा

1.12 आज क्यों आवश्यक है पर्यावरण शिक्षा

1.13 पर्यावरण अध्ययन के उद्देश्य

1.14 पर्यावरण अध्ययन की बहुआयामी प्रकृति

1.15 पर्यावरण अध्ययन का विषय क्षेत्र

1.16 पर्यावरण अध्ययन का महत्त्व

1.17 स्वयं जांच प्रश्न

1.18 सारांश

1.19 शब्दावली

1.20 स्वयं जांच उत्तर

1.21 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1.22 अभ्यासात्मक–प्रश्न

1.0 प्रस्तावना (Introduction)

पृथ्वी एकमात्र ऐसा ग्रह है जिस पर जीवन पाया जाता है। पृथ्वी की विशालता के बावजूद जीवन उसके बहुत ही संकीर्ण क्षेत्र में पाया जाता है जिसे जीवमंडल कहते हैं। सूर्य ऊर्जा का एकमात्र स्त्रोत है जो विविध जीवन प्रकारों के रूप में सतत् परस्पर क्रिया को सम्भव बनाता है। इस इकाई में, पाठ्यक्रम की पहली इकाई के कारण शब्द 'पर्यावरण' के समग्र अर्थ को बताया गया है। व्यापक शब्दों में पर्यावरण में जीवों से प्रभावित वह

प्रत्येक चीज जिसमें भौतिक और सजीव दोनों कारक सम्मिलित हैं। भौतिक और सजीव कारकों के बीच क्रिया से सम्बन्धों का एक तन्त्र बनाता है जिसे पारिस्थितिक तन्त्र कहते हैं। सदियों से मनुष्य ने पृथ्वी और पर्यावरण को वस्तुतः असीमित संसाधन सूक्ष्म और क्रमिक परिवर्तनों ने हमारे पर्यावरण को अनेक भिन्न तरीकों से मानव जनसंख्या में वृद्धि का विशेष उल्लेख किया गया है। हम आशा करते हैं कि इस अध्याय से आपको पर्यावरण और उसके विभिन्न घटकों को बेहतर तरीके से समझने में सहायता मिलेगी यह इकाई आपको पर्यावरण के प्रबन्धन और इसे भावी पीढ़ियों के लिए अपनी बुद्धि और कौशल का उपयोग करने में सक्षम बनाएगी।

1.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बातों को समझ पाएँगे–

- पर्यावरण की अवधारणा व परिभाषाओं का ज्ञान।
- पर्यावरण की विशेषताओं व अंगों को समझ पाएंगे।
- पर्यावरण के तत्त्व व प्रकारों को समझ सकेंगे।
- पर्यावरण अध्ययन, आवश्यकता, उद्देश्य व इसकी बहुआयामी प्रकृति को जान सकेंगे।
- पर्यावरण अध्ययन का विषय–क्षेत्र व महत्त्व को गहराई से जान पाएँगे।

1.2 पर्यावरण (Environment)

पर्यावरण शब्द परि+आवरण से मिलकर बना है परि का अर्थ है चारों ओर और आवरण का अर्थ है घिरा हुआ। अर्थात् पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है चारों ओर से घिरा हुआ। जैसे नदी, पहाड़, तालाब, मैदान, पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, वायु, वन, मिट्टी आदि सभी हमारे पर्यावरण के घटक हैं। हम सभी इन घटकों का दैनिक जीवन में भरपूर उपयोग करते हैं अर्थात् हम इन घटकों पर ही निर्भर हैं। हमारी धरती और इसमें आसपास के कुछ हिस्सों को पर्यावरण में शामिल किया है इसमें सिर्फ मानव ही नहीं जीव–जन्तु और पेड़–पौधे भी शामिल किए गए हैं। यहां तक कि निर्जीव वस्तुओं को भी पर्यावरण का हिस्सा माना गया है। कह सकते हैं कि धरती पर आप जिस किसी चीज को देखते और महसूस करते हैं वह पर्यावरण का हिस्सा है। इसमें मानव, जीव–जन्तु, पहाड़, चट्टान जैसी चीजों के अलावा हवा, पानी, ऊर्जा आदि को भी शामिल किया जाता है।

1.3 पर्यावरण की अवधारणा (Concept of Environment)

प्रत्येक जीव का एक विशिष्ट परिवेश अथवा माध्यम होता है जिसके साथ वह निरंतर परस्पर क्रिया करता है। अपना भोजन प्राप्त करता है और जिसके प्रति वह पूर्णतः अनुकूलित होता है। यह परिवेश प्राकृतिक पर्यावरण है। 'शब्द' प्राकृतिक पर्यावरण से हमारे मन में भुदृश्य जैसे मृदा जल, पर्वत अथवा मरूस्थल के व्यापक आयाम आते हैं जिन्हें अधिक यथार्थ रूप से भौतिक अथवा अजैविक प्रभावों जैसे आर्द्रय, तापमान मृदा के गठन और वायु की गुणवत्ता में परिवर्तन के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसमें जीव विज्ञान अथवा जैविक प्रभाव भी सूक्ष्म जीवों और जन्तुओं के रूप में सम्मिलित होते हैं अतः पर्यावरण को किसी जीव के परिवेश को सजीव और निर्जीव घटनाओं के कुल योग के रूप में परिभाषित किया है।

हम सबसे पहले आरम्भ करते हैं कि पर्यावरण क्या है? यह अंग्रेजी शब्द 'एन्वायरमेंट' का हिन्दी रूपान्तरण है। जिसकी उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द 'एन्वायमैंट' से हुई है, जिसका अर्थ है घेरे हुए अथवा इर्द–गिर्द जबकि 'मेन्ट' का अर्थ है– क्रिया यानी पर्यावरण (एन्वायरमेंट) जीव और प्रकृति के बीच क्रिया है। मनुष्यों के लिए कई प्रकार के पर्यावरण होते हैं जैसे घर का पर्यावरण, राजनैतिक पर्यावरण इत्यादि, लेकिन हम केवल प्राकृतिक पर्यावरण की चर्चा करेंगे। वायु, जल, थल, पादक, जन्तु तथा अन्य जीव। प्रकृति में कोई भी जीव अपने पर्यावरण से परस्पर क्रिया करके उसे प्रभावित करता है और उसके द्वारा प्रभावित होता है। अतः पर्यावरण वायु, जल और

स्थल का कुल योग है। किसी जीव के जीवन पर पर्यावरण के प्रभाव का सबसे प्रमुख गुण पर्यावरणीय तत्त्वों की परस्पर क्रिया है ये अजैविक और जैविक कारक गतिक प्रकृति होते हैं और जीवन में प्रति क्षण एक–दूसरे से परस्पर क्रिया करते हैं कोई भी जीव अकेले अन्य जीव उसके पर्यावरण के माप के रूप में होते हैं आप जानते होंगे कि प्रत्येक जन्तु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पादपों मूल रूप से पादपों पर निर्भर होता हैं जो अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। पादप भी कुछ बातों जैसे पुष्पों के परागण और फलों तथा बीजों के प्रकीर्णन पर निर्भर करते हैं। जैविक पर्यावरण में सूक्ष्मदर्शीय जीव जिन्हें प्लवक कहते हैं और जलवीय पादक तथा अपघटक सम्मिलित हैं। पादक विभिन्न प्रकार के जैसे तलाबी, निमग्न पाद तथा आंशिक रूप से निमग्न पादक और तालाब के किनारे उगने वाले वृक्ष सम्मिलित हैं। जन्तुओं में कीट, कृमि, मृदु कवची जीव टैडपोल, मेंढक, पक्षी और विभिन्न प्रकार की मछलियां होती हैं। अपघटक मृतपोषी जैसे जीवाणु और कवक हैं।

अभी आप ये समझ गए होंगे कि पर्यावरण स्थैतिक नहीं होते हैं। जैविक और अजैविक कारक प्रवाह में और निरन्तर परिवर्तनशील रहते हैं। जीव विस्तार पर्यावरण में हुए परिवर्तनों को एक सीमा तक ही सहन कर पाते हैं जो उनका सहनशील विस्तार कहलाता है।

1.4 पर्यावरण की परिभाषाएं (Definations of Environment)

- पी. जिस्बर्ट के अनुसार, ''जो किसी एक वस्तु को चारों ओर से घेरे हुए हैं तथा उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है पर्यावरण होता है।''
- संयुक्त राष्ट्र ने पर्यावरण को परिभाषित करते हुए कहा है, ''पर्यावरण व समग्र तथा बाह्य कारक है जो किसी प्राणी के जीवन, वृद्धि तथा उत्तरजीविता को प्रभावित करते हैं।''
- भारत का पर्यावरण (सांक्षम) अधिनियम 1986 के अनुसार, ''किसी प्राणी के जीवन वृद्धि भौतिक और जैविक परिवेश तथा आपसी पारस्परित सम्बन्ध पर्यावरण कहलाता है।''
- जे.एस. रॉस के अनुसार, ''पर्यावरण या वातावरण वह बाह्य शक्ति है जो हमें प्रभावित करती हैं।''
- डगलस एवं हालैण्ड के अनुसार, ''पर्यावरण वह शब्द है जो समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावों और परिस्थितियों का सामूहिक रूप से वर्णन करता है जो जीवधारी के जीवन, स्वभाव, व्यवहार तथा अभिवृद्धि, विकास तथा प्रौढ़ता पर प्रभाव डालता है।''
- हर्स, कोकवट्स के अनुसार, ''पर्यावरण इन सभी बाहरी दशाओं और प्रभावों का योग है तो प्राणी के जीवन तथा विकास पर प्रभाव डालता है।''
- डॉ. डेविज के अनुसार, ''मनुष्य के सम्बन्ध में पर्यावरण से अभिप्राय भूतल पर मानव के चारों ओर फैले उन सभी भौतिक स्वरूपों से है जिसके वह निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं।''
- डडले स्टेम्प के अनुसार, ''पर्यावरण प्रभावों का ऐसा योग है जो किसी जीव के विकास एवं प्रकृति को परिस्थितियों के सम्पूर्ण तथ्य आपसी सामंजस्य से वातावरण बनाते हैं।''
- ए.बी. सक्सेना के अनुसार, ''पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जो पर्यावरण के बारे में हमें संचेतना, ज्ञान और समझ देती है। इसके बारे में अनुकूल दृष्टिकोण का विकास करती है और इसके संरक्षण तथा सुधार की दिशा में हमें प्रतिबद्ध करती हैं।''
- शिक्षाशास्त्री टॉमसन के अनुसार, ''पर्यावरण ही शिक्षक है शिक्षा का काम छात्र को उसके अनुकूल बनाना है।''
- विश्व शब्दकोश के अनुसार, ''पर्यावरण उन सभी दशाओं, प्रणालियों तथा प्रभावों का योग है जो जीवों व उनकी प्रजातियों के विकास जीवन एवं मृत्यु को प्रभावित करता है।''

- हर्सकोविट्ज के अनुसार, ''जो तथ्य मानव जीवन और विकास को प्रभावित करते हैं उस सम्पूर्ण तथ्यों का योग पर्यावरण कहलाता है भले ही वे तथ्य सजीव हो अथवा निर्जीव।''
- जर्मन वैज्ञानिक फिटिंग के अनुसार, ''पर्यावरण जीवों के परिवृत्तिय कारकों का योग है। इसमें जीवन की परिस्थितियों के सम्पूर्ण तथ्य आपसी सामंजस्य से वातावरण बनाते हैं।''
- विश्व के लिए शिक्षा युनेस्को यूरोप के अनुसार, ''पर्यावरण शिक्षा के विषय क्षेत्र अन्य पाठ्यक्रमों की तुलना में कम पारिभाषित है। फिर भी यह सर्वमान्य है कि जैविक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मानवीय संसाधनों से सामग्री प्राप्त होती हो। इस शिक्षा के लिए संप्रत्यात्मक विधि सर्वोत्तम है।''
- निकोलर्स के अनुसार, ''पर्यावरण उन समस्त बाहरी दशाओं तथा प्रभावों का योग है जो प्रत्येक प्राणी के जीवन विकास पर प्रभाव डालते हैं।''
- सी.सी. पार्क के अनुसार, ''मनुष्य एक विशेष समय पर जिस सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण या वातावरण कहा जाता है।''

  उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जो कुछ भी हमारे चारों ओर विद्यमान है तथा यह हमारे रहन–सहन दशाओं तथा मानसिक क्षमताओं को प्रभावित करता है, पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण में वे सभी परिस्थितियां भी आती हैं जो हमारे जीवन पर प्रभाव डालती हैं। हमारा घर, मौहल्ला, गाँव, शहर सभी हमारे पर्यावरण के अंग हैं क्योंकि वे सभी हमारे जीवन पर प्रभाव डालते हैं। 'पर्यावरण' मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाविष्ट हैं।

  पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन सम्पूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है जो मानव को परावृत करती है तथा उसके क्रियाकलापों को अनुशासित करती है।

1.5 पर्यावरण की विशेषताएं (Charactistics of Environment)

पर्यावरण की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- जैविक एवं अजैविक तत्त्वों के योग को पर्यावरण कहते हैं।
- जैविक विविधता, प्राकृति वास तथा ऊर्जा पर्यावरण के मुख्य तत्त्व होते हैं।
- पर्यावरण में समय के साथ–साथ परिवर्तन होता रहा है।
- पर्यावरण जैविक तथा अजैविक पदार्थों के कार्यात्मक सम्बन्ध पर आधारित होता है।
- पर्यावरण की कार्यात्मक ऊर्जा संचार पर निर्भर करती हैं।
- पर्यावरण अपने जैविक पदार्थों का उत्पादन करता है, जो विभिन्न जलवायु एवं विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग होता है। पर्यावरण सामान्यतः पारिस्थितिकीय संतुलन स्थापित करने की ओर अग्रसर रहता है।
- पर्यावरण एक बंद तंत्र है। इसके अंतर्गत प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र स्वतः नियंत्रक क्रियाविधि, जिसे होमियोस्टोटिक क्रियाविधि कहते हैं के द्वार नियंत्रित होता है।

1.6 पर्यावरण के अंग (Components of Environment)

1. **स्थल मण्डल** – जल–तल से ऊँचा उठा हुआ भाग स्थल मण्डल है और इसके अन्तर्गत धरातल का लगभग 29 प्रतिशत भाग आता है। इस स्थल में तीन परतें है। पहली परत भू–पृष्ठ की है और धरती से इस परत की गहराई 100 कि.मी. है। इस परत में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ व शैलें समाई हुई है। इस भाग का औसत घनत्व 2.7 है।

दूसरी परत को उपाचयमण्डल कहते हैं, जिसकी गहराई स्थल मण्डल के नीचे 200 कि.मी. तक है तथा जिसमें सिलिकन और मैनीशियम की प्रधानता है और इसका औसत घनत्व 3.5 आँका गया है। तीसरी परत को परिणाम मण्डल कहते हैं, जो पृथ्वी का केन्द्रीय मण्डल है और कठोर धातुओं से बना हुआ है, जिसमें निकल व लोहे की प्रधानता है।

2. **जल मण्डल** – पृथ्वी का समस्त जलीय भाग जलमण्डल कहलाता है, जिसमें सभी सागर व महासागर सम्मिलित हैं। भूपटल के 71 प्रतिशत भाग पर जल एवं 29 प्रतिशत भाग पर थल का विस्तार है। पृथ्वी की समह पर क्षेत्रफल लगभग 51 करोड वर्ग कि.मी है। जिसमें 36 करोड़ वर्ग कि.मी. पर जल का विस्तार है।

3. **वायु मण्डल** – पृथ्वी के चारों ओर वायु का सैकड़ों कि.मी. मोटा आवरण है, जिसे वायुमण्डल कहा जाता है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वायु का यह घेरा पृथ्वी को जकड़े हुए है और धरातल से इसकी ऊँचाई साधारणतः 800 कि.मी. मानी जाती है परन्तु खोज के पश्चात् यह ऊँचाई 1300 कि. मी. आँकी गयी है। वायु मण्डल में भी अनेक परत होती है।

1.7 पर्यावरण के तत्त्व (Elements of Environment)

पर्यावरण के तत्त्वों को दो समूहों में विभक्त किया जाता है। (अ) अजैव तत्त्व तथा (ब) जैव तत्त्व। अजैव तत्त्व में जलवायु, स्थल, जल, मृदा, खनिज एवं चट्टान तथा भौगोलिक स्थिति प्रमुख है। जैव तत्त्वों में पौधे और जीव–जन्तु प्रमुख हैं।

1. अजैव तत्त्व समूह

- जलवायविक कारण– सूर्य, प्रकाश एवं ऊर्जा, तापमान, हवा, वर्षा, आर्द्रता, वायुमण्डलीय गैस आदि।
- स्थलजात कारक– उच्चावच, ढाल, पर्वत, दिशा आदि।
- जल स्रोत– सागर, झील, नदी, भूमिगत जल आदि।
- मृदा– मृदा रूप, मृदा जल, मृदा वायु आदि।
- खनिज एवं चट्टाने– धात्विक एवं अधात्विक खनिज, ऊर्जा खनिज एवं चट्टानें।
- भौगोलिक स्थिति– तटीय, मध्यदेशीय, पर्वतीय आदि।

2. जैव तत्त्व समूह

इसमें वनस्पति, जीव–जन्तु, मानव एवं सूक्ष्म जीव आते हैं। पर्यावरण के जैव एवं अजैव तत्त्व समूह अपनी विशेषता के अनुसार पर्यावरण का निर्माण करते हैं। चूंकि ये आपस में गुंथे हुए हैं अतः इनमें होने वाले परिवर्तनों का व्यापक प्रभाव पड़ता है।

1.8 पर्यावरण के प्रकार (Types of Environment)

पर्यावरण एक जैविक एवं भौतिक संकल्पना है। इसलिए इसके अन्तर्गत केवल प्राकृतिक वातावरण को ही नहीं बल्कि मानवजनित पर्यावरण जैसे– सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण को भी शामिल किया जाता है। सामान्यतः पर्यावरण को तीन भागों में वर्गोकृत किया जाता है –

1) प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)

इसे भौगोलिक पर्यावरण कहते हैं। प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत ने जैविक एवं अजैविक तत्त्व शामिल है जो पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप में पाये जाते हैं। इसी आधार पर प्राकृतिक पर्यावरण को जैविक एवं अजैविक भागों में बांटा जाता हे। जैविक तत्त्व में सूक्ष्म जीव, पौधे एवं जन्तु शामिल है तथा अजैविक के अन्तर्गत ऊर्जा, उत्र्जन, तापमान, उष्मा प्रवाह जल, वायुमण्डलीय गैसें, वायु अग्नि गुरुत्वाकर्षण, उच्चावच एवं मृदा शामिल हैं।

2) मानव निर्मित पर्यावरण (Man-made Environment)

मानव निर्मित पर्यावरण के अंतर्गत वे सभी स्थान सम्मिलित हैं, जो मानव के कृत्रिम रूप से निर्मित किए हैं। अतः कृषि क्षेत्र, औद्योगिक शहर, वायुपतन अन्तरिक्ष स्टेशन इत्यादि। मानव निर्मित पर्यावरण के उदाहरण है। जनसंख्या वृद्धि एवं विकास के कारण के कारण मानव निर्मित पर्यावरण का क्षेत्र एवं प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

1.9 पर्यावरण का महत्त्व (Importance of Environment)

जीव चाहे किसी भी प्रकार के पर्यावरण में हो उन सभी उत्तरजीविता के लिए जीवन निर्वहन तत्त्वों की आवश्यकता होती है। इनमें वायु जिससे हम सांस लेते हैं, भोजन और जल जिन्हें हम ग्रहण करते हैं और आश्रय, प्राकृतिक (गुफाएं और वृक्षों में बने घर) अथवा कृत्रिम आवास (जैसे मकान) सम्मिलित है। पर्यावरण एक मात्र स्रोत है जो इन समर्थन/निवर्हन करने तत्त्वों को प्रदान करता है।

हम भूमि का उपयोग फसलें उगाने के लिए करते हैं। मृदा पादपों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक प्रदान करती है। भूमि किसी क्षेत्र में पाए जाने वाले मृदा प्रकारों का निर्धारण करता है स्वयं मृदा एक स्थान से दूसरे स्थान से भिन्न होती है। कुछ मृदाएं पोषकों से समृद्ध होती है और अन्य में उनकी कमी होती है। जलवायु तथा अल्पकालिक मौसम परिवर्तनों की पहचान मुख्य रूप से पवन, तापमान, दाब और वर्षा से होती है इनका निर्धारण वायुमण्डल के गुणों से होता है। वायुमण्डल की वायु सजीवों का ऑक्सीजन प्रदान करती हैं।

1.10 पर्यावरण अध्ययन का अर्थ (Meaning of Environment Studies)

पर्यावरण अध्ययन परिवेश के सामाजिक और भौतिक घटकों की अन्तःक्रियाओं का अध्ययन है। वास्तव में ये घटक मिलकर ही हमारे सम्पूर्ण परिवेश का निर्माण करते हैं। अतः जब हम अपने परिवेश, अर्थात् इर्द–गिर्द उपस्थित उपरोक्त सामाजिक और भौतिक घटकों को समझने का प्रयास करते हैं तो वही पर्यावरण अध्ययन कहलाता है। सामाजिक घटकों में संस्कृति (भाषा, मूल्य, दर्शन) तथा भौतिक/प्राकृतिक घटकों में हवा, पानी, मिट्टी, धूप, पशु–पक्षी, खनिज, जंगल/वनस्पति आदि शामिल हैं। इस दृष्टि से पर्यावरण अध्ययन में हम एक ओर तो मानव और इसके द्वारा निर्मित समाज एवं सामाजिक क्रियाकलापों का अध्ययन करते हैं और दूसरी ओर प्रकृति एवं उसकी कार्य–प्रणाली के पीछे के नियमों का अध्ययन किया जाता है।

पर्यावरण अध्ययन कोई एक विषय क्षेत्र नहीं है, बल्कि विभिन्न विषय क्षेत्रों का एक समूह है। यह तो हम जानते हैं कि हमारे परिवेश में मुख्यतः दो प्रकार के घटक हैं– प्राकृतिक एवं सामाजिक। इनका अध्ययन क्रमशः विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता हे। इसके अतिरिक्त अपने परिवेश की सार्थक समझ बनाने हेतु हमें इतिहास बोध एवं भौगोलिक समझ की भी आवश्यकता होती है। अतः पर्यावरण अध्ययन में इतिहास और भूगोल भी शामिल हैं। इस प्रकार सीखने के जिस क्षेत्र को हम पर्यावरण अध्ययन कहते हैं, उसमें विज्ञान–सामाजिक अध्ययन, इतिहास एवं भूगोल समाहित होते हैं। इन क्षेत्रों की पद्धतियों एवं सामग्री में पर्याप्त भिन्नताएं हैं। बच्चों के लिए चाहे इन भिन्नताओं को रेखांकित न करें लेकिन शिक्षकों को तो ये भिन्नताएं ध्यान में रखनी होंगी क्योंकि इसका सीधा असर सिखाने के तौर तरीकों पर पड़ता है।

1.11 पर्यावरण अध्ययन की अवधारणा

पर्यावरण के अध्ययनों को ही पर्यावरणीय अध्ययन के नाम से जाना जाता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो रासायनिक, भौतिक, चिकित्सीय, जीव, जन स्वास्थ्य तथा कृषि विज्ञान आदि की शाखाओं से संयुक्त है।

पर्यावरण के अध्ययन करने के निम्न कारण हो सकते हैं–

- जीवन के प्रत्येक स्वरूप में पर्यावरण का अपना स्थान है। पर्यावरण सभी के जीवन में एक महत्त्व रखता है, वह महत्त्व छोटा या बड़ा दोनों हो सकता है।

- पृथ्वी पर मानवीय जीवन को अस्तित्व में रखने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि जैव विविधता का संरक्षण किया जाए इस कारण पर्यावरण के अध्ययन की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है।
- प्रकृति की संरचना अति विशिष्ट है। प्रकृति के जो भी कार्य और क्रियाएं हैं, इसके पीछे अवश्य ही कोई निश्चित उद्देश्य होता है। कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप में प्रकृति सदैव मानव के जीवन को प्रभावित करती है। यदि प्रकृति में थोड़ा बदलाव आ जाए तो मनुष्य के जीवन पर बड़े संकट आ सकते हैं। इस कारण पर्यावरणीय संरचना का ध्यान रखना प्रत्येक मानव के लिए अति महत्त्वपूर्ण है।
- जनसंख्या और संसाधनों के मध्य अनुकूल सम्बन्ध स्थापित हो, इसके लिए पर्यावरणीय अध्ययन आवश्यक है।
- पर्यावरण का अध्ययन करके ही पर्यावरण के विषय में जागरूकता का प्रचार एवं प्रसार करके सतत विकास और आर्थिक उन्नति की बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

1.12 आज क्यों आवश्यक है पर्यावरण शिक्षा (Why Environmental Education is Necessary Today)

1. पर्यावरणीय शिक्षा को पर्यावरण की स्थिति का आंकलन करने में सक्षम होना चाहिए और पर्यावरण की क्षति का निवारण करने में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। दैनिक जीवन में सामान्य बदलाव पर्यावरण को सुधारने में ये बहुत बड़ा योगदान दे सकते हैं।
2. पर्यावरण की सुरक्षा हर किसी की जिम्मेदारी है। इसलिए पर्यावरण शिक्षा एक समूह या समाज तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि हर व्यक्ति को पर्यावरण के बचाव सम्बन्धी जानकारी होनी चाहिए।
3. अगर बच्चों को संसाधनों, पर्यावरणीय प्रदूषण, मृदा अपरदन, अवनति और संकटग्रस्त पौधों एवं विलुप्त जावनरों के बचाव तथा संरक्षण के बारे में सिखाया जाता है तो पर्यावरण के संरक्षण में काफी हद तक सुधार हो सकता है।
4. भारत के विश्वविद्यालयों में शिक्षण, अनुसंधान और प्रशिक्षण पर काफी ध्यान दिया गया है। 20 से अधिक विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थानों में पर्यावरण इंजीनियरिंग, संरक्षण और प्रबन्ध, पर्यावरण स्वास्थ्य और सामाजिक विज्ञान जैसे पाठयक्रमों को पढ़ाया जाता है।
5. भारत सरकार ने पर्यावरण और वन मंत्रालय के समर्थन से अगस्त 1984 में पर्यावरण शिक्षा केंद्र स्थापित किया था। इसके प्रमुख कार्यों में से एक यह है कि पर्यावरण शिक्षा की भूमिका को उचित मान्यता देने का प्रयास किये जाये। यह इससे सम्बन्धित कई शैक्षिक कार्यक्रमों को चलाती है।
6. बच्चों के पास आज प्राकृतिक दुनिया के बारे में जानने के लिए बिल्कुल भी समय नहीं है। इससे न केवल बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है बल्कि उन्हें अपने परिवेश और प्रकृति से विलगाव जैसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण पर्यावरण की दृष्टि से शिक्षित पीढ़ी के लिए इस शिक्षण की जरूरी आवश्यकताओं में से एक है।
7. इसलिए पर्यावरण शिक्षा को एक पाठयक्रम के रूप में संयोजित करना और छात्रों को बचपन से ही प्रकृति के बारे में अवगत कराना एक सही विकल्प है।

1.13 पर्यावरण अध्ययन के उद्देश्य (Objectives/Aims of Environment Studies)

यदि शिक्षा का उद्देश्य समझ का विकास है तो प्राथमिक शिक्षा में हम उस विकास की आधारभूमि ही तैयार कर सकते हैं और यदि पर्यावरण–अध्ययन वह क्षेत्र है जो उपरोक्त विषयों को समाहित करता है, तो पर्यावरण अध्ययन का शिक्षाक्रम इन सभी क्षेत्रों में वह आधारभूमि तैयार करने में समर्थ होना चाहिए और यही

पर्यावरण अध्ययन की जटिलता/समस्या है। ये विषय–क्षेत्र (विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भूगोल एवं इतिहास) विभिन्न प्रकार की क्षमताओं की मांग करते हैं। इन विभिन्न मांगों को एक सूत्र में पिरोना कठिन जान पड़ता है। अतः शिक्षाक्रम निर्माता जानकारियों की सूची (जो बच्चों को पढ़ाना है) बनाकर छूट जाना चाहते हैं।

जानकारी के ढेर को हर विद्यार्थी एक सुव्यवस्थित और परस्पर सम्बन्धित ज्ञान के ढाँचे के रूप में व्यवस्थित नहीं कर पाता। अतः शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों का ध्यान केवल जानकारी एकत्र करने पर अटक जाता है। वे उसी को उद्देश्य समझने लगते हैं। लेकिन परस्पर असम्बद्ध जानकारी न तो व्यक्ति को निर्णय लेने में मदद करती है, न ही वह आगे विकास की आधारभूमि तैयार करती है। परन्तु यदि एक बार हम समझ–बूझकर स्वीकार कर लें कि हमारा उद्देश्य केवल जानकारी हस्तान्तरण नहीं है, बल्कि उन मूल क्षमताओं का विकास करना है जो जानकारी एकत्र करने, ज्ञान के सृजन और उसके व्यावहारिक उपयोग को सम्भव बनाती हैं, तो इसके लिए रास्ते ढूंढना असम्भव नहीं है। हमें लगता है कि पर्यावरण अध्ययन के सभी घटक विषयों के साथ न्याय कर सकने वाला ढाँचा बन सकता है। इस ढाँचे के केन्द्र में अध्ययन की वैज्ञानिक प्रक्रिया को तथा उस से सम्बन्धित क्षमताओं को रखना होगा। मगर सांस्कृतिक पक्ष की समझ की बात पूरी तरह से वैज्ञानिक प्रक्रिया में नहीं आएगी। इतिहास बोध एवं भौगोलिक समझ के लिए भी इस ढाँचे में स्थान बनाना होगा। इन सबसे मिलकर वह बौद्धिक उपकरण बन जाएगा जिसका उपयोग परिवेश के सार्थक अध्ययन के लिए किया जा सकेगा। उल्लेखनीय है कि इस बौद्धिक उपकरण के विकास एवं आगे सतत् उपयोग से सम्बन्धित रूझानों/अभिवृत्तियों को उक्त ढाँचे में स्थान देना होगा।

1.14 पर्यावरण अध्ययन की बहुआयामी प्रकृति (The Multidisciplinary Nature of Environmental Studies)

- पर्यावरण जन जागृति हेतु आजकल अनेक प्रयत्न किया जा रहे हैं, जिनका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक है। पर्यावरण की सुरक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है।
- भारत में पर्यावरण अवबोध का एक उत्तम उदाहरण चिपको आन्दोलन है।
- पर्यावरण जीव जगत् का आधार अर्थात् जीवन का स्रोत है।
- पर्यावरण वह आवरण है जिसने सम्पूर्ण जीवन मण्डल को आवृत्त कर रखा है।
- पर्यावरण अध्ययन का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। यह स्थल मण्डल, जल मण्डल, वायु मण्डल तथा जीव मण्डल को समाहित करता है।
- अच्छा पर्यावरण वह है तो प्रदूषण रहित, स्वास्थ्यवर्द्धक, मनोरंजन की सुविधा, शिक्षा की सुविधा आदि हो।
- मानव सभ्यताओं का विकास पर्यावरण से समाकूलन द्वारा ही सम्भव हो सका है।
- प्राचीन काल में पर्यावरण सम्बन्धी समस्या नहीं थी क्योंकि प्रकृति से सामंजस्य था, जनसंख्या की कमी थी और अधिकांशतः मानव की पर्यावरण पर निर्भरता थी।
- पर्यावरण संरक्षण तथा संतुलित विकास के लिए पर्यावरण अध्ययन की आवश्यकता है।
- पर्यावरण का अध्ययन विविध विषयों से होने के कारण इसे विविध विषयी कहा जाता है। विज्ञान के विविध विषय जैसे– वनस्पति शास्त्र, जन्तु विज्ञान, रसायन विज्ञान, जैव विज्ञान, भूगोल आदि हैं।
- पारिस्थितिकी पर्यावरण की अन्तर निर्भरता का द्योतक है तथा जीवन विज्ञान पर्यावरण अध्ययन का प्रमुख पक्ष है।

- मृदा विज्ञान एव पर्यावरण अध्ययन एक–दूसरे के पूरक हैं।
- पर्यावरण अध्ययन एक ओर विज्ञान से सम्बन्धित है तो दूसरी ओर सामाजिक विज्ञानों से भी।
- पर्यावरण एवं भूगोल का एक निकट सम्बन्ध हे। पर्यावरण भूगोल वर्तमान में एक शाखा के रूप में उभरा है।
- पर्यावरण अध्ययन एक ऐसा विषय है जो विविध आयामी है।

1.15 पर्यावरण अध्ययन का विषय क्षेत्र (Scope of Environment Studies)

- पर्यावरण अध्ययन के विषय क्षेत्र में निम्न को सम्मिलित किया जाता है–
- पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी का अध्ययन।
- पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के विभिन्न घटकों का अध्ययन।
- पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के घटकों का एक–दूसरे के साथ क्रियात्मक सम्बन्धों का अध्ययन।
- प्राकृतिक पारिस्थिति तन्त्रों का अध्ययन।
- मानव एवं पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन।
- मानव द्वारा अपनाए गए अनुकूलन तथा रूपान्तरणों का अध्ययन।
- पर्यावरण घटकों की क्षेत्रीय भिन्नता तथा उनका पारिस्थितिकी पर प्रभाव का अध्ययन।
- प्रमुख पारिस्थितिक तन्त्रों में जीवन के विकास के स्वरूप, आवास एवं समाज का अध्ययन।
- मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं– कृषि, उद्योग–धन्धे आदि का अध्ययन तथा उनका पर्यावरण पर प्रभाव का अध्ययन।
- पर्यावरण प्रदूषण के स्वरूप, कारणों एवं प्रभावों का अध्ययन।
- पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के सम्बन्ध का अध्ययन।
- क्षेत्रीय पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन एवं उनके निराकरण के उपायों का अध्ययन।
- प्राकृतिक आपदाओं– भूकम्प, बाढ़, सूखा, अकाल, ज्वालामुखी, चक्रवर्तीय तूफान आदि का अध्ययन।
- प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का पर्यावरण पर प्रभाव का अध्ययन तथा संसाधन संरक्षण का अध्ययन।
- पर्यावरण अवकर्षण का विभिन्न क्षेत्रों में स्तर एवं प्रभाव का अध्ययन।
- जनसंख्या, नगरीकरण तथा औद्योगीकरण का पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तन्त्र पर प्रभाव का अध्ययन।
- विकासात्मक गतिविधियों– बांध बनाने, सड़क बनाने आदि का पर्यावरण पर प्रभाव का अध्ययन।
- पर्यावरण प्रबन्ध का अध्ययन।
- संसाधन संरक्षण एवं पर्यावरण प्रदूषण के निवारण में व्यक्ति एवं समाज की भूमिका का अध्ययन।
- पर्यावरण अवबोध का विकास करना।
- पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी विधियों का निर्माण करना, उनकी व्याख्या करना तथा अनुपालना आदि।

1.16 पर्यावरण अध्ययन का महत्त्व (Importance of Environment Studies)

वर्तमान में पर्यावरण अध्ययन का बहुत अधिक महत्त्व है। बढ़ते प्रदूषण से इसका महत्त्व और अधिक बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण के महत्त्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **पर्यावरण जीवन का आधार** – पर्यावरण अध्ययन का सर्वाधिक महत्त्व इसलिए है कि पर्यावरण जीवन का आधार है। पृथ्वी जल पर जैविक विकास, संवर्द्धन और रक्षा के लिए पर्यावरण ऐसी दशा का निर्माण करता है जिसके बिना जीवन की कल्पना असम्भव है। इस प्रकार पर्यावरण जीवन का आधार है।
2. **पर्यावरण के विविध घटकों का जीवन पर प्रभाव** – सभी जीव अपने पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होते हैं तथा पर्यावरणीय घटकों का जीवों पर प्रभाव पड़ता है। सन्तुलित पर्यावरण में जीवों का स्वस्थ विकास होता है तथा असन्तुलित पर्यावरण में पर्यावरण के घटक स्वस्थ जीवन को बाधित करते हैं। पर्यावरणीय अध्ययन में इन घटकों को प्रभावित करने वाले कारणों तथा उनके निराकरण का अध्ययन किया जाता है।
3. **पर्यावरण प्रदूषण** – पर्यावरण प्रदूषण आज की मुख्य पर्यावरण समस्या है। यह आधुनिक युग का एक बहुचर्चित विषय व आधुनिक सभ्यता द्वारा उत्पन्न एक गम्भीर व भयानक समस्या है। प्रदूषण वायु, जल व स्थल के रासायनिक, भौतिक व जैविक गुणों में होने वाला ऐसा अवांछनीय परिवर्तन है जो कि मानव जीवन, औद्योगिक प्रगति, जीवन की परिस्थितियों एवं सांस्कृतिक धरोहर के लिए अत्यन्त हानिकारक है। वर्तमान में पर्यावरण में मुख्यतः जल, वायु, ध्वनि, मृदा तथा रेडियोधर्मी प्रदूषण तीव्रता से बढ़ते जा रहे हैं। इनका मानव स्वास्थ्य पर विपरीत असर हो रहा है। मानव अनेक बीमारियों का शिकार हो रहा है तथा उसका स्वाभाविक विकास रूक रहा है। पर्यावरण अध्ययन द्वारा पर्यावरण प्रदूषण को रोका जा सकता है तथा मानव को उसके दुष्प्रभावों से बचाया जा सकता है।
4. **पर्यावरण विकास का मूल** – पर्यावरण अध्ययन में प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग से ही मनुष्य विकास करता है। इस प्रकार पर्यावरण विकास का मूल है। मनुष्य अपने बौद्धिक ज्ञान से पर्यावरण का उपयोग कर विकास करता है।
5. **जलवायु में परिवर्तन** – जलवायु में परिवर्तन भी पर्यावरण की एक प्रमुख समस्या है। जलवायु परिवर्तन के कारण ध्रुवों पर की बर्फ पिघल रही है। इससे समुद्रों का जल स्तर धीमे–धीमे बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन से सूखों में वृद्धि होगी तथा खाद्यान्न उत्पन्न में कमी आयेगी। वर्षा की मात्रा में कमी आयेगी तथा मिट्टी में नमी भी कम होगी। जलवायु परिवर्तन से अनेक संक्रामक रोगों का प्रकोप भी बढ़ रहा है। पर्यावरण अध्ययन द्वारा समुचित उपाय करके जलवायु परिवर्तन पर अंकुश लगाया जा सकता है।
6. **विश्व तापमान में वृद्धि** – विश्व तापमान में वृद्धि पर्यावरण की सबसे प्रमुख समस्या है। पर्यावरण प्रदूषण हरित गृह प्रभाव, ओजान क्षयीकरण आदि अनेक पर्यावरणीय समस्याओं का सम्मिलित प्रभाव विश्व तापमान में वृद्धि कर रहा है। विश्वव्यापी तापन का सम्पूर्ण जीव समुदाय पर हानिकारण प्रभाव पड़ रहा है। विश्व तापमान में वृद्धि के नजदीकी तथा दूरगामी दोनों प्रभाव मानव स्वास्थ्य व पर्यावरण अवनयन प्रमुख हैं तथा दूरगामी प्रभावों में संक्रमण एवं सम्बन्धी रोग, खाद्य समस्या, अकाल तथा जैव विविधता को खतरा पैदा होगा। इसके अतिरिक्त तापमान वृद्धि से ध्रुवीय तथा उच्च पर्वतीय बर्फ पिघलने से समुद्री किनारे पर स्थित कई शहर डूब सकते हैं। पर्यावरण अध्ययन में विश्वव्यापी तापन के कारण तथा निराकरण के उपायों का अध्ययन किया जाता है।
7. **जल संकट** – वर्तमान में जल संकट भी निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वर्षा की कमी, वनों के विनाश के कारण जल का मिट्टी से सम्बन्ध टूटना, जल प्रबन्ध का अभाव, जल प्रदूषण, जल की व्यर्थ बर्बादी, बढ़ती मांग आदि के कारण जल संकट निरन्तर बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण अध्ययन द्वारा जल संकट की स्थिति पर भी काबू पाया जा सकता है।

8. **वन एवं जीव–जन्तु संरक्षण का ज्ञान** – वन्य जीवों के आवास वन, धरती पर बड़े जटिल बुद्धिमान तथा महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र हैं। वन विनाश के साथ ही वन्य जीवों के विनाश की कहानी आरम्भ हुई थी। तीव्र पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण भी वन्य जीवों का विलोपन हुआ है। ऊष्ण कटिबन्धीय वनों में विश्व की 50 प्रतिशत जैव विविधता पायी जाती है। लेकिन तीव्र वनोन्मूल से यहाँ वन्य जीवों में कमी आई है। सागर तल में परिवर्तन के कारण सागर तटीय दलदली क्षेत्रों तथा प्रवाल भित्तियों के जीव भी संकट में हैं। इस प्रकान वनों के अंधाधुंध दोहन, विनाशकारी वनाग्नि, भीषण भूस्खलन एवं पशु–पक्षियों व सरीसृपों की विविध प्रजातियों के अवैध शिकार के कारण इनको खतरा बढ़ गया है। पर्यावरण अध्ययन में इनके संरक्षण के उपाय किये जाते हैं।

9. **ठोस अपशिष्ट निस्तारण** – तीव्र गति से बढ़ रहे नगरीकरण तथा औद्योगिकरण ने ठोस अपशिष्टों के निस्तारण की समस्या को जन्म दिया है। विश्व में प्रतिवर्ष 24 बिलियन टन गैर–ईंधन खनिजों का खान औद्योगिक प्रक्रिया के लिए किया जा रहा है, जिसका लगभग 90 प्रतिशत अन्त में प्रक्रिया में आकर ठोस अपशिष्टों को जन्म देता है। ठोस अपशिष्टों में खनन से उत्पन्न अपशिष्ट, कृषि अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, नगरपालिका अपशिष्ट, रेडियोएक्टिव अपशिष्ट आदि प्रमुख हैं। इनके निस्तारण के अभाव में भूमि प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है। पर्यावरण अध्ययन में इनके निस्तारण के उपाय किये जाते हैं।

10. **संसाधन संरक्षण एवं ऊर्जा का समुचित उपयोग** – पर्यावरण अध्ययन से संसाधन संरक्षण तथा ऊर्जा के समुचित उपयोग का ज्ञान होता है।

11. **पर्यावरण प्रबन्धन में योगदान** – पर्यावरण अध्ययन द्वारा ही पर्यावरण प्रबन्धन को प्रभावी बनाया जा सकता है।

1.17 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) पर्यावरण का अर्थ व परिभाषाओं का वर्णन करें।

2) पर्यावरण अध्ययन के विषयक्षेत्र को स्पष्ट करें।

3) पर्यावरण अध्ययन के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

1.18 सारांश (Summary)

पर्यावरण अध्ययन हर उस मुद्दे से सम्बन्धित है जो किसी जीव को प्रभावित करता है। संसाधनों के लिए मनुष्य की प्रचंड भूख व प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की उसकी इच्छा के कारण पर्यावरण के साथ टकराव हर दिन के साथ बढ़ता जाएगा। पर्यावरण पर मनुष्य हर दिन के प्रतिकूल जो प्रभाव पड़ रहा है, विकास के नाम पर जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया जा रहा हे। उसे कैसे रोका जा सकता है, कैसे सरंक्षण किया जा सकता है। इसलिए पर्यावरण का गहन अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

1.19 शब्दावली (Glossary)

- **जैवमण्डल** – जैवमण्डल में पृथ्वी के हर उस अंग का समावेश है जहां जीवन पनपता है।
- **पर्यावरण प्रबंधन** – पर्यावरण प्रबंधन का तात्पर्य पर्यावरण के प्रबंधन में नहीं है बल्कि आधुनिक मानव समाज के पर्यावरण के साथ सम्पर्क तथा उन पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रबंधन से है।
- **ठोस अपशिष्ट प्रबंधन** – इसका मुख्य उद्देश्य कूड़े–करकट में अधिकत्म मात्रा में उपयोगी संसाधन प्राप्त करना और ऊर्जा का उत्पादन करना है ताकि कम से कम मात्रा में अपशिष्ट पदार्थों को लैंडफिल क्षेत्र में फेंकना न पड़े।

1.20 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 1.2, 1.3 व 1.4 देखें।

2) सन्दर्भ 1.15 देखें।

3) सन्दर्भ 1.16 देखें।

1.21 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

1.22 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) पर्यावरण को पारिभाषित करें तथा इसके प्रकार, तत्त्वों व अंगों का वर्णन करें।

2) पर्यावरण अध्ययन का संक्षिप्त रूप से वर्णन करें।

3) पर्यावरण अध्ययन के विषय–क्षेत्र पर प्रकाश डालें।

4) पर्यावरण अध्ययन के महत्त्व पर नोट लिखें।

*****

अध्याय – 2
पारिस्थितिक तंत्र
(Ecosystem)

संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा

2.3 पारिस्थितिक तंत्र की विशेषताएं

2.4 पारिस्थितिक तंत्र के घटक : जैविक और अजैविक

2.5 पारिस्थितिक तंत्र की संरचना

2.6 पारिस्थितिक तंत्र के कार्य

2.7 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

2.8 खाद्य शृंखला

2.9 वेब भोजन

2.10 पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार

2.11 स्वयं जांच प्रश्न

2.12 सारांश

2.13 शब्दावली

2.14 स्वयं जांच उत्तर

2.15 सन्दर्भ–ग्रन्थ

2.16 अभ्यासात्मक–प्रश्न

2.0 प्रस्तावना (Introduction)

पृथ्वी सूर्य के इर्द–गिर्द चक्कर एकमात्र ऐसा ग्रह है, जहां जीवन का होना ज्ञात है। पृथ्वी की विशालता के बावजुद, जीवन पृथ्वी की एक बहुत ही पतली परत को अवरित करता है। इस आवरण को जीवमंडल कहते हैं। सूर्य एकमात्र स्त्रोत है जो जीवन प्रकारों में परस्पर सतत परस्पर क्रिया को संभव बनाता है। पिछले अध्याय में पर्यावरण की संकल्पना और उसकी परिभाषा के विषय मे पढ़ चूके हैं। आप जीवो के जिसमें हम भी सम्मिलित हैं। बाहरी व भीतरी दोनों से परिचित हो चुके हैं। किसी भी जीव का बाहरी तथा भीतरी पर्यावरण का उसके अस्तित्व और उत्तरजीविता पर प्रभाव पड़ता है। किसी भी जीव के बाहरी पर्यावरण के घटकों की क्रिया और उसमें क्रिया का संबंध एक की संरचन करते हैं। जिसे पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। इस अध्याय में यह भी समझाया गया है कि किस प्रकार हम सजीवों रूप में पारिस्थितिक तंत्र के अन्य सजीव और निर्जीव घटकों की परस्पर क्रिया करते हैं। आप भी जानेंगे कि पारिथितिक तंत्र सक्रिय प्रयास द्वारा, अव्यवस्था की प्रवृत्तियों का प्रतिरोध करके किस प्रकार समस्थैतिक स्थिति बनाए रखने में सक्षम होते हैं। सदियों से मनुष्य पृथ्वी और पर्यावरण को वस्तुतः असीमित संसाधन माना है लेकिन सूक्ष्म और क्रमिक परिवर्तन ने हमारे पर्यावरण को अनेक

भिन्न तरीकों से परिवर्तित किया है। हम आशा करते हैं कि इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप हमारे पर्यावरण के प्रबंधन और भावी पीढ़ीयों के लिए उसे स्वस्थ बनाए रखने के लिए अपने बुद्धि और कौशल का श्रेष्ठ उपयोग करने में सक्षम होगें।

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित बिन्दुओं को समझ पाएंगे–

- पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा, परिभाषा व विशेषताओं को अच्छी तरह से समझ सकेंगे।
- पारिस्थितिक तंत्र के घटक, संरचना व प्रकार्य तथा इसके ऊर्जा प्रवाह को समझ सकेंगे।
- पारिस्थितिक तंत्र को खाद्य श्रृंखला, वेब भोजन व इसके प्रकारों का संक्षिप्त रूप में वर्णन कर पाएंगे।

2.2 पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा (Concept of Ecosystem)

जैसे कि आप जानते हैं कि हम सभी पृथ्वी के एक निश्चित भाग में रहते हैं जहां पादप और हमारे समेत सभी जंतु, जीवन, भोजन, जल, आश्रय और साथियों के लिए एक–दूसरे के साथ संबंध विकास कर लेते हैं। इस विविक्त एकक् में सजीव और निर्जीव पर्यावरण घटक है जो अपनी सरंचना, घटको और क्रियाशीलता के संदर्भ में परस्पर निर्भर और परस्पर संबंधित होते हैं। ऐसे विविक्त एकक् को पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं।

पारितंत्र का अर्थ एंव परिभाषा (Meaning, Definition of Ecosytem)

पारितंत्र या पारिस्थित तन्त्र से मिलकर बना है। पारिस्थित का अर्थ– पर्यावरण से तथा तन्त्र का अर्थ–इसके विभिन्न घटकों के मध्य होने वाली अन्तः क्रियाओं से होता है। पारिस्थित तन्त्र या पारितंत्र में जैविक एवं अजैविक दोनों प्रकार के घटक शामिल होते हैं। पारितंत्र शब्द का प्रयोय पारिस्थितिकविद् ए.जी. टान्सले ने वर्श 1935 में किया था। पारितंत्र अनेक खाद्य जाल बनाते हैं जो पारिस्थित तंत्र के भीतर इन जीवों की आत्मनिर्भरता और ऊर्जा प्रवाह को दिखाते हैं।

परिभाषा

वातावरण के साथ जीवों का समुदाय जिसमें वे रहते हैं को पारितंत्र कहा जाता है। पारिस्थिति तंत्र के भीतर को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है–

- आर्यर टान्सलें के अनुसार, ''पारिस्थिति तंत्र पर्यावरण के सभी जैविक तत्वों के परस्पर एकीकरण बनाने के परिणामस्वरूप है''। टान्सले परितंत्रो को न केवल प्राकृतिक इकाईयों के रूप में बल्कि मानसिक आईसोलेट के रूप में भी मानते हैं। पारिस्थिति तंत्र अवधारण का मुख्य विचार यह है कि जीवित जीव अपने स्थानीय परिवेश में हर दूसरे तत्त्व को प्रभावित करते हैं। पारिस्थिति तंत्र की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है। ''जीव समूह या विशेष बोयमी का आवास तथा उनका पर्यावरण दोनो की सम्मिलित प्रक्रिया पारिस्थिति तंत्र कहलाता है।
- युजीन ओदुम के अनुसार, ''एक ईकाई जिसमें सभी शामिल हो जो भौतिक वातावरण को प्रभावित करे कि प्रणाली के भीतर ऊर्जा का एक स्पष्ट रूप से परिभाषित पोषण संरचना, बोयोटिक विभिन्नता और सामग्री चक्र एक पारिस्थिति तंत्र है।
- भूगोल परिभाषा कोष के अनुसार, ''पारिस्थिति तंत्र पौधों तथा जंतुओं का जैव समुदाय होता है जिसका एक विशेष पर्यावरण से सम्बन्ध होता है।
- स्ट्राहलर के अनुसार, ''जीव समूहों के परस्पर क्रियाशील घटकों का पूर्णतः तालमेल को पारिस्थिति तंत्र कहते हैं। उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि पारितंत्र जीव व उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा

उनके भौतिक कारकों से सम्बन्ध एक–दूसरे को प्रभावित करने व तालमेल बैठने को इंगित करता है। अतः पारिस्थिति तंत्र एक गतिक तंत्र हैं जिसमें सजीव और निर्जीव घटकों के बीच परस्पर क्रिया सम्मिलित होती है और ऊर्जा का निवेश, स्थानांतरण, भंडारण और निगम अनिवार्य पदार्थों का चक्रण होता है। पारिस्थितिक तंत्र में होने वाली सभी प्रक्रियाएं ऊर्जा पर निर्भर होती हैं। विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र संयोजन में स्पीशीज़ की संख्या और स्थान प्रकार में, अजैविक अवयवों के प्रकारों और सापेक्ष अनुपातों में और स्थान और काल में अत्यधिक विभिन्न दर्शाते हैं। इसलिए पारिस्थितिक तंत्र का अध्ययन उसकी संरचना और कार्य पर निर्भर है।

2.3 पारिस्थितिक तंत्र की विशेषताएं (Charactristics of Ecosystem)

1. संरचनात्मक विशेषताएं

पारिस्थितिक तंत्र के सरचनात्मक आयाम का अर्थ उन सभी तत्त्वों से है जो एक पारिस्थितिक तंत्र को बनाते हैं– व्यक्ति और पादकों तथा जंतुओ के समुदाय तथा पारिस्थितिक उपस्थित अजैविक कारक/संरचनात्मक घटकों में सम्मिलित है–

अजैविक घटक : निर्जीव घटक

- अकार्बनिक यौगिक– कार्बन नाइट्रोजन, कार्बन डाईऑक्साइड, जल
- अकार्बनिक यौगिक– प्रोटीन, कार्बोबहाइड्रेट, लिपिड जो अजैविक को जैविक आयमों से जोड़तें है।

सजीव घटक : जैविक घटक

- उत्पाद – पादप
- उपभोक्ता – प्राथमिक, द्वितीय, तृतीयक
- अपघटक – मृतपोशी

2. क्रियात्मक विशेषताएं

क्रियात्मक आयामो का अर्थ उन सभी प्रक्रियाओं और परत्मपरक्रियाओं से हैं जिन्हें पारिस्थितिक तंत्र में जीवों द्वारा प्रयोग किया जाता है–

- ऊर्जा – चक्र
- आहार – श्रृखलाएं
- विविधता –जीवों के बीच परस्परसंबद्धता
- पोषक चक्रजैव भू–रासायनियकचक्र
- अनुक्रमण

2.4 पारिस्थितिक तंत्र के घटक : जैविक और अजैविक (Components of an Ecosystem : Biotic and Abiotic)

एक पारिस्थितिक तंत्र के घटक : जैविक और एबियोटिक कोई भी पारिस्थितिक तंत्र के जैविक तथा अजैविक घटकों एवं तत्त्वों पर आधारित होता है।

1) जैविक घटक

जैविक घटकों में पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी तथा सूक्ष्म जीव सम्मिलित हैं।

जैविक घटकों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

- **उत्पादक (पेड–पौधे) अथवा आटोट्राफ**

सामान्यतः पेड़–पौधे जो प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन तैयार करते हैं, उत्पादक अथवा आटोट्राफ कहलाते हैं। उत्पादकों में सूक्ष्म जीव भी सम्मिलित हैं। सागर की तली में पाए जाने वाले सूक्ष्म–प्राणी में इसी वर्ग में सम्मिलित हैं।

- **उपभोक्ता अथवा सर्वाहारी**

इस वर्ग में शाकाहारी, मांसाहारी तथा सर्वाहारी जीव (पशु–पक्षी तथा मानव) सम्मिलित हैं।

- अपघटक तथा ह्रासकारी

कीड़े–मकौड़े, फफूंदी तथा ह्रासकारी जीवाणुओं को अपघटक कहते हैं। ये जैविक पदार्थों का ह्रास करके पर्यावरण में मिश्रित कर हैं।

2) अजैविक घटक

अजैविक घटकों में जलावायु, तापमान, वर्षण, आर्द्रता, गैसे, जल, सागरीय लहरें, मिट्टी, लवणता, पी. एच. खनिज, टोपोग्राफी अथवा प्राकृतिक आवास सम्मिलित हैं। अजैविक घटकों के द्वारा ही ऊर्जा संचार का मंच तैयार होता है।

- **प्रकाश, तापमान, जल तथा जलवायु**

सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा तथा प्रकाश सभी थल एवं जल के पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अनिवार्य है। किसी परितंत्र में सूर्य–ऊर्जा, प्रकाश–संश्लेषण के द्वारा प्रवेश करती है। जब सूर्य प्रकाश पृथ्वी पर पड़ता है उस प्रकाशित समय को प्रकाश–संश्लेषण का समय कहते हैं।

विषुवत रेखा पर सूर्य प्रकाश लगभग 12 घण्टे का होता है, परंतु विषुवत रेखा से ध्रुव की ओर जाते हुए दिन के प्रकाशित भाग का समय मौसम के अनुसार घटता–बढ़ता रहता है। उदाहरण के लिये ग्रीष्म ऋतु में दिन बड़ा तथा शीत ऋतु में दिन का समय छोटा होता है। इस प्रकार पेड़–पौधे तथा पशु–पक्षी अपने पर्यावरण तथा मौसम से अनुकूलता उत्पन्न कर लेते हैं।

- **वायु तथा मृदा**

रासायनिक प्रक्रिया की प्रगति तापमान पर निर्भर करती है। किसी स्थान एवं क्षेत्र के दैनिक, वार्षिक अधिकतम तथा न्यूनतम तापमान में विविधता पाई जाती है जिसके कारण रासायनिक प्रक्रिया की प्रगति भिन्न–भिन्न होती है। किसी प्रदेश के जलचक्र तथा जल की उपलब्धता वहाँ की वर्षा तथा वाष्पीकरण पर निर्भर करती है।

जल की गुणवत्ता पर उसमें पाये जाने वाले खनिजों, लवणता, प्रदूषण तथा विषाक्तता का प्रभाव पड़ता है। दैनिक मौसम का किसी क्षेत्र अथवा प्रदेश की जलवायु पर प्रभाव पड़ता है, जो वनस्पति के प्रतिरूपों को प्रभावित करती है। यह सभी कारण सामूहिक रूप से किसी परितंत्र पर प्रभाव डालते हैं।

एक महान भूगोलवेत्ता अन्वेषक तथा वैज्ञानिक एलेक्जेंडर वान हम्बोल्ट 1769–1859, के अनुसार किसी क्षेत्र तथा प्रदेश के पेड़–पौधों तथा पक्षियों एवं जंतुओं में समान परिस्थितियों में समानता पाई जाती है। एण्डीज पर्वत में वर्षा के भ्रमण तथा भौगोलिक अध्ययन के पश्चात् हम्बोल्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पर्वत की ऊँचाई पर जाते हुए, प्राकृतिक वनस्पति के प्रकार एवं प्रतिरूपों में परिवर्तन होता जाता है।

एण्डीज पर्वत के इक्काडोर तथा पेरू देशों में शोध कार्य करते समय हम्बोल्ट ने वनस्पति के ऊँचाई के कटिबंध की संकल्पना प्रस्तुत की। उनके अनुसार, जैसे विषुवत रेखा से ध्रुव की ओर जाते हुए प्राकृतिक वनस्पति में परिवर्तन होता है, ठीक उसी प्रकार पर्वत की ऊँचाई पर जाते हुए वनस्पति के प्रकार एवं प्रतिरूपों में परिवर्तन पाया जाता है।

सभी पर्वतों की प्राकृतिक वनस्पति में ऊँचाई कटिबन्ध देखे जा सकते हैं। प्रत्येक प्राकृतिक वनस्पति कटिबंध में सूर्यताप तथा वर्षण में पारिस्परिक सम्बन्ध पाया जाता है, इस कारण पर्वत की विभिन्न ऊँचाईयों पर वनस्पति के प्रकार एवं प्रतिरूपों में भी परिवर्तन पाया जाता है।

इन सामान्य परिस्थितियों के अतिरिक्त प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक स्थानीय जलवायु को जन्म देते हैं। उदाहरण के लिये वनों के धरातलीय भाग में सूर्य का प्रकाश कम पहुंचता है। चीड़ के जंगलों में धरातल पर पहुँचने वाले सूर्य प्रकाश की मात्रा में लगभग 20 प्रतिशत की कमी आती है जबकि बर्च–बीच के जंगलों में सूर्य प्रकाश में 50–75 प्रतिशत की कमी आती है।

चटियल एवं बंजर क्षेत्रों की तुलना में जंगलों में आर्द्रता की मात्रा 5 प्रतिशत रहती है। जिन क्षेत्रों में जंगल होते हैं, वहाँ का सर्दी के मौसम में तापमान तुलनात्मक रूप से अधिक रहता है और गर्मी के मौसम में तापमान अपेक्षाकृत कम रहता है। सूक्ष्म स्तर पर इस प्रकार की जलवायु विविधता पवर्तीय ढलानों तथा घाटियों में देखी जा सकती है।

संक्षेप में यह जा सकता है कि पर्वतों की ऊँचाई कटिबंधों की पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं में विभिन्नता एवं विविधता पाई जाती है। प्रत्येक कटिबंध के तापमान, सूर्यातप, आर्द्रता वर्षा तथा वषर्ण में भी पाया जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र एवं चक्र पारिस्थितिकी तंत्र घटकों का एक जटिल समूह होता है। यह सभी घटक स्वाधीन तथा एक–दूसरे पर निर्भर होकर कार्य करते हैं। पारितंत्र में जैविक तथा अजैविक घटक होते हैं और सभी सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा पर आश्रित होते हैं। केवल अथाह सागर की तली एवं गुफाओं के अंधेर में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव की कीमोसिंथेसिस पर निर्भर रहते हैं।

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र को दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जिसका एक घटक जैविक होता है, जिसमें उत्पादक उपभोक्ता तथा गलाने–सड़ाने वाले उपघटक सम्मिलित हैं। दूसरा घटक अजैविक घटक है, जिनमें गैस, शैल (चट्टाने), हवा, जल, आर्द्रता इत्यादि सम्मिलित हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण अजैविक चक्रों का संक्षिप्त वर्णन निम्न दिया गया है–

1) गैसीय तथा सेडिमेंट्र चक्र

हाइड्रोजन, ऑक्सीजन तथा कार्बन प्रकृति के जैविक–विश्व के मूल तत्त्व हैं। ये तीनों तत्त्व यौगिक रूप से पृथ्वी के कुल जैविक पदार्थ का 99 प्रतिशत भाग हैं। वास्तव में सभी जैविक मौलिक्यूलस में हाइड्रोजन (H) तथा कार्बन (C) पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त नाइट्रोजन, मैगनिशियम, कैल्शियम, पोटाशियम, सल्फर तथा फॉस्पोट जैसे महत्त्वपूर्ण पोषक भी जैविक विकास के लिए अनिवार्य हैं।

प्रकृति में कई रासायनिक चक्र प्रकार्य करते रहते हैं। ऑक्सीजन, कार्बन तथा नाइट्रोजन सभी गैसों के चक्र वायुमंडल में उपस्थित हैं। अन्य तत्त्व में सेडीमैंट्री चक्र मौजूद हैं। जो खनिजों पर आधारित हैं। सेडीमैंट्री में विशेष रूप से फॉस्फोरस, केल्शियम तथा सल्फर सम्मिलित रहते हैं। ये तत्त्व जैविक एवं अजैविक दोनों ही घटकों में सम्मिलित रहते हैं। ये पुनर्चक्र प्रक्रिया बायोकेमिकल साइकिल कहलाती है जिसमें जैविक तथा अजैविक दोनों सम्मिलित रहते हैं।

2) कार्बन एवं ऑक्सीजन चक्र

कार्बन तथा ऑक्सीजन दोनों पर एक साथ विचार किया जाएगा, क्योंकि इन दोनों चक्रों में भारी घनिष्ठता पाई जाती है। वायुमंडल ऑक्सीजन का भंडार है। ऑक्सीजन, भूपटल में भी पाई जाती है, परंतु वह रासायनिक रूप से अन्य तत्त्वों में मिश्रित होने के कारण उपलब्ध नहीं है।

कार्बन गैस का सबसे भंडार सागर तथा महासागरों में हैं। पृथ्वी के कुल कार्बन का 93 प्रतिशत महासागरों में पाया जाता है। जिसकी मात्रा 39000 बिलियन टन है; परंतु रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा कार्बनडाईऑक्साइड में मिश्रित है।

सागरों में कार्बनडाऑक्साइड गैस प्रकाश संश्लेषण के द्वारा उत्पन्न होती है जिसें सूक्ष्म जैविक फाइटोप्लंकटन सहायक होते हैं। कार्बन का संचय कुछ कार्बोनेट–खनिजों में हो जाता है। चूना–पत्थर कार्बन एकत्रित करने वाला इसी प्रकार का एक उदाहरण है।

वायुमंडल में लगभग 700 बिलियन टन कार्बन पाया जाता है। कोयल तथा तेल के भंडारों की तुलना में यह बहुत कम है। कोयले तथा पेट्रोलियम के रूप में लगभग 1200 बिलियन टन हाइड्रोकार्बन पाया जाता है। वायुमंडल में पाई जाने वाली कार्बनडाईऑक्साइड के मुख्य स्रोतों ज्वालामुखी, जैविक श्वसन तथा उद्योगों एवं परिवहन में जलाई जाने वाली लकड़ी, कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस इत्यादि हैं।

3) नाईट्रोजन चक्र

वायुमंडल की गैसों में सबसे अधिक नाइट्रोजन गैस पाई जाती है। वायुमंडल में नाइट्रोजन की मात्रा 78. 084 प्रतिशत है। जैविक अणु की उत्पत्ति में नाइट्रोजन की बड़ी भूमिका होती है। जीवन के लिए अनिवार्य प्रोटीन का उत्पादन नाइट्रोजन गैस ही से होता है।

भारी मात्रा के बावजूद नाइट्रोजन जैविक घटकों को सीधे रूप से प्राप्त नहीं होती। नाइट्रोजन की प्राप्ति उन बैक्टीरियाओं के द्वारा होती है जो नाइट्रोजन का उत्पाद करते हैं। ये बैक्टीरिया पेड़–पौधों और दलहनों की जड़ों में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए दलहनों जैसे मटर– उड़द, अरहर, मूंग, मसूर, सोयाबीन, लोबिया, गुआर, मूंगफली तथा हरी खाद की फसलें (सनी, पटसन, ढेंचा), बरहीम आदि की जड़ों में नाइट्रोजन उत्पन्न होती है।

दलहन की जड़ों में नाइट्रोजन की गाँठ रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा नाइट्रैट ($NO3$) तथा अमोनिया ($NH3$) पैदा करती है। इस नाइट्रोजन का पेड़–पौधे उपयोग करते हैं। अंततः पेड़–पौधों तथा जीव–जन्तु गलने–सड़ने पर बैक्टीरियाओं के द्वारा वायुमंडल में विलय हो जाते हैं।

2.5 पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना (Ecosystem Strcuture)

पारिस्थितिकी संरचना जैविक और अजैविक दोनों घटकों के संगठन द्वारा विशेषता है। इसमें हमारे पर्यावरण में ऊर्जा का वितरण शामिल है। इसमें उस विशेष वातावरण में प्रचलित जलवायु परिस्थितियों को भी शामिल किया गया है।

1. जैविक घटक (Biological Component)
2. अजैविक घटक (Abiotic Components)

पारिस्थितिकी में जैविक और अजैविक घटक परस्पर जुड़े हुए हैं। यह एक खुली प्रणाली है जहां ऊर्जा और घटक सीमाओं के पार प्रवाहित हो सकते हैं।

1. जैविक घटक

जैविक घटक पारिस्थितिकी में सभी जीवन को संदर्भित करते हैं। पोषण के आधार पर जैविक घटकों को स्वपोषी, विषमपोषी और मृतपोषी या (अपघटक) में वर्गीकृत किया जा सकता है।

2. अजैविक घटक

अजैविक घटक पारिस्थितिकी के निर्जीव घटक हैं। इसमें हवा, पानी, मिट्टी, खनिज, धूप, तापमान, पोषक तत्त्व, हवा, ऊँचाई, मैलापन आदि शामिल हैं।

2.6 पारिस्थितिकी तंत्र के कार्य (Functions of Ecosystem)

- यह आवश्यक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है, जीवन प्रणालियों का समर्थन करता है और स्थिरता प्रदान करता है।
- यह जैविक और अजैविक घटकों के बीच पोषक तत्त्वों के चक्रण के लिए भी जिम्मेदार है।
- यह पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न पोषी स्तरों के बीच संतुलन बनाए रखता है।
- यह जीवमंडल के माध्यम से खनिजों को चक्रित करता है।
- अजैविक घटक कार्बनिक घटकों के संश्लेषण में मदद करते हैं जिसमें ऊर्जा का आदान–प्रदान शामिल होता है।
- उत्पादकता– यह बायोमास उत्पादन की दर को दर्शाता है।
- ऊर्जा प्रवाह– यह अनुक्रमिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ऊर्जा एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर तक प्रवाहित होती है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक और फिर डीकंपोजर और अंत में वापस पर्यावरण में प्रवाहित होती है।
- अपघटन– यह मृत कार्बनिक पदार्थों के टूटने की प्रक्रिया है। ऊपरी मिट्टी अपघटन के लिए प्रमुख स्थल है।
- पोषक चक्रण– एक पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न जीवों द्वारा उपयोग के लिए विभिन्न रूपों में पोषक तत्त्वों का उपभोग और पुनर्चक्रण किया जाता है।

2.7 पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Ecosystem)

जीवित जीव दो रूपों में रेडिएंट और निश्चित ऊर्जा के रूप में ऊर्जा का उपयोग करते हैं। रेडिएंट ऊर्जा विद्युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में होती है, जैसे लाइट। फिक्सड एनर्जी विभिन्न ऑर्गेनिक पदार्थों में बंधी सम्भावित रासायनिक ऊर्जा है जो उनकी ऊर्जा सामग्री को मुक्त करने के लिए टूट भी सकती है।

ऑर्गेनिक मॉलिक्यूल्स का उत्पादन करने के लिए इन ऑर्गेनिक पदार्थों का उपयोग करने वाली रेडिएंट ऊर्जा को फिक्स करने वाले जीवों को ऑटोट्रोफ कहा जाता है। जीव जो एबायोटिक स्रोत से ऊर्जा प्राप्त नहीं कर सकते हैं लेकिन ऑटोट्राफ द्वारा संश्लेषित ऊर्जा समृद्ध ऑर्गेनिक मॉलिक्यूल्स पर निर्भर करते हैं उन्हें हेटरोट्रोफ कहा जाता है। जो जीवित जीवों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं उन्हें उपभोक्ता कहा जाता है और जो मृत जीवों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं उन्हें डिकंपोजर्स कहा जाता है।

जब पौधों की हरी सतहों पर प्रकाश ऊर्जा गिरती है, तो इसका एक हिस्सा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है जो पौधों में विभिन्न कार्बनिक उत्पादों में संग्रहीत हो जाता है। जब हरबिवोर्स पौधों का खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग करते हैं और पौधों के उत्पादों में गतिशील ऊर्जा में संचित रासायनिक ऊर्जा को परिवर्तित करती हैं, तो ऊर्जा में गिरावट गर्मी में इसके रूपांतरण के माध्यम से होती है। जब पहली बार माध्यमिक उपभोक्ताओं के मांसाहारियों द्वारा हरबिवोर्स का सेवन किया जाता है तो इसमें और गिरावट आ जाती है। इसी तरह, जब प्राथमिक कारनिवार्स को शीर्ष मांसाहारियों द्वारा खाया जाता है तो उससे ऊर्जा डीग्रेड हो जाती है।

पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकों और उपभोक्ताओं को कई खास समूहों में व्यवस्थित किया जा सकता है, जिन्हें प्रत्येक ट्रॉपिक स्तर (भोजन स्तर) के रूप में जाना जाता है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में, उत्पादक पहले ट्रोपिक स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं, हर्बिवार्स दूसरे ट्रोपिक स्तर, प्राथमिक मांसाहार (कारनिवोर्स) तीसरे ट्रोपिक स्तर का प्रतिनिधित्व करते है और शीर्ष मांसाहार अंतिम स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

2.8 खाद्य शृंखला

पारिस्थितिक तंत्र में, अकेले हरे पौधे ही सौर ऊर्जा को ट्रैप कर उसे रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने में सक्षम हैं। रासायनिक ऊर्जा विभिन्न कंपाउंडर्स जैसे कि कार्बोहाइड्रेट, फैट्स और प्रोटीन, में बंद होती है। चूंकि लगभग सभी अन्य जीवित जीव अपनी ऊर्जा के लिए हरे पौधों पर निर्भर करते हैं, इसलिए सौर ऊर्जा को पकड़ने के लिए किसी भी क्षेत्र में पौधों की दक्षता समुदाय में दीर्घकालिक ऊर्जा प्रवाह और जैविक गतिविधि की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है।

हरे पौधों द्वारा निर्मित भोजन का उपयोग स्वयं और हर्बीवर्स द्वारा भी किया जाता है। पशु बार–बार फीड करते हैं।

कुछ शाकाहारी मांसाहारी जानवरों के लिए शिकार बन जाते हैं। इस तरह जीवन का एक रूप दूसरे रूप का समर्थन करता है। इस प्रकार, एक उष्णकटिबंधीय स्तर से भोजन दूसरे ट्राफिक स्तर तक पहुंच जाता है और इस तरह एक शृंखला स्थापित की जाती है। इसे खाद्य शृंखला के रूप में जाना जाता है।

उदाहरण– मार्श घास, खरगोश, पक्षी, हॉक।

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य शृंखला सीधे चलती है जिसमें हरे पौधे हरबिवोर्स द्वारा खाए जाते हैं, हरबिवोर्स को मांसाहारियों द्वारा खाया जाता है और मांसाहारियों को शीर्ष मांसाहारियों द्वारा खाया जाता है। मनुष्य कई खाद्य शृंखलाओं के स्थलीय लिंक बनाता है। खाद्य शृंखला तीन प्रकार की होती है–

1. ग्रेजिंग खाद्य शृंखला

ग्रेजिंग या चरने वाली खाद्य शृंखला हरे पौधों से शुरू होती है और ऑटोट्रॉफ से यह प्राथमिक मांसाहारियों (माध्यमिक उपभोक्ताओं) और फिर माध्यमिक मांसाहारियों (तृतीयक उपभोक्ताओं) तक और उसके बाद हर्बिवार्स (प्राथमिक उपभोक्ताओं) तक जाती है।

2. पैरासाइट खाद्य शृंखला

यह बड़े ऑर्गेनिस्मस से छोटे तक बिना हत्या के जाता है।

3. अपरद खाद्य शृंखला

मेटाबॉलिक वेस्ट से निकाले गए मृत आर्गेनिक अवशेष और ग्रेजिंग वाले खाद्य शृंखला से व्युत्पन्न निकास को आमतौर पर अपरद कहा जाता है। डेटरीटस में निहित ऊर्जा पूरी तरह से पारिस्थितिक तंत्र में नहीं खोती है, बल्कि यह जीवों के समूह के लिए ऊर्जा के स्रोत के रूप में कार्य करती है।

कुछ पारिस्थितिक तंत्र में ग्रेजिंग खाद्य शृंखला से ज्यादा डेटरीतस शृंखला के माध्यम से अधिक ऊर्जा बहती है। डिट्रिटस खाद्य शृंखला में ऊर्जा प्रवाह अलग–अलग इकाइयों के बीच एक कदम के प्रवाह के बजाय निरंतर मार्ग के रूप में बनी हुई है। डिट्रिटस खाद्य शृंखला में कई जीव हैं जिसमें एलगी, फंगी, वैक्टीरिया, स्लाइम मौलड्स, एक्टिनोमिस्ट्स, प्रोटोजोआ इत्यादि शामिल हैं।

2.9 वेब भोजन

एक पारिस्थितिक तंत्र में कई खाद्य शृंखलाएं मौजूद हैं, लेकिन वास्तव में खाद्य शृंखलाएं स्वतंत्र नहीं है। पारिस्थितिक तंत्र में, एक जीव पूरी तरह से किसी अन्य पर निर्भर नहीं है। संसाधनों को विशेष रूप से शृंखला की शुरूआत में सांझा किया जाता है। मार्श पौधों, कीड़े, पक्षियों, स्तनधारियों और मछलियों की विविधता से खाया जाता है और कुछ जानवरों को कई शिकारियों द्वारा खाया जाता है।

इसी प्रकार खाद्य श्रृंखला घास, चूहा, साँप, उल्लू में कभी–कभी चूहों को साँपों द्वारा नहीं खाया जाता है लेकिन सीधे उल्लू द्वारा खाया जाता है। इस प्रकार का अंतर सम्बन्ध पूरे समुदाय के व्यापारियों को जोड़ता है। इस तरह खाद्य श्रृंखलाएं एक–दूसरे से जुड़ जाती है। पारस्परिक खाद्य श्रृंखलाओं का परिसर एक खाद्य वेब बनाता है। खाद्य वेब पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता को बनाए रखता है।

2.10 पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार (Tpes of Ecosystem)

एक पारिस्थितिकी तंत्र छोटा हो सकता है या एक महासागर जितना बड़ा हो सकता है, जो हजारों मील में फैला हुआ है। पारिस्थितिकी तंत्र दो प्रकार का होता है–

1. स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र
2. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

1. स्थली पारिस्थितिकी तंत्र

स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र विशेष रूप से भूमि आधारित पारिस्थितिकी हैं। विभिन्न भूविज्ञानी क्षेत्रों के आसपास वितरित विभिन्न प्रकार के स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र हैं। वे इस प्रकार हैं–

- वन पारिस्थितिकी तंत्र
- घास के मैदान पारिस्थितिकी तंत्र
- टुंड्रा पारिस्थितिकी तंत्र
- डेजर्ट इकोसिस्टम

वन पारिस्थितिकी तंत्र – एक वन पारिस्थितिकी तंत्र में कई पौधे, जानवर और सूक्ष्मजीव होते हैं जो पर्यावरण के अजैविक कारक के समन्वय में रहते हैं। वन पृथ्वी के तापमान को बनाए रखने में मदद करते हैं और प्रमुख कार्बन सिंक हैं।

घास के मैदान पारिस्थितिकी तंत्र – एक घास के मैदान के पारिस्थितिकी में वनस्पति पर घास और जड़ी–बूटियों का प्रभुत्व होता है। समशीतोष्ण घास के मैदान, सवाना घास के मैदान के मैदान के पारिस्थितिकी के कुछ उदाहरण हैं।

टुंड्रा पारिस्थितिकी तंत्र – टुंड्रा पारिस्थितिकी पेड़ों से रहित हैं और ठंडी जलवायु में या जहां वर्षा कम होती है, वहां पाए जाते हैं। ये वर्ष के अधिकांश समय बर्फ से ढके रहते हैं। आर्कटिक या पर्वत शिखर में पारिस्थितिकी टुंड्रा प्रकार का है।

डेजर्ट इकोसिस्टम – दुनिया भर में रेगिस्तान पाए जाते हैं। ये बहुत कम वर्षा वाले क्षेत्र हैं। दिन गर्म और रातें ठंडी होती हैं।

2. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

जलीय पारिस्थितिकी तंत्र पानी के शरीर में मौजूद पारिस्थितिकी हैं। इन्हें आगे दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

- मीठे पानी का पारिस्थितिकी तंत्र
- समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र

मीठे पानी का पारिस्थितिकी तंत्र – मीठे पानी का पारिस्थितिकी तंत्र एक जलीय पारिस्थितिकी है जिसमें झीलें, तालाब, नदियां, नदियां और आर्द्रभूमि शामिल हैं। समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के विपरीत इनमें नमक की मात्रा नहीं होती है।

समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र – समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में समुद्र और महासागर शामिल हैं। मीठे पानी के पारिस्थितिकी की तुलना में इनमें नमक की मात्रा अधिक होती है और जैव विविधता अधिक होती है।

2.11 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा बताएं।

2) पारिस्थितिक तंत्र की विशेषता बताएं।

3) पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह बताएं।

4) खाद्य शृंखला व वेब भोजन को बताएं।

2.12 सारांश (Summary)

पारिस्थितिक तंत्र पर्यावरण का अहम् हिस्सा है। आज मनुष्य, गतिविधियों के माध्यम से पारिस्थितिक तंत्रों पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इस पर पड़ने वाले बूरे प्रभाव से समस्त पर्यावरण को बड़ा गहरा आघात पहुंचता है। पर्यावरण अध्ययन में पारिस्थितिक तंत्र का अध्ययन बहुत आवश्यक हो जाता है। इस अध्याय में पारिस्थितिक तंत्र से जुड़े अलग–अलग पहलूओं का वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है ताकि मनुष्य में पारिस्थितिक तंत्र व पर्यावरण चेतना की सोच विकसित हो सकें। पारिस्थितिक तंत्र पर्यावरण व प्रकृति का अभिन्न अंग है।

2.13 शब्दावली (Glossary)

- **पारिस्थितिक तंत्र**– जीवधारियों तथा उसके पर्यावरण के बीच पारस्परिक सम्बन्ध होता है, इसके अध्ययन को पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं।
- **खाद्य शृंखला**– एक जीव ने दूसरे जीव में आहार ऊर्जा के स्थानांतरण की शृंखला। जैसे एक पौधे का भक्षण कीड़े द्वारा किया जाता है। कीड़े को मेंढक खा जाता है। मेढक साँप का भोजन है और साँप एक बाज द्वारा खा लिया जाता है।

2.14 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 2.2 देखें।

2) सन्दर्भ 2.3 देखें।

3) सन्दर्भ 2.7 देखें।

4) सन्दर्भ 2.8 व 2.9 देखें।

2.15 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001

7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

2.16 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा, परिभाषा, विशेषताओं व अंगों का वर्णन करें।
2) पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह, खाद्य श्रृंखला व वेब भोजन को बताएं।
3) पारिस्थितिक तंत्र के प्रकारों पर प्रकाश डालें।

*****

अध्याय – 3
जैव विविधता व लुप्तप्राय प्रजातियां
(Biodiversity & Endangered Species)

संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 जैव विविधता का अर्थ

3.3 जैव विविधता के स्तर

3.4 भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण

3.5 विश्व में जैव विविधता के हॉटस्पॉट

3.6 भारतीय जैव विविधता हॉटस्पॉट क्षेत्र

3.7 भारत एक मेगा जैव विविधता राष्ट्र

3.8 जैव विविधता का महत्त्व

3.9 लुप्तप्राय या संकटापन्न जीव

3.9.1 लुप्तप्राय या संकटापन्न प्रजातियों के प्रकार

3.9.2 भारत की लुप्तप्राय प्रजाति

3.9.3 लुप्तप्राय पशुओं को बचाने के कुछ तरीके

3.9.4 वन्य जीव संरक्षण के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम

3.10 जैव विविधता का संरक्षण

3.11 जैव विविधता संरक्षण के उपाय

3.12 स्वयं जांच प्रश्न

3.13 सारांश

3.14 शब्दावली

3.15 स्वयं जांच उत्तर

3.16 सन्दर्भ–ग्रन्थ

3.17 अभ्यासात्मक–प्रश्न

3.0 प्रस्तावना (Introduction)

जैव विविधता का अर्थ पृथ्वी पर पाए जाते वाले जीवों की विविधता से है। अर्थात् किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवों एवं वनस्पतियों की संख्या एवं प्रकारों को जैव विविधता माना जाता है। 1992 में रियो डि जेनेरियो में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन में जैव विविधता की मानक परिभाषा के अनुसार जैव विविधता समस्त स्रोतों यथा– अंतर क्षेत्रीय, स्थलीय, सागरीय एवं अन्य जलीय पारिस्थितिक तंत्रों के जीवों के मध्य अन्तर और साथ ही उन सभी पारिस्थितिक समूह जिनके ये भाग हैं में पाई जाने वाली विविधता है। इसमें एक प्रजाति के अंदर पाई जाने वाली विविधता, विभिन्न जातियों के मध्य विविधता तथा परिस्थितिकीय विविधता

सम्मिलित है। जैविक विविधता का अर्थ है, सभी स्रोतों से सम्बन्धित जीवों के बीच परिवर्तनशीलता जैसे– स्थलीय, समुद्री और अन्य जलीय पारिस्थितिक तंत्र तथा पारिस्थितिक समूह जिसके वे भाग हैं इसमें प्रजातियों और पारिस्थितिकी प्रणालियों के बीच विविधता शामिल है। इसे तीन स्तरों पर समझा जा सकता है– प्रजाति विविधता विभिन्न प्रजातियों (पौधों, जानवरों, कवक और सूक्ष्मजीवों) की विविधता को संदर्भित करती है जैसे– ताड़ के पेड़, हाथी या बैक्टीरिया। आनुवांशिक विविधता पौधों, जीवों, कवकों और सूक्ष्मजीवों में निहित जीवों की विविधता से मेल खाती है। यह एक प्रजाति के साथ–साथ अन्य प्रजातियों में पाई जाती है। उदाहरण के लिए पूडल, जर्मन शेफर्ड और गोल्डन रिट्रीवर सभी कुत्ते की प्रजातियाँ हैं, लेकिन वे सभी अलग–अलग दिखते हैं। पारिस्थितिक तंत्र विविधता सभी विभिन्न मौजूद अधिवासों या वास स्थानों को संदर्भित करती है, जैसे– उष्णकटिबंधीय या समशीतोष्ण वन, गर्म और ठंडे रेगिस्तान, आर्द्रभूमि, नदी, पहाड़ा प्रवाल भित्तियाँ आदि। प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र जैव (जीवित) घटकों, जैसे– पौधों और जीवों तथा अजैविक (नॉन–लिविंग) घटक जैसे– सूर्य का प्रकाश, वायु, जल, खनिज और पोषक तत्त्वों के बीच जटिल संबंधों की एक शृंखला होती है।

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित बातों को अच्छी तरह जान व समझ पाएंगे–

- जैव विविधता की अवधारणा व स्तर
- भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण व विश्व एवं भारत में जैव विविधता के हॉटस्पॉट
- भारत एक मेगा जैव विविधता राष्ट्र
- जैव विविधता का महत्त्व, इसका संरक्षण व उपाय

3.2 जैव विविधता का अर्थ (Meaning of Biodiversity)

बायोडायवर्सिटी शब्द पृथ्वी पर रहने वाली समस्त जैविक प्रजातियों को अपने में समाहित किए हुए हैं। इसमें समस्त प्रकार के स्तनधारी, पक्षी प्रजातियाँ, सरीसर्प, उभयचर, मछली प्रजातियाँ, कीड़े–मकौड़े एवं अन्य गैर केशुरुकीय जीव, पेड़–पौधे, शैवाल कवक तथा प्रोटोजोआ, बैक्टीरिया, वायरस इत्यादि सूक्ष्म जीव सम्मिलित हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 1987 में प्रकाशित टेक्नॉलाजी असेसमैंट रिपोर्ट के अनुसार जीव–जन्तुओं में पाई जाने वाली विविधता, विषमता तथा पारिस्थितिकी जटिलता ही जैव विविधता कहलाती है।

- जैव विविधता शब्द का प्रथम प्रयोग 1985 में डब्ल्यू.जी. रोजेन ने किया था। हालांकि इस शब्द का संकल्पनात्मक प्रयोग वैज्ञानिक विल्सन द्वारा 1986 में अमेरिकी जैव विविधता फोरम में किया गया था। इस लेख में हम जैव विविधता के विभिन्न स्तरों का विवरण दे रहे हैं।

- जैव विविधता को अंग्रेजी में Biodiversity कहते हैं जो दो शब्द Bio और Diversity से मिलकर बना है। यहां Bio का अर्थ जीव है तथा Diversity का अर्थ विविधता है। अतः जैव विविधता या जैविक विविधता का आशय पारिस्थितिक तंत्र में विद्यमान सजीव प्राणियों की विविधता तथा संग्रह से है। जैव विविधता शब्द का प्रथम प्रयोग 1985 में डब्ल्यू. जी. रोजेन ने किया था। हालांकि इस शब्द का संकल्पनात्मक प्रयोग वैज्ञानिक विल्सन द्वारा 1986 में अमेरिकी जैव विविधता फोरम में किया गया था। वर्ष 1992 में ब्राजील के रियो–डी–जेनेरियो में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन के दौरान विभिन्न सदस्य देशों द्वारा हस्ताक्षरित जैव विविधता समझौते के अनुसार स्थलीय, समुद्री तथा अन्य जलीय पारिस्थितिकी तंत्र और पारिस्थितिकी परिसरों में रहने वाले सभी जीवों के बीच पाए जाने वाली असमानता को जैव विविधता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसमें एक ही प्रजाति के जीवों के बीच विविधता, प्रजातियों के बीच विविधता और पारितंत्रीय विविधता शामिल है। वैज्ञानिकों के अनुसार पूरी पृथ्वी पर सर्वाधिक जैव विविधता भूमध्यरेखीय क्षेत्र में पायी जाती है।

3.3 जैव विविधता के विभिन्न स्तर (Levels of Biological Diversity)

जैव विविधता को मुख्यतः तीन स्तरों में बांटा जाता है, जो निम्नलिखित हैं–

1. आनुवांशिक विविधता (Genetic Diversity)

एक ही प्रजाति के विभिन्न जीवों में जीनों के क्रम की भिन्नता के कारण जो भिन्नता होती है उसे आनुवांशिक विविधता कहते हैं। आनुवांशिक विविधता किसी प्रजाति के प्रत्येक सदस्य में विशिष्ट लक्षण एवं विशेषताओं का समावेश करता है। इसी कारण समान प्रजाति के अन्दर कुछ प्राणी दूसरों से लम्बे होते हैं, कुछ की आँखें भूरी तो कुछ की नीली होती हैं। आनुवांशिक विविधता के कारण ही एक प्रजाति के जीव की अलग–अलग नस्लें होती हैं। उदाहरण के लिए कुत्ते की अलग–अलग नस्लें आनुवांशिक विविधता का ही परिणाम है। आनुवांशिक विविधता विशिष्ट जीव या सम्पूर्ण प्रजाति को बदलते पर्यावरण से अनुकूलन में सहायता करती है और पर्यावरणीय कारकों में दबाव की स्थिति में सम्पूर्ण प्रजाति के विलुप्त होने के खतरे को कम करती है।

2. प्रजाति विविधता (Species Diversity)

प्रजाति विविधिता का आशय एक विशेष पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों की संख्या अथवा विविधता से है। अलग–अलग प्रजाति के जीवों में आनुवांशिक अनुक्रम में स्पष्ट रूप से भिन्नता होती है और उनके बीच प्रजनन नहीं होता है। यद्यपि निकट से सम्बन्धित प्रजातियों के आनुवांशिक गुणों में बहुत अधिक समानता होती है। जैसे–मानव और चिम्पांजी के लगभग 98.4 प्रतिशत जीन समान है। एक विशेष पारिस्थितिक तंत्र में प्रजाति विविधता का 0–1 के बीच मापा जाता है। 0 एक आदर्श स्थिति होती है जो उस पारिस्थितिक तंत्र में अनंत विविधता दर्शाती है। वही ''1'' दर्शाता कि उस विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्र में केवल एक प्रजाति निवास करती है।

3. पारिस्थितिक विविधता (Ecosystem Diversity)

पारिस्थितिक विविधता का आशय किसी भौगोलिक क्षेत्र में पारिस्थितिक तंत्रों की विविधता से है। विश्व में विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र हैं, जिनमें वन, घास के मैदान, पर्वत, नदी, झील, समुद्र आदि प्रमुख हैं। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र की अपनी विशिष्टता होती है। आनुवांशिक विविधता तथा प्रजातीय विविधता की अपेक्षा पारिस्थितिकीय विविधता की माप कठिन होती है, क्योंकि सामान्यतया पारितंत्रीय सीमाएं व्यवस्थित रूप से निर्धारित नहीं हाती है। सभी पारिस्थितिकीय विविधताओं में प्रवाल पारिस्थितिकीय तंत्र में सर्वाधिक जैव विविधता पाई जाती है।

3.4 भारत का जैव–भौगोलिक वर्गीकरण (Biogeographic Zones of India)

भारत एक बहुत बड़ा विविधता वाला देश है जहां दुनिया की लगभग 10 प्रतिशत रहती हैं। लाखों वर्षों तक भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत रही थी। अधिकतर भारतीय जैव विविधता जटिल रूप से देश के सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं से सम्बन्धित है। भारत के पूर्वी और उत्तर पूर्वी भागों में जैव विविधता के बड़े स्रोत हैं। इससे भारत को दवा, जंगल, वनस्पति और जीव जैसे कई प्रकार की वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

भारत के विभिन्न भागों में भिन्न जलवायु और स्थलाकृति है और इसीलिए इसे एक वृहद (मेगा) विविधता वाले देश के रूप में जाना जाता है। भारत दुनिया के वनस्पति से समृद्ध देशों की सूची में 10वें पायदान पर है। इसलिए वनस्पति और भारत के जीव वितरण तथा पर्यावरण अंतःक्रिया के बारे में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

जैव–भूगोलविदों ने भारत को विशेषता, जलवायु, मिट्टी और जैव विविधता के साथ प्रत्येक क्षेत्र में दस जैव–भौगोलिक क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है। भूगोल, जलवायु और वनस्पति के स्वरूप तथा उनमें रहने वाले स्तनधारी, पक्षी, सरीसृप, उभयचर, कीड़े और अन्य अकशेरूकी समुदायों के आधार पर हमारे देश को आसानी से दस प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

- लद्दाख के ट्रांस हिमालयी क्षेत्र
- हिमालय पर्वतमाला
- तराई
- गंगा और ब्रह्मपुत्र के मैदान
- राजस्थान के थार रेगिस्तान
- दक्कन के पठार गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु के अर्द्ध शुष्क चरागाह क्षेत्र
- भारत के पूर्वोत्तर राज्य
- पश्चिमी घाट
- अंडमान और निकोबार द्वीप
- पश्चिमी और पूर्वी तटीय बेल्ट

इन क्षेत्रों का विवरण नीचे दिया गया है–

ट्रांस–हिमाचली : हिमालयी क्षेत्र तिब्बती पठार की ओर फैले हैं। ऊंचाई पर स्थिति ठंडे रेगिस्तान लद्दाख (जम्मू और कश्मीर) और लाहौत स्पीति (हिमाचल प्रदेश) इस क्षेत्र के बंदरगाह हैं। यह देश के 5.7 प्रतिशत भूभाग पर फैला है।

हिमालय : हिमालय, भारत की उत्तरी सीमा हैं। पूरी पर्वत श्रृंखला उत्तर–पश्चिम में कश्मीर से उत्तर–पूर्व में असम तक फैली हुई है। हिमाचल में जैविक प्रांत और बायोम की एक विविध श्रृंखला का समावेश है। हिमालय, देश की भूमि के 7.2 प्रतिशत के भूभाग को पर फैला है।

मरुस्थल : अरावली पहाड़ी श्रृंखला के पश्चिम के अत्यंत शुष्क क्षेत्र में गुजरात का नमकीन रेगिस्तान और राजस्थान के रेतीले रेगिस्तान दोनों शामिल हैं। मरूस्थल का देश के लगभग 6.9 प्रतिशत पर भूभाग पर कब्जा है। भारत में पाये जाने वाले रेगिस्तानों के प्रकार इस प्रकार है– 1) पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तान, 2) गुजरात के रेगिस्तान, 3) जम्मू–कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के ऊँचाई वाले ठंडे रेगिस्तान। भारतीय रेगिस्तान में अधिक विविधता वाले जीव रहते हैं।

गंगा के मैदान : यह मैदान दक्षिण हिमालय से कर्क रेखा के बीच के क्षेत्र पर फैला है। ये मैदान गंगा नदी प्रणाली द्वारा गठित हुए हैं और अपेक्षाकृत समरूप हैं। इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष अनुमानित 600 मिमी बारिश होती है। इस क्षेत्र में सुन्दरबन के जंगल स्थित हैं और यह देश की भूमि के 11 प्रतिशत भूभाग पर फैला है।

दक्कन के पठार : यह क्षेत्र रेगिस्तान और दक्कन के पठार के बीच स्थित है। इसमें अरावली पहाड़ी श्रृंखला शामिल है। यह देश के लगभग 15.6 प्रतिशत भूभाग को कवर करता है। यह दक्षिणी नर्मदा घाटी का एक बड़ा त्रिकोणीय पठार है। पूर्व की ओर पठार के तीन किनारे पर्वतों के ढलानों से ढके हुए हैं। सतपुड़ा पर्वत उत्तर को पर फैला है जबकि पश्चिमी घाट पश्चिम किनारे को कवर करते हैं और पूर्वी घाट के पठार, पूर्वी हिस्से को पर फैला है। अधिकतर पर्णपाती वृक्षों के साथ दक्षिणी और दक्षिण–मध्य पठार को कवर करते हुए यह सबसे बड़े क्षेत्रों में से एक है। यह देश के 4.3 प्रतिशत भूभाग पर फैला है।

पश्चिमी घाट : पश्चिमी घाट पर पर्वत श्रृंखला है जो भारत के पश्चिमी घाट के साथ लगी हुई है। यह उत्तर में गुजरात के दक्षिणी सिरे से उत्तर–दक्षिण से दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैली एक सीमा है। पर्वत लगभग 160.00 वर्ग कि.मी. के एक क्षेत्र पर फैला हैं। इस घाट खंड में जैविक प्रांत और बायोम की एक अत्यंत विविध श्रृंखला शामिल है। यह देश के लगभग 5.8 प्रतिशत भूभाग पर फैला है।

द्वीप : बंगाल की खाड़ी में अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों में लगभग 300 बड़े और छोटे द्वीप हैं। इन के अलावा केवल पाँच द्वीपों पर लोग रहते हैं। निकोबार द्वीप में केवल जनजातियां पाई जाती हैं। इन द्वीपों में बायोम के विविध जोड़े हैं जो देश के बायोमास के 0.03 प्रतिशत जगह को घेरे हुए हैं। तटीय भारत में पूर्व और पश्चिम दोनों के बीच स्पष्ट मतभेद होने के साथ दोनों को एक बड़ा समुद्री तट वितरित है। इसमें लक्ष्यद्वीप समूह को शामिल किया गया है, लेकिन इन द्वीपों के क्षेत्र नाममात्र के हैं।

3.5 विश्व में जैव विविधता के हॉटस्पॉट

जैव विविधता न केवल पृथ्वी के भौगोलिक क्षेत्रों में समान रूप से वितरित नहीं है बल्कि विश्व के कुछ क्षेत्र भी जैव विविधता के मामले में अत्यधिक समृद्ध हैं। ऐसे क्षेत्रों को हम ''मेगा डाइवर्सिटी क्षेत्र'' या ''हॉटस्पॉट'' कहते हैं। विश्व में जैव विविधता के हॉटस्पॉट या आकर्षण के केन्द्रों के नाम नीचे दिए गए हैं–

- अफ्रीका
- पूर्वी अफ्रीका–मोंटेन
- पश्चिमी अफ्रीका के गिनीयन जंगलों
- अफ्रीका का हॉर्न
- मेडागास्कर और हिंद महासागर द्वीप समूह
- मैपूटोलैंड, पॉडोलैंड, अल्बानी हॉटस्पॉट
- सिक्युलेंट करौ
- पूर्वी मालनेशियम द्वीप
- दक्षिण अफ्रीका के केप फूलवादी हॉटस्पॉट
- पूर्वी अफ्रीका के तटीय जंगलों
- एशिया और ऑस्ट्रेलिया
- हिमालयी हॉटस्पॉट
- पूर्वी हिमालय
- जापान जैव विविधता हॉटस्पॉट
- दक्षिण–पश्चिम चीन के पर्वत
- न्यू कैलेडोनिया
- न्यूजीजैंड जैव विविधता हॉटस्पॉट
- फिलीपीन जैव विविधता हॉटस्पॉट
- पश्चिमी सुंद (इंडोनेशिया, माला और ब्रुनेई)
- वालेस (पूर्वी इंडोनेशिया)
- भारत के पश्चिमी घाट और श्रीलंका के द्वीप समूह
- हवाई सहित पॉलिनेशिया और माइक्रोनेशियन द्वीप परिसर
- दक्षिण–पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया
- उत्तरी और मध्य अमेरिकी

- कैलिफोर्निया फूलवादी प्रांत
- कैरीबियाई द्वीप हॉटस्पॉट
- संयुक्त राज्य अमेरिका और मेक्सिको सीमा के मॉडरियन पाइन–ओक लकड़ी की भूमि
- मेसोअमेरिकन जंगल
- दक्षिण अमेरिका
- ब्राजील के सेराडो
- चिली सर्दी वर्षा (वाल्डिवियन) वन
- टुम्बस–चोको–मगदालेना
- उष्णकटिबंधीय एंडीज
- अटलांटिक जंगल
- यूरोप और मध्य एशिया काकेशस क्षेत्र
- ईरान–अनातोलिया क्षेत्र
- भूमध्य बेसिन और इसके पूर्वी तटीय क्षेत्र
- मध्य एशिया के पर्वत

विश्व भर में ऐसे 34 आकर्षण के केन्द्र हैं इन केन्द्रों में विश्व के 60 प्रतिशत पौधों, पक्षियों, स्तनपाई प्राणियों, सरीसृपों और उभयचर प्रजातियों का संरक्षण किया जाता है। प्रत्येक आकर्षण का केन्द्र आज खतरे के दौर में गुजर रहा है और अपने 70 प्रतिशत मूल प्राकृतिक वनस्पति को खो चुका है। इसलिए, स्थानिक प्रजातियों और उनके आवास की रक्षा और संरक्षण करना हमारा कर्त्तव्य है।

3.6 भारतीय जैव विविधता हॉटस्पॉट क्षेत्र (Biodiversityh Hotspot in India)

पश्चिमीघाट : पश्चिमी घाट, जिसे सह्याद्री पहाड़ियों के नाम से जाना जाता है। उत्तर से दक्षिण तक चलने वाली पर्वत श्रृंखला है और पश्चिम में अरब सागर से अलग है, पूर्व में शुष्क डेक्कन पठार और विंध्य–सतपुड़ा उत्तर तक है। उनके पास विभिन्न वनस्पति प्रकार होते हैं: कम ऊंचाई पर सूखे और नम पर्णपाती जंगल, मोंटेन घास के मैदान और शॉल्स और कीमती उष्णकटिबंधीय सदाबहार और अर्द्ध सदाबहार जंगल। जटिल स्थलाकृति, उच्च वर्षा और रिलेटिव इक्सीसबैलिटी ने क्षेत्र को अपनी जैव विविधता बरकरार रखने में मदद की है। भारत में 15,000 फूलों के पौधों की प्रजातियों में से, पश्चिमी घाट क्षेत्र में अनुमानित 4,780 प्रजातियां हैं। पश्चिमी घाट और श्रीलंका हॉटस्पॉट में कम से कम 6,000 वैस्क्युलर प्लांट्स की प्रजातियां हैं, जिनमें से 3,000 से अधिक 50 प्रतिशत एंडेमिक हैं। 80 से अधिक एंडेमिक पौधे जेनेरी भी हैं, जिनमें से कई में केवल एक प्रजाति है।

इंडो–बर्मा (पूर्वी हिमालय) : हॉटस्पॉट में लोअर मेकांग कैचमेंट है। यह पूर्वी बांग्लादेश में शुरू होता है और फिर ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिण में उत्तर–पूर्वी भारत में फैला हुआ है, जिसमें चीन के दक्षिणी और पश्चिमी युनान प्रांत के सभी म्यांमार, लाओ पीपुल्स डेमोक्रेटिक रिपब्लिक, कंडोडिया और वियतनाम सभी शामिल हैं। थाईलैंड का विशाल बहुमत और प्रायद्वीपीय मलेशिया का एक छोटा सा हिस्सा। इसके अलावा, हॉटस्पॉट दक्षिणी चीन (दक्षिणी गुआंग्शी और गुआंग्डोंग में) के तटीय निचले इलाकों, साथ ही दक्षिण चीन सागर और भारत के अंडमान द्वीप समूह (भारत के) कई अपतटीय द्वीपों जैसे कि हैनान द्वीप (चीन के)। अंडमान सागर हॉटस्पॉट में लोअर मेकांग कैचमेंट शामिल है।

मिश्रित गीले सदाबहार, शुष्क सदाबहार, पर्णपाती और मोंटेन जंगलों सहित इस हॉटस्पॉट में पारिस्थितिक तंत्र की एक विस्तृत विविधता का प्रतिनिधित्व किया जाता है। करस्ट चूना पत्थर के बाहर निकलने के लिए स्क्रबलैंड और वुडलैंड्स के पैच भी हैं और कुछ तटीय क्षेत्रों में, स्कैटर्ड हीथ जंगल भी हैं। इसके अलावा, भारत–बर्मा में विशिष्ट स्थानीयकृत वनस्पति संरचनाओं की एक विस्तृत विविधता होती है, जिसमें निम्न भूमि बाढ़ के मैदानों, मैंग्रोव और सीजनली ग्रासलैंड्स शामिल हैं।

इंडो–बर्मा में 1,260 से अधिक पक्षी प्रजातियां मिली हैं और इनमें से 60 से अधिक एंडेमिक हैं। हॉटस्पॉट में लगभ 430 स्तनपायी प्रजातियां हैं, 70 से अधिक प्रजातियां और सात प्रजातियां एंडेमिक हैं। इंडो–बर्मा दुनिया में ताजे पानी के कछुओं की शायद उच्चतम विविधता का भी समर्थन करता है। 53 प्रजातियां जो दुनिया की प्रजातियों में से एक, पांचवीं हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है। इंडो–बर्मा उन पहले स्थानों में एक थे जहां मानवों ने कृषि विकसित की थी और कृषि और अन्य जरूरतों के लिए भूमि को साफ करने के लिए अग्नि का उपयोग करने का लंबा इतिहास रखता है। मानव आबादी और बाजार दोनों के विस्तार के साथ हाल के वर्षों में कृषि उत्पादों की आवश्यकता में वृद्धि हुई है। इसने व्यापक वन विनाश में योगदान दिया है; वृक्षारोपण ने निचले जंगल में बड़े क्षेत्रों को बदलन दिया है।

3.7 भारत एक मेगा जैव विविधता राष्ट्र (India : A Mega Biodiversity Nation)

भारत में भौगोलिक एवं जलवायु विविधता में पाई जाती है। भौगोलिक विविधता के कारण भारत के जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों तथा पेड़–पौधों में विविधता पाई जाती है। भारत में एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका तीनों ही प्रकार की जीव–जातियां पाई जाती हैं। जैविक–विविधता में भारत का विश्व में बारहवां स्थान है।

भारत एक उपमहाद्वीप है, भारत में दुनिया के लिए अफ्रीका लकड़बग्घा, चिंकारा, यूरोपी भेड़िये, जंगली बकरी तथा कश्मीरी स्टेग, दक्षिण पूर्वी एशिया के हाथी, गिबोन आदि पाए जाते हैं। भारत के जैविक–विविधता में काले रंग के भालू, गैंडा एक सिंग वाला हिरन तथा नाना प्रकार के साँप सम्मिलित हैं।

- मुख्य चिड़ियों में मोर तथा सारस सम्मिलित हैं। विश्व वनस्पति जगत् के 2,50,000 जीव–जातियों में से 15,000 प्रकार के पेड़–पौधे भारत में पाए जाते हैं और पशु–पक्षियों की 15 लाख जीव–जातियों में से 75 जीव–जातियां भारत में पाई जाती हैं।
- यद्यपि भारत विश्व के कुल क्षेत्रफल का केवल 2.4 प्रतिशत पर फैला हुआ है फिर भी विश्व के 5.7 प्रतिशत जीव–जन्तु तथा ग्यारह प्रतिशत पेड़–पौधे भारत में पाए जाते हैं। भारत में 350 प्रकार के स्तनधारी, 1200 प्रकार के पक्षी, 453 रेंगने वाली जीव–जातियां पाई जाती है। इनके अतिरिक्त 50,000 प्रकार के कीड़े–मकोड़े, 13,000 प्रकार की तितलियां तथा पतंगें पाए जाते हैं।
- एक अनुमान के अनुसार भारत की कुल वनस्पति के 18 प्रतिशत वृक्ष जातियां देशज मूल हैं। फूल वाले पौधों में अधिकतर देशज हैं। बहुत से जलथलीय देशम मूल के हैं। भारत में 153 प्रकार की छिपकलियां पाई जाती हैं जिनमें से 50 प्रतिशत देशज मूल की हैं। बहुत जलप्राणी भी देशज मूल के हैं।
- प्राकृतिक वनस्पति तथा जंगली जानवरों के अतिरिक्त, भारत की कृषि में नाना प्रकार की फसलें उगाई जाती है। भारत में 30,000 से लेकर 50,000 प्रकार की अनाज की फसलें, घास, फूल, सब्जियां तथा मेवे उगाई जाती हैं। भारत के प्राणी जगत् एवं वनस्पति में सबसे अधिक विविधता उत्तर पूर्व के राज्यों में पाई जाती हैं।

3.8 जैव विविधता का महत्त्व (Importance of Biodiversity)

जैव विविधता का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैव विविधता के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन असंभव है। जैव विविधता के विभिन्न लाभ निम्नलिखित हैं–

1. जैव विविधता भोजन, कपड़ा, लकड़ी ईंधन तथा चारा की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। विभिन्न प्रकार की फसलें जैसे गेहूँ, धान, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, रागी, अरहर, चना, मसूर आदि से हमारी भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जबकि कपास जैसी फसल हमारे कपड़े की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। सागवान, साल, शीशम आदि जैसे वृक्षों की प्रजातियां निर्माण कार्यों हेतु लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। बबूल, शिरीष, सफेद शिरीष, जामुन, खेजरी, हल्दू, करंज आदि वृक्षों की प्रजातियों से हमारी ईंधन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जबकि शिरीष, घमार, सहजन, शहतूत, बेर, बबूल, करंज, नीम आदि वृक्षों की प्रजातियों से पशुओं के लिए चारा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।
2. जैव विविधता कृषि पैदावार बढ़ाने के साथ–साथ रोगरोधी तथा कीटरोधी फसलों की किस्मों के विकास में सहायक होती हैं। हरित क्रांति के लिए उत्तरदायी गेहूँ की बौनी किस्मों का विकास जापान में पाए जाने वाली नारीन–10 नामक गेहूँ की प्रजाति की मदद से किया गया था। इसी प्रकार धान की बौनी किस्मों का विकास ताइवान में पाए जाने वाली डी–जिओ–ऊ–जेन नामक धान की प्रजाति से किया गया था। सन् 1970 के प्रारम्भिक वर्षों में विषाणु के संक्रमण से होने वाली धान की ग्रासी स्टन्ट नामक बीमारी के कारण एशिया महाद्वीप में 1,60,000 हेक्टेयर से भी ज्यादा फसल को नुकसान पहुँचाया था। धान की जातियों में इस बीमारी के प्रति प्रतिरोधी क्षमता विकसित करने हेतु मध्य भारत में पाई जाने वाली जंगली धान की प्रजाति ओराइजा निभरा का उपयोग किया गया था। आई आर 36 नामक विश्व प्रसिद्ध धान की जाति के भी विकास में ओराइजा निभरा का उपयोग किया गया है।
3. वानस्पतिक जैव विविधता औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। एक अनुमान के अनुसार आज लगभग 30 प्रतिशत उपलब्ध औषधियों को उष्णकटिबंधीय वनस्पतियों से प्राप्त किया जाता है। उष्णकटिबंधीय शासकीय वनस्पति सदाबहार विनक्रिस्टीन तथा विनव्लास्टीन नामक क्षारों का स्रोत होता है जिनका उपयोग रक्त कैंसर के उपचार में होता है। सर्पगंधा पादक रेसर्पीन नामक महत्त्वपूर्ण क्षार का स्रोत होता है जिसका उपयोग उच्च रक्तचाप के उपचार में किया जाता है। गुग्ल नामक पौधे से प्राप्त गोंद का उपयोग गठिया के इलाज में किया जाता है। सिनकोना वृक्ष की छाल से प्राप्त कुनैन नामक क्षार का उपयोग मलेरिया ज्वर के उपचार में किया जाता है। इसी प्रकार आर्टिमिसिया एनुआ नामक पौधे से प्राप्त आर्टिमिसिनीन नामक रसायन का उपयोग मस्तिष्क मलेरिया के उपचार में होता है। जंगली रतालू से प्राप्त डायसजेनीन नामक रसायन का उपयोग स्त्री गर्भनिरोधक के रूप में होता है।
4. जैव विविधता पर्यावरण प्रदूषण के निस्तारण में सहायक होती है। प्रदूषकों का विघटन तथा उनका अवशोषण कुछ पौधों की विशेषता होती है। सदाबहार (कैथरेन्थस रोसियस) नामक पौधे में ट्राईनाइट्रोटालुइन जैसे घातक विस्फोटक को विघटित करने की क्षमता होती है। सूक्ष्म–जीवों की विभिन्न प्रजातियां जहरीले बेकार पदार्थ के साफ–सफाई में सहायक होती है। सूक्ष्म जीवों की स्यूडोमोनास प्यूटिडा तथा आर्थोबैक्टर विस्कोसा में औद्योगिक अपशिष्ट से विभिन्न प्रकार के भारी धातुओं को हटाने की क्षमता होती है। पौधों की कुछ प्रजातियों में मृदा से भरी धातुओं जैसे कॉपर, कैडमियस, मरकरी, क्रोमियम के अवशोषण तथा संचयन की क्षमता पायी जाती है। इन पौधों का उपभोग भारी धातुओं के निस्तारण में किया जा सकता है। भारतीय सरसों (ब्रैसिका जूनसिया) में मृदा से क्रोमियम तथा कैडमियम के

अवशोषण की क्षमता पायी जाती है। जलीय पौधे जैसे जलकुम्भी (आइकार्निया कैसपीज), लैग्मा, साल्विनिया तथा एजोला का उपयोग जल में मौजूद भारी धातुओं (कॉपर, कैडमियम, आयरन एवं करकरी) के निस्तारण में होता है।

5. जैव विविधता में सम्पन्न वन पारितंत्र कार्बन डाइऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक होते हैं। कार्बनडाइऑक्साइड हरित गृह गैस है जो वैश्विक तपन के लिए उत्तरदायी है। उष्णकटिबंधीय वनविनाश के कारण आज वैश्विक तापमान में निरंन्तर वृद्धि हो रही है जिसके कारण भविष्य में वैश्विक जलवायु के अव्यस्थित होने का खतरा दिनोंदिन बढ़ रहा है।
6. जैव विविधता मृदा निर्माण के साथ–साथ उसके संरक्षण में भी सहायक होती है। जैव विविधता मृदा संरचना को सुधारती है। जल धारण क्षमता एवं पोषक तत्त्वों की मात्रा को बढ़ाती है। जैव विविधता जल संरक्षण में भी सहायक होती है क्योंकि यह जलीय चक्र को गतिमान रखती है। वानस्पतिक जैव विविधता भूमि में जल रिसाव को बढ़ावा देती है जिससे भूमिगत जलस्तर बना रहता है।
7. जैव विविधता पोषक चक्र को गतिमान रखने में सहायक होती है। वह पोषक तत्त्वों की मुख्य अवशोषक तथा स्रोत होती है। मृदा की सूक्ष्मजीवी विविधता पौधों के मृत भाग तथा मृत जन्तुओं को विघटित कर पोषक तत्त्वों को मृदा में मुक्त कर देती है जिससे यह पोषक तत्त्व पुनः पौधों को प्राप्त होते हैं।
8. जैव विविधता पारितंत्र को स्थिरता प्रदान कर पारिस्थितिक संतुलन को बरकरार रखती है। पौधे तथा जन्तु एक–दूसरे से खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य जाल द्वारा जुड़े होते हैं। एक प्रजाति की विलुप्ति दूसरे के जीवन को प्रभावित करती है। इस प्रकार पारितंत्र कमजोर हो जाता है।
9. पौधे शाकभक्षी जानवरों के भोजन के स्रोत होते हैं जबकि जावनरों का मांस मनुष्य के लिए प्रोटीन का महत्त्वपूर्ण स्रोत होता है।
10. समुद्र के किनारे खड़ी जैव विविधता सम्पन्न ज्वारीय वन (मैंग्रोव वन) प्राकृतिक आपदाओं जैसे समुद्री तूफान तथा सुनामी के खिलाफ ढाल का काम करते हैं।
11. जैव विविधता विभिन्न सामाजिक लाभ भी हैं। प्रकृति, अध्ययन के लिए सबसे उत्तम प्रयोगशाला है। शोध, शिक्षा तथा प्रसार कार्यों का विकास, प्रकृति एवं उसकी जैव विविधता की मदद से ही सम्भव है। इस बात को साबित करने के लिए तमाम साक्ष्य हैं कि मानव संस्कृति तथा पर्यावरण का विकास साथ–साथ हुआ है। अतः सांस्कृतिक पहचान के लिए जैव विविधता का होना अति आवश्यक है।
12. जैविक रूप से सम्पन्न वन पारितंत्र, वन्य–जीवों तथा आदिवासियों का घर होता है। आदिवासियों की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति वनों द्वारा होती है। वनों के क्षय से न सिर्फ आदिवासी संस्कृति प्रभावित होती अपितु वन्य–जीवन भी प्रभावित होगा।

3.9 लुप्तप्राय या संकटापन्न जीव (Endangered Species)

अब विभिन्न कारणों से विश्व के कई जीव को कभी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते थे या तो विलुप्त हो गए हैं या जल्दी ही विलुप्त होने वाले हैं। अकेले हमारे देश में अब तक लगभग 200 किस्म के पशु–पक्षी विलुप्त हो चुके हैं तथा लगभग 800 किस्म के वन्य जीवों के विलुप्त होने की आशंका है। इनमें से भी लगभग 250 किस्म के वन्य जीव तो विलुप्त होने के लिए तैयार है। उदाहरणार्थ– पिग्मी, चिम्पांजी, तेंदुआ सिंह, चीता, बाघ, जगुआर, एक प्रकार का चीता, ध्रुवीय भालू, हाथी, पर्वतीय गोरिल्ला, गैंडे की कई जातियां तथा कुछ पक्षियों, जातियां विलुप्तप्राय हैं, क्योंकि मनुष्य इनका अन्धाधुन्ध उपयोग– शिकार, भोजन, त्वचा इत्यादि के लिए करता आ रहा है। इसी प्रकार पौधों की बहुत सी प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं तथा शेष विलुप्तता के कगार पर खड़ी हैं।

3.9.1 लुप्तप्राय या संकटापन्न प्रजातियों के प्रकार

द इण्डियन प्लाण्ट्स रेड डाटा बुक में संकटापन्न प्रजातियों को निम्नलिखित समूहों में किया गया है–

1) **विलुप्त** – ऐसे पौधे, जो कि पूर्व में किसी स्थान विशेष में पाए जाते थे, लेकिन वर्तमान में वे अपने प्राकृतिक स्थानों से लुप्त हो गए हैं, उन्हें ही विलुप्त प्रजातियां कहते हैं। ऐसे पौधे जब उनके प्राकृतिक आवास स्थानों पर उपलब्ध नहीं होते, तब इन्हें विलुप्त प्रजाति माना जाता है। अतः इनका संरक्षण असम्भव होता है।
2) **लुप्तप्राय** – ऐसी पादक प्रजातियां जो कि लुप्त होने की स्थिति में है यदि वही पारिस्थितिक परिस्थियाँ बनी रहें, तब उन्हें विलुप्त होने से नहीं बचाया जा सकता है अर्थात् जिन प्रजातियों के लुप्त होने का खतरा बना रहता है। उन्हें लुप्तप्राय या इनडेन्जर्ड प्रजाति कहते हैं। ऐसी प्रजातियों की संख्या धीरे–धीरे इतनी कम हो जाती है कि उनमें प्रजनन की सम्भावनाएं लगभग समाप्त हो जाती हैं, जिसके कारण धीरे–धीरे ये विलुप्त होने लगती है।
3) **वल्नरेबल** – ऐसी पादप प्रजातियां जो कि कुछ ही समय में लुप्तप्राय स्थिति में पहुंचने वाली हो, उन्हें ही वल्नरेबल प्रजातियां कहते हैं। यदि इन्हें लगातार उन्हीं पारिस्थितिक स्थितियों का सामना करना पड़ता है, तब ये प्रजातियां भी लुप्त होने लगती है।

दुर्लभ – ऐसी पादक प्रजातियां जो कि संसार में कहीं–कहीं पर और बहुत कम संख्या में उपलब्ध हों, उन्हें ही दुर्लभ प्रजातियां कहते हैं। ऐसी प्रजातियां प्रारम्भ से ही लुप्तप्राय या वल्नरेबल नहीं होती लेकिन धीरे–धीरे लुप्तप्राय स्थिति में आ जाती हैं और अन्त में समाप्त हो जाती हैं।

अपर्याप्त जानकारी – ऐसी पादक प्रजातियां जिनके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे किस समूह (1 से 4) के अन्तर्गत आते हैं, ऐसी प्रजातियों के बारे में हमें सही जानकारी नहीं मिल पाती, लेकिन धीरे–धीरे ये लुप्तप्राय स्थिति में आ जाती है।

खतरे से बाहर – ऐसी समस्त पादक प्रजातियां जो कि उपरोक्त श्रेणियों (1 से 5) के अन्तर्गत पहुंच चुकी होती हैं, लेकिन उनके संरक्षण के पश्चात् पूर्व के वास स्थान पर स्थापित हो जाती हैं, उन्हें इस समूह के अन्तर्गत रखा जाता है।

सन् 1980 में भारतीय वानस्पतिक सर्वे संस्थान ने 'थ्रेटेण्ड प्लांट ऑफ इण्डिया' नामक पुस्तक में संकटापन्न पौधों का वर्णन किया है। सन् 1984 में बी.एस.आई. ने पुनः एक नई पुस्तक 'द इण्डियन प्लाण्ट्स रेड डाटा बुक' का प्रकाशन किया, जिसमें 125 संकटपन्न आवृत्तबीजी पौधों का वर्णन किया गया है।

3.9.2 भारत की लुप्तप्राय प्रजाति

भारत विभिन्न प्रकार के जानवरों, पक्षियों और मछलियों का आवास स्थल है जिसमें बकरी, मुर्गी, गाय, भैंस, सूअर आदि जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण कृषि पशु भी शामिल हैं। भारत वन्य जीवों जैसे कि बंगाल टाइगर, हिरण, भेड़िया, अजगर, भारतीय शेर, भालू, साँप, बन्दर कई प्रकार के जंगली बैल, एशियाई हाथी और मृग प्रजातियों वाला देश है। भारत दुनिया के सत्रह विशाल विविधता वाले देशों में से एक है। भारत सहित, यह सत्रह बड़े विविध देश, दुनिया के जैव विविधता के लगभग 60–70 प्रतिशत के निवास स्थल हैं। पश्चिमी घाट, पूर्वी हिमालय और भारत–बर्मा पूरे विश्व में कुल 34 में से तीन जैव विविधता वाले आकर्षण केंद्र हैं।

भारत के पास दुनिया की कुल 6 वन्य जीव प्रजातियों में से 5 प्रतिशत हैं, एक रिपोर्ट के मुताबिक जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा ड्रग्स एंड क्राइम (जूएनओडीसी) द्वारा प्रकाशित किया गया था जिसमें सभी स्तनधारियों के 7.6 प्रतिशत और सभी पक्षी प्रजातियों के 12.6 प्रतिशत शामिल हैं। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन) रेडलिस्ट द्वारा 2014 में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार, पक्षियों की 15 प्रजातियां, स्तनधारियों की 12 प्रजातियां और सरीसृप और उभयचर की 18 प्रजातियां गंभीर रूप से लुप्त प्राय सूची में शामिल हो गई हैं।

- आइयूसीएन की लाल सूची के अनुसार गंभीर रूप से लुप्तप्राय प्रजातियों के विलुप्त होने का उच्चतम जोखिम है। विशिष्ट प्रजातियां लुप्तप्राय हैं या नहीं यह निर्धारित करने के मूलरूप से पाँच तरीके हैं।
- जब प्रजातियों की एक सीमित भौलोगिक सीमा होती है।
- 50 से कम वयस्क प्रजाति की बहुत सीमित या छोटी आबादी।
- क्या पिछली तीन पीढ़ियों या 10 वर्षों के लिए आबादी में 80प्रतिशत से अधिक की कमी आई या कमी होगी।
- यदि प्रजाति की आबादी 250 से कम है और पिछली एक पीढ़ी या तीन साल के लिए लगातार 25 प्रतिशत कम हो रही है।
- वन्य जीवों के विलुप्त होने की एक उच्च संभावना है।
- भारतीय हाथी, बंगाल टाइगर, भारतीय शेर, भारतीय गेंडा, गौर, शेर जैसी पूंछ वाला अफ्रीकी लंगूर, तिब्बती हिरन, गंगा नदी डॉल्फिन, नील गिरि तहर, हिम तेंदुए, ढोल, काली बतख, महान भारतीय बस्टर, जंगली उल्लू, सफेद पंख वाली बतख और कई अन्य भारत में सबसे लुप्तप्राय प्रजातियां हैं।

खतरे के कारण

- प्रजातियों के खतरे के लिए प्राथमिक कारणों में से एक आवासी की कमी है। आज, प्राकृतिक परिदृश्य के विनाश में मानव हस्तक्षेप एक प्रमुख भूमिका रहा है। असंख्य प्रजातियों के लिए भोजन और आश्रय प्रदान करने वाले पेड़ों का कटान, खनन और कृषि जैसी मानवीय गतिविधियां।
- शिकार और अवैध शिकार करने से दुनिया भर में जानवरों और मछलियों की संख्या पर एक बहुत ही विनाशकारी और विपत्ति पूर्ण प्रभाव पड़ता है।
- प्रदूषण जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और अपशिष्ट प्रदूषण, विशेष रूप से प्लास्टिक के रूप में पशु प्रजातियों के लिए खतरे में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। प्रदूषण न केवल मनुष्यों के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी खतरों का कारण है, बल्कि यह जानवरों को भी प्रभावित करता है।
- एक मजबूत और हार्दिक वातावरण में हमेशा शिकारियों और उनके शिकार जानवरों की संख्या के बीच एक सटीक संतुलन होता है। शिकारी, जो अपने शिकार के जानवरों के प्राकृतिक दुश्मन हैं, वे बूढ़े और बीमार शिकार चुनते हैं क्योंकि वे अपने समूह के साथ नहीं रह सकते। इस परिदृश्य में उनके बीच के रिश्ते पूरी तरह से स्वस्थ हैं क्योंकि शिकारियों ने इन शिकार जानवरों को ही खा लिया है जो कि पहले ही अपने जीवन के अंत के करीब आ रहे हैं लेकिन समस्याएं अधिक स्पष्ट हो जाती है जब शिकारी उस क्षेत्र में घूमते रहते हैं जहां उन्हें केवल कुछ ही संख्या में अपने शिकार या जानवर मिलते हैं।

3.9.3 लुप्तप्राय पशुओं को बचाने के कुछ तरीके

- अगर दुनिया भर में प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है तो दुनिया भर में जानवरों, मछलियों और पक्षियों पर इसका सकारात्मक प्रभाव हो सकता है।
- लुप्तप्राय जानवरों को विलुप्त होने से बचाने के लिए, कई प्रजनन कार्यक्रम पेश किए गए हैं। सरकारी, गैर सरकारी संगठनों और अन्य कॉर्पोरेट निकायों को इस महान् उदेश्य के लिए आगे आना चाहिए क्योंकि इस कार्यक्रम में समर्पित और विशेष लोगों तथा निश्चित रूप से बहुत धन की आवश्यकता है।

- लुप्तप्राय जानवरों को अपनी संख्या में एक बार वृद्धि के बाद जंगलों में पुनः अपना जीवन शुरू करना कुछ मामलों में सफल हो गया है, हालांकि सभी प्रजातियों ने अच्छा प्रदर्शन नहीं किया है।
- यदि शिकार और अवैध शिकार को नियंत्रित किया जा सकता है तो लुप्तप्राय पशुओं की संख्या में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव हो सकता है।

3.9.4 वन्य जीव संरक्षण के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम

- जम्मू–कश्मीर (इसका अपना अधिनियम है) को छोड़कर सभी राज्यों ने, वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम को 1972 में अपनाया गया, जो खतरे में आने वाली और दुर्लभ प्रजातियों के किसी भी प्रकार के व्यापार को रोकता है।
- लुप्तप्राय प्रजातियों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को हर प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान करती है।
- 1970 में बाघ के शिकार पर राष्ट्रीय प्रतिबंध लगाया गया था और वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 में प्रभावी हुआ था। नवीनतम बाघ गणना (2015) के अनुसार, बाघों की आबादी में कुल 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 2010 में बाघों की गणना के अनुसार भारत में 1700 बाघ बचे थे जो 2015 में 2226 हो गए।
- सरकार द्वारा अनगिनत संख्या में नेशनल पार्क, वन्यजीव अभ्यारण्य, पार्क आदि की स्थापना की गई है।
- 1992 में देश में प्राणी उद्यान के प्रबंधन के पर्यवेक्षण के लिए केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण (सीजीए) शुरू किया गया था।
- 1996 में वन्य जीव सलाहकार समिति और वन्य जीव संस्थान वन्य जीव संरक्षण को उससे सम्बन्धित मामलों की विभिन्न विशेषताओं पर सलाह मांगने के लिए स्थापित किया गया था। भारत की लुप्तप्राय प्रजातियों को बचाने के लिए सरकार ने कई अन्य पहल की हैं।
- भारत पाँच मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का हिस्सा है जो वन्य जीव संरक्षण से जुड़े हैं। वे हैं– (1) लुप्तप्राय प्रजातियों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर सम्मेलन, (2) वन्यजीव तस्करी के खिलाफ संगठन, (3) अन्तर्राष्ट्रीय व्हेलिंग कमीशन, (4) संयुक्त राष्ट्र शौक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन – विश्व धरोहर समिति और (5) प्रवासी प्रजातियों पर कन्वेंशन। भारत की लुप्तप्राय प्रजातियों को बचाने के लिए कई सकारात्मक कदम उठाए जा रहे हैं पर यह पर्याप्त नहीं है। इस महान् कार्य में आगे आने के लिए और अधिक गैर–सरकारी संगठनों और निजी कॉर्पोरेट क्षेत्रों की जरूरत है।

3.10 जैव विविधता का संरक्षण (Conservation of Biodiversity)

मनुष्य की जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि के कारण जैव विविधता में लगातार कमी आ रही है। जिसके कारण वनों की लगातार कटाई हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप जीवों के प्राकृतिक आवास समाप्त होते जा रहे हैं। अतः जैव विविधता का संरक्षण अत्यावश्यक हो गया है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर उपस्थित वनों के क्षेत्रफल में लगातार कमी आती जा रही है और आज उसके 55 भाग पर ही वन शेष बचे हैं। विश्व में प्रतिवर्ष 1,00,000 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में उपस्थित वनों की कटाई हो रही है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष वनों की कटाई की दर 13,000 वर्ग कि.मी. है। इस प्रकार जैव विविधता में वनों की कटाई एवं पर्यावरण प्रदूषण के कुप्रभावों के कारण लगातार कमी आ रही है। अतः संरक्षण करना अत्यावश्यक है अन्यथा एक दिन ऐसा आएगा जब पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जीवधारी समाप्त हो जाएंगे।

जैव विविधता के संरक्षण करने के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

1) वनों एवं प्राकृतिक सम्पदा तथा उसकी जैविक परिपूर्णता को संरक्षित रखने के लिए।
2) वायुमण्डल में उपस्थित ओजोन स्तर के विघटन, अम्ल वर्ष एवं पृथ्वी के बढ़ते हुए तापक्रम पर नियंत्रण करने हेतु।
3) अपनी दैनिक आवश्यकताओं जैसे– भोजन, रेशे, इंधन एवं अन्य आवश्यक सामग्रियों की पूर्ति हेतु।
4) मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा करने हेतु जो कि प्रजाति विविधता में कमी के कुप्रभावों से आशंकित है।
5) नई हर्बल औषधियों, पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं, पूरक भोजन प्राप्त करने हेतु।
6) पर्यावरण सन्तुलन को बनाए रखने के लिए।

3.11 जैव विविधता संरक्षण के उपाय (Metods of Conservation Biodiversity)

1) जैव विविधता के महत्त्वों को देखते हुए इसका संरक्षण करना अत्यावश्यक हैं। जैव विविधता के संरक्षण हेतु निम्नलिखित तीन स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं–

- आनुवंशिक विविधता का संरक्षण आनुवंशिक विविधता के संरक्षण से उस जाति का संरक्षण सम्भव होता है।
- जाति विविधिता का संरक्षण
- पारिस्थितिक तन्त्र की विविधता का संरक्षण

2) विविधता का संरक्षण निम्नलिखित दो विधियों के द्वारा किया जा सकता है–

- इन–सिटू संरक्षण एवं
- एक्स–सिटू संरक्षण, दोनों प्रकार के संरक्षण एक–दूसरे के पूरक होते हैं।

इन–सिटू संरक्षण

इसके अन्तर्गत जैव विविधता का संरक्षण उनके मूल आवासों में ही किया जाता है। हमारे देश में जैव विविधता के संरक्षण हेतु भारत सरकार ने सन् 1952 में इण्डियन बोर्ड फॉर वाइल्ड लाइफ की स्थापना की है जो कि वन्य जीवन एवं जैव विविधता के संरक्षण हेतु निम्नलिखित उपाय अपनाती है–

- राष्ट्रीय उद्यानों की सहायता से
- अभ्यारण्यों की सहायता से
- प्राणी उद्यानों की सहायता से

जून, 1992 तक हमारे देश राष्ट्रीय उद्यान तथा 41 अभ्यारण्य शरणस्थल स्थापित थे। भारत सरकार ने जन्तुओं को उनके स्वयं के पारिस्थितिक तन्त्र में प्रतिबन्धित विकास हेतु 7 बायोस्फियर रिजर्व की स्थापना की है।

एक्स–सिटू संरक्षण –इसके अन्तर्गत जीवों एवं पेड़–पौधों का संरक्षण उनके मूल आवास से दूर ले जाकर किया जाता है। इसके अन्तर्गत पौधों का संरक्षण निम्निलिखित प्रकार के माध्यम से पेड़–पौधों को उनके आवास से दूर स्थापित विभिन्न स्थानों एवं प्रयोगशालाओं में किया जाता है–

- वानस्पतिक उद्यानों में
- वानिकी अनुसंधान संस्थाओं में
- कृषि अनुसंधान केन्द्रों तथा अन्य संरक्षण साधनों के द्वारा

एक्स–सिटू संरक्षण में पौधों के संरक्षण हेतु निम्नलिखित तीन तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

- बीज बैंक
- जीन बैंक
- इन विट्रो स्टोरेज विधि
- भारतवर्ष में वर्तमान स्थिति में लगभग 33 वास्पतिक उद्यान, 33 विश्वविद्यालयीन जैविक उद्यान, 107 चिड़ियाघर, 49 मृग उद्यान तथा 24 प्राकृतिक प्रजनन केन्द्र इन क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

3.12 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) जैव विविधता के स्तरों के बारे में बताएं।

2) जैव विविधता के संरक्षण की व्याख्या कीजिए।

3) विश्व व भारत में जैव विविधता के हॉटस्पॉट का क्या तात्पर्य है?

3.13 सारांश (Summary)

पर्यावरण का जैव विविधता एक अभिन्न अंग है। भारत एक जैव विविधता वाला देश हे। यहां कई प्रकार की वनस्पति, पेड़–पौधें, पशु–पक्षी रहते हैं लेकिन वर्तमान समय में प्रगति के नाम पर जंगलों को काटा जा रहा है। सड़कें, पूलों व विकास सम्बन्धी कार्य, बाघों का निर्माण, शहर बसाकर जैव विविधता को नुकसान पहुंचाया जा रहा है। आज बहुत सारी प्रजातियां हैं जो लुप्त हो रही है। इनके संरक्षण के लिए जैव विविधता को बचाना बहुत आवश्यक हो जाता है। इस अध्याय में जैव विविधता पर संक्षिप्त रूप से टिप्पणी की गई है जो पर्यावरण के प्रति जागरूकता को बढ़ाने में सहायक रहेगी।

3.14 शब्दावली (Glossary)

- जैव विविधता–जैव विविधता से अभिप्राय पृथ्वी पर पाए जाने वाले विभिन्न प्राणियों, वन्यजीव और पेड़–पौधों की प्रजातियों से है।
- जैव विविधता हॉटस्पॉट–ऐसा स्थान जहां समृद्ध जैव विविधता अर्थात् विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तु व पेड़–पौधे की प्रजातियां अधिकतम में पाए जाते हैं परन्तु उनके अस्तित्व पर निरंतर संकट बना रहता है, ऐसे स्थान को हॉटस्पॉट कहते हैं
- लुप्तप्राय प्रजातियां –लुप्तप्राय प्रजातियां ऐसे जीवों की आबादी है, जिनके लुप्त होने का जोखिम है, क्योंकि वे या तो संख्या में कम हैं या बदलते पर्यावरण या परमश्रण मानकों द्वारा संकट में है या वनों की कटाई के कारण या मनुष्य द्वारा माने जाने के खतरे हैं।

3.15 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 3.3 देखें।

2) सन्दर्भ 3.10 व 3.11 देखें।

3) सन्दर्भ 3.5 व 3.6 देखें।

3.16 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006

3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

3.17 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) जैव विविधता पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालें।
2) भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण का स्थिति पर चर्चा करें।
3) विश्व व भारत में जैव विविधता हॉटस्पॉट पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
4) भारत एक मेगा जैव विविधता राष्ट्र पर नोट लिखें।
5) लुप्तप्राय या संकटापन्न जीवों पर और इसे रोकने पर रोशनी डालें।
6) जैव विविधता के महत्त्व व संरक्षण पर संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

*****

अध्याय – 4
संधारणीयता एवं सतत् विकास
(Sustainability and Sustainable Development)

संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 संधारणीयता की अवधारणा

4.3 सतत् विकास का अर्थ

4.4 सतत् विकास की परिभाषाएं

4.5 सतत् विकास का उद्देश्य

4.6 सतत् विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

4.7 सतत् विकास का मूलभूत स्वरूप

4.8 सतत् विकास की विशेषताएं

4.9 सतत् विकास के 17 लक्ष्य

4.10 सतत् विकास की प्राप्ति के लिए कुछ आवश्यक कदम

4.11 सतत् विकास के लिए शर्तें/उपाय

4.12 सतत् विकास के लिए नीतियाँ

4.13 स्वयं जांच प्रश्न

4.14 सारांश

4.15 शब्दावली

4.16 स्वयं जांच उत्तर

4.17 सन्दर्भ–ग्रन्थ

4.18 अभ्यासात्मक–प्रश्न

4.0 प्रस्तावना (Introduction)

विश्व के सभी देशों में आज विकास के पथ पर एक–दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ सी मची है और इसके लिए औद्योगिकरण से लेकर प्राकृतिक संसाधनों के दोहन तक के हर सम्भव उपाय किए जा रहे हैं। विकास की इस होड़ में हम यह भूल गए हैं कि हम इसे किस मूल्य पर हासिल करना चाहते हैं। इसमें दोराय नहीं है कि विकास के लिए हम पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर हैं, क्योंकि इसके लिए आवश्यक तेल से लेकर कोयला एवं जल भी हमें प्रकृति से प्राप्त होता है और ये सभी प्राकृतिक संसाधन पृथ्वी पर सीमित मात्रा में विद्यमान हैं। जिस तरह से विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है उससे यह अनुमान लगाया जा रहा है कि वर्ष तक यह बढ़कर 8 अरब से भी अधिक हो जाएगी और जिस तरह से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जा रहा है, उसका दुष्परिणाम यह होगा कि आने वाली मानव पीढ़ियों के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधन पृथ्वी पर उपलब्ध ही

नहीं होंगे। हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा है– ''हमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग के माध्यम से पानी, ऊर्जा, निवास स्थान, कचरा प्रबन्धन एवं पर्यावरण के क्षेत्रों में पृथ्वी द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए कार्य करना होगा।''

अर्थशास्त्रियों, पर्यावरणविदों एवं वैज्ञानिकों ने इस समस्या का हल यह बताया है कि हम अपने विकास के लिए उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते समय इस बात का भी ध्यान रखें कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी ये संसाधन बचे रहें। भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों के बचाव के मद्देनजर ही सतत् विकास की अवधारणा का विकार हुआ। हमारे रिजर्व बैंक के गवर्नर श्री रघुराम राजन का कहना है– ''हमें यह निश्चित करके चलना चाहिए कि पूरे विश्व में वृद्धि के वास्तविक एवं सतत् स्रोत हो।'' सतत् विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं में भी कटौती न हो।

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बिन्दुओं को समझ पाएंगे–

- संधारणीयता क्या है?
- सतत् विकास का क्या अर्थ, परिभाषा व विशेषताएं हैं?
- सतत् विकास का उद्देश्य व ऐतिहाकिस परिप्रेक्ष्य को समझ सकेंगे।
- सतत् विकास के मूलभूत स्वरूप एवं 17 सतत् विकास लक्ष्यों से परिचित होंगे।

4.2 संधारणीयता की अवधारणा (Concept of Sustainability)

संधारणीयता का अर्थ पारिस्थितिकी विज्ञान में होता है कि कोई जैविक तंत्र कैसे विविधता बनाये रखते हुए लम्बे समय तक उत्पादन करता रह सकता है। दीर्घ अवधि से क्रियाशील और जैविक रूप से स्वस्थ आर्द्रभूमियां और वन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। सामान्य अर्थों में संधारणीयता का अर्थ सीमित प्राकृतिक संसाधनों का इस तरह से उपयोग करना है कि भविष्य में वे हमारे लिए समाप्त न हो जाएं।

संधारणीयता को बनाए रखते हुए मानव विकास की अवधारणा को संधारणीयता विकास की संज्ञा दी जाती है और इसके अध्ययन को संधारणीयता विज्ञान कहते हैं।

संधारणीयता की संकल्पना मानव–पर्यावरण सम्बन्धों के एक सरल सिद्धान्त पर आधारित है कि हमारे अस्तित्व के बने रहने के लिए और मानव कल्याण के लिए जो भी जरूरत की चीजें हैं वे किसी न किसी रूप में हमें अपने प्राकृतिक पर्यावरण से प्राप्त होती है। अतः संधारणीयता होना यह सुनिश्चित करता है कि मनुष्य और उसका पर्यावरण एक स्वस्थ और सुसंबद्ध रूप से आपस में सम्बन्धित रहें और ये उत्पादक दशाएं और विविधता चिरकाल तक बने रहें। इन अर्थों में संधारणीयता संसाधन उपयोग का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है जिससे हमारी पृथ्वी और प्राकृतिक पर्यावरण की विविधता, प्राकृतिक उत्पादनशीलता क्षमता और स्थायित्व बने रहें और मानव जीवन चिरकार तक संकटमुक्त रह सके।

संधारणीयता और संधारणीय विकास जैसे शब्दों का उपयोग अस्सी के दशक से काफी प्रचलन में आया जब मार्च 20, 1987 को संयुक्त राष्ट्र की ब्रंटलैण्ड रिपोर्ट जारी हुई और इसमें संधारणीय विकास का उल्लेख हुआ। संधारणीयता और संधारणीय विकास जैसे शब्दों की पापुलरिटी में लगातार बढ़ोत्तरी के बावजूद अगर पर्यावरणीय अवनयन, उपभोग की प्रवृत्तियाँ और आर्थिक समृद्धि की दौड़ और होड़ को गणना में लिया जाए तो इस बात पर अभी भी सवालिया निशान हैं कि मानव सभ्यता संधारणीयता प्राप्त कर पायेगी।

महात्मा गांधी– ''पृथ्वी के पास सभी लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन है लेकिन एक भी व्यक्ति का लालच पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं है।''

4.3 सतत् विकास का अर्थ (Meaning of Sustainable Development)

शब्द सतत् विकास का सबसे पहली बार प्रयोग 'वर्ड कन्सर्वेशन स्ट्रेटजी' द्वारा किया गया जिसे 'प्रकृति और प्राकृतिक साधनों के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ' ने 1980 में प्रस्तुत किया।

ब्रण्डटलैण्ड रिपोर्ट के अनुसार सतत् विकास का अर्थ है वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं से समझौता किये बिना पूरा करना।

अतः सतत् विकास का अर्थ उस विकास से है जिसे निरन्तर चालू रहना चाहिए। यह सभी लोगों की जीवन की गुणवत्ता में सतत् सुधार की रचना है जिसे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि, शिक्षा में सुधार, स्वास्थ्य तथा जीवन की सामान्य गुणवत्ता में सुधारों और प्राकृतिक पर्यावरणीय साधनों की गुणवत्ता में सुधारों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

अन्य शब्दों में यह वह स्थिति है जिसमें समय के साथ आर्थिक विकास कम नहीं होता। इसे विकास के ऐसे पथ के रूप में संशोधन किया जा सकता है जिसमें भविष्य की पीढ़ियों के विकल्पों का वर्तमान पीढ़ी द्वारा अपनाये गये मार्ग द्वारा समझौता नहीं किया जाता।

सतत् विकास वह विकास है जो निरन्तर चलता है। यह प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार द्वारा जीवन की गुणवत्ता में योगदान करता है। बदले में, यह व्यक्तितों की तुष्टि की पूर्ति करता है, आर्थिक प्रक्रिया को आगतें तथा सेवाएं उपलब्ध करता है जो मानव जीवन की सहायता करती है। तथापि पीयर से और बारफोर्ड के शब्दों में– ''सतत् विकास एक प्रक्रिया है जिसमें प्राकृतिक साधनों के आधार को क्षय नहीं होने दिया जाता। यह पर्यावरणीय गुणवत्ता की वृद्धि की प्रक्रिया में पर्यावरणीय आगतों पर भी बल देता है।''

सतत् विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें यह सुनिश्चित किया जाता है कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ भावी सन्तति की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में कठिनाई न हो। आज सतत् विकास अति आधुनिक और महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इस मुद्दे से सम्बन्धित आज विश्व में अनेक कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये हैं। यदि आप यह जानना चाहते हैं कि अमुक परियोजना सत्त विकास के सिद्धान्त पर आधारित है या नहीं तो हमें इन मुख्य तत्यों पर गहनता एवं गम्भीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है।

1. क्या इससे जैव विविधता को कोई खतरा तो नहीं है।
2. इससे मिट्टी का कटाव तो नहीं होगा।
3. क्या यह जनसंख्या वृद्धि को कम करने में सहायक है।
4. क्या इससे वन क्षेत्रों को बढ़ाने में प्रोत्साहन मिलेगा।
5. क्या यह हानिकारक गैसों के निकास को कम करेगी।
6. क्या इससे अपशिष्ट उत्पादन की कमी होगी।
7. क्या इससे सभी को लाभ पहुंचेगा अर्थात् सभी के लिए लाभप्रद है।

ये सभी तथ्य या घटक सतत् विकास के परिचालक हैं और इनको अनदेखा नहीं किया जा सकता। अब हमने जो देखा है कि विकास मनुष्य पर केन्द्रित रहा है और वह भी गिने चुने राष्ट्रों में अर्थात् विकसित राष्ट्रों में, परन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि किस कीमत पर वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के आधार पर अभूतपूर्व प्रगति की है। इस 5 प्रगति से हवा, पानी और भोजन तीनों प्रदूषित हुए हैं और हमारे प्राकृतिक संसाधनों का निर्दयता से शोषण हुआ है।

4.4 सतत् विकास की परिभाषा (Meaning of Sustainable Development)

ब्रन्टलैंड प्रतिवेदन के अनुसार, ''सतत् विकास वह विकास है जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति आगे की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की बलि दिए बिना पूरी करता हो।'' विकास के विभिन्न अर्थ व परिभाषाओं का यही सार निकलता है कि वास्तव में विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है।

यह प्रक्रिया तभी सार्थक होती है जब इसमें मानव विकास, आर्थिक वृद्धि एवं पर्यावरण सुरक्षा के बीच एक उचित संतुलन हो। सतत् विकास का अर्थ एक ऐसे विकास से है जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ भविष्य की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखे। विकास ऐसा हो जो केवल ढांचा खड़ा करने में ही विश्वास न रखता हो बल्कि अन्य पहलुओं जैसे मानव संसाधन के विकास, पर्यावरण सन्तुलन, संसाधनों का उचित रख–रखाव व संरक्षण, लाभों के समान वितरण हेतु उचित व्यवस्था आदि को भी ध्यान में रखता हो। जो किसी विभाग/संस्था या व्यक्ति पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी हो तथा स्थानीय निवासियों द्वारा संचालित हो। सतत् विकास में जनसहभागिता की बड़ी अहम भूमिका है।

4.5 सतत् विकास का उद्देश्य (Objectives of Sustainable Development)

सतत् विकास के मुख्य उद्देश्यों का वर्णन निम्नवत् हैः

1. सभी लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सतत् सुधारों का सृजन।
2. आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करके आर्थिक वृद्धि को बढ़ाना अर्थात् जीवन स्तर को ऊपर उठाना।
3. सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का अवसर प्रदान करना तथा पर्यावरण को स्वच्छ बनाने में सहायता करना।
4. अन्तरप्रजननात्मक निष्पक्षता का संवर्धन।
5. आर्थिक विकास के शुद्ध लाभों को अधिकतम बनाने का लक्ष्य रखना बशर्ते कि सभ पर्यावरणीय और प्राकृतिक साधनों का भण्डार सुरक्षित रहे।
6. पर्यावरणीय भण्डार तथा भविष्य की पीढ़ियों को हानि पहुंचने बिना मानवीय एवं भौतिक पूंजी के संरक्षण और वृद्धि के लिए आर्थिक विकास को तीव्र करने का लक्ष्य रखना।
7. दृढ़ सतत् विकास प्राप्त करने का लक्ष्य रखना ताकि प्राकृतिक पूंजी भण्डार कम न हो। इसके अतिरिक्त, दुर्बल सततीयता की आवश्यकता है कि भौतिक, मानवीय और प्राकृतिक पूंजी भण्डरों का मूल्य कम न हो।

4.6 सतत् विकास–एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Sustainable Development - A Historical Perspective)

संयुक्त राष्ट्र संघ का मानव विकास सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन वर्ष 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित किया गया था। वर्ष 1974 में बेरी महोदय ने प्रसिद्ध पुस्तक 'The Closing Circle' प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में निम्न बिन्दुओं पर विशेष बद दियाः

1. पृथ्वी पर हर एक वस्तु एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं
2. पृथ्वी की हर एक वस्तु किसी–न–किसी दिशा में बढ़ रही है।
3. प्रकृति सब कुछ भली–भांति जानती है और
4. मुफ्त आहार जैसी कोई चीज नहीं है।

तत्पश्चात् संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 1982 की जनरल असेम्बली में 'World Chapter for Nature' का प्रस्ताव पारित किया। इसके प्रश्चात ब्रैंटलैंड महोदय ने अपनी रिपार्ट 'Our Common Future' में सतत् विकास की अवधारणा प्रस्तुत की थी।

इस रिपोर्ट में निम्न बिन्दुओं पर बल दिया गया–

1. इस प्रकार की सरकार जिसमें सभी नागरिकों की निर्णय लेने में भागीदारी हो।
2. ऐसी आर्थिक संस्था जिसमें अधिक उत्पादन किया जाये तथा टेक्नोलॉजी का विकास किया जाये।
3. ऐसा उत्पादक तंत्र जो विकास के साथ–साथ पारिस्थितिकी का संरक्षण करता हो।
4. ऐसा टेक्निकल तंत्र जो निरंतर विकास पर बल देता है।
5. ऐसा प्रशासनिक तंत्र जिसमें लचक हो और बदलती परिस्थिति के अनुसार निर्णय ले सके।
6. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पर्यावरण के टिकाऊपन का ध्यान रखना।

ब्रैंटलैंड महोदय ने अपनी रिपोर्ट में विकास की योजना बनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखने पर बल दिया–

1. सतत् विकास
2. सतत् पृथ्वी
3. सतत् मानव विकास
4. सतत् शांति एवं विकास
5. सतत् उपभोग
6. सतत् टैक्नोलॉजी

वर्ष 1980 से वर्ष 1990 तक बहुत सी अन्तर्राष्ट्रीय कनवेशन एवं सम्मेलन आयोजित किये गये। इनमें से प्रमुख सम्मेलन प्रकार हैं–

1. वर्ष 1987 में ओजोन ह्रास के सम्बन्ध में मांट्रियल प्रोटोकोल।
2. वर्ष 1987 में खतरनाक पदार्थों के बारे में बेसल कनवेंशन।
3. वर्ष 1992 में जलवायु परिवर्तन कनवेशन।
4. जैविक–विविधता कनवेंशन वर्ष 1992।
5. पृथ्वी सम्मेलन 1992।
6. वर्ष 2002 का विश्व सम्मेलन, सतत् विकास के सम्बन्ध में।

4.7 सतत् विकास का मूलभूत स्वरूप (Basic Aspects of Sustainable Development)

विकासशील देशों की तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या तथा विकसित देशों में बढ़ते हुए उपभोक्तावाद के कारण सतत् विकास प्राप्त करना कठिन कार्य हो गया है।

सतत् विकास प्राप्त करने के लिये निम्न पर ध्यान देना अति आवश्यक है–

1. जैव–विविधता
2. ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन
3. खतरनाक कूड़े–करकट का प्रबंधन
4. उद्योगों से निकलने वाले बड़े–करकट का प्रबंधन
5. पारिस्थितिकी सुरक्षा

वैज्ञानिकों का विचार है कि विश्व के अधिकतर भागों में विकास करते समय पारिस्थितिकी के सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा जा रहा है, जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण का तीव्रता से ह्रास हो रहा है।

सतत् विकास के पूर्वापेक्षा (Prerequisites of Sustainable Development)

पारिस्थितिकी संतुलन को स्थापित करने के लिए आर्थिक विकास निम्न सिद्धांतों को ध्यान में रखकर करना चाहिए–

1. प्राकृतिक संसाधनों का समुत्थान–शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
2. टेक्नोलॉजी विकास करते समय नवीकृत संसाधनों के संरक्षण का विशेष ध्यान रखा जाए।
3. नवीकृत संसाधनों को उपयोग में लाने के लिए विशेष नीति तैयार की जाए।

धारणीय विकास के सिद्धांत (Principles of Sustanability)

1. प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग
2. जैविक–विविधता का संरक्षण
3. सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण
4. पर्यावरण एवं संसाधनों से सतत् आय
5. संसाधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाए ताकि समाज के सभी वर्गों को लाभ पहुंच सके।
6. संसाधनों का पुर्नउपयोग
7. मानव का गुणात्मक विकास। मानव विकास के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य तथा प्रति व्यक्ति आय पर विशेष ध्यान देना
8. सतत् विकास के लिए विश्व परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना
9. समाज के सभी वर्गों के संसाधनों का सदुपयोग करना
10. मानव समाज अपनी मान्यताओं में परिवर्तन करे और यह समझे कि पृथ्वी पर संसाधन सीमित है।
11. विश्व के सभी समुदायों द्वारा आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए
12. सतत् विकास के लिए सभी व्यक्तियों एवं समाजों की सबल भागीदारी

4.8 सतत् विकास की विशेषताएं (Key Features of Charactiristics)

सतत् विकास की संकल्पना की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है–

1. सतत् विकास एक प्रक्रिया है, जिसमें पर्यावरणीय, सामाजिक व आर्थिक संसाधनों के दोहन को इस तरह लागू करने पर जोर दिया जाता है कि संसाधन पूर्ण रूप से नष्ट न हो। भविष्य में संसाधनों के पुनः उपयोग को महत्त्व दिया जाता है।
2. सामाजिक लक्ष्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखना चाहता है। जीवन की गुणवत्ता के मुख्य पहलू है शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य व पर्यावरणीय संरक्षण।
3. सतत् विकास का प्रयोजन वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए औसत जीवन गुणवत्ता को बनाए रखना होता है।
4. सतत् विकास में आर्थिक के साथ–साथ सामाजिक ममता व पर्यावरणीय गुणवत्ता को भी महत्त्व दिया जाता है।

5. इस अवधारणां में समता प्रमुख होती है। अर्थात् धनी एवं गरीब के बीच पीढ़ियों के बीच और राष्ट्रों के बीच विकास की लागत और लाभों के उचित वितरण को सतत् विकास में प्रमुखता दी जाती है।
6. इसमें सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय उद्देश्यों के बीच सम्बन्धों की स्थापना करने का प्रयत्न किया जाता है।

4.9 सतत् विकास के 17 लक्ष्य (17 Sustainable Development Goals)

इन लक्ष्यों में गरीबी, प्रदूषण, शांति, न्याय आदि अनेक शामिल है जिनके द्वारा मानव जीवन का निरंतर विकास होता रहे तथा वर्तमान पीढ़ी तथा भावी पीढ़ी के जीवन में सुख–शांति तथा विकास निरंतर बना रहे।

- **समाज में न्याय व शांति** – सतत् विकास का समाज में न्याय व शांति स्थापित करना एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है जिसका उद्देश्य समाज में न्याय तथा शांति स्थापित कर न्याय तक पहुंच सुनिश्चित करना है।
- **गरीबी को समाप्त करना** – टिकाऊ विकास का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य गरीबी को पूर्णतः समाप्त कर एक शांतिपूर्ण व सभ्य समाज की स्थापना करना है। अभी गरीब उन लोगों को माना जाता है जो लगभग रु. 96 में प्रतिदिन अपना गुजारा करते हैं।
- **भुखमरी (अकाल) को पूर्णता समाप्त करना** – धारणीय विकास के इस लक्ष्य में भुखमरी को पूरी तरह से समाप्त कर टिकाऊ कृषि, खाद्य सुरक्षा तथा बेहतर पोषण को प्राथमिकता दी जाएगी।
- **लक्ष्य प्राप्ति के लिए सामूहिक साझेदारी** – सतत् विकास के इस लक्ष्य में वैश्विक भागीदारी को पुनर्जीवित करने के साथ – साथ किसी निश्चय को कार्य रूप में बदलने वाले साधनों को मजबूत बनाना है।
- **भूमि संरक्षण** – टिकाऊ विकास का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भूमि संरक्षण (भूमि पर जीवन) है टिकाऊ विकास को बढ़ावा देने वाले स्थलीय पारिस्थितिकी प्रणाली, मृदा अपरदन, सुरक्षित जंगलों तथा जैव विविधता के बढ़ते नुकसान को रोकना है।
- **जल संरक्षण** – इस लक्ष्य में टिकाऊ विकास के लिए समुद्र व समुद्री संसाधनों, महासगरों तथा जल के अन्य स्रोतों का संरक्षण करना है।
- **जलवायु परिवर्तन** – धारणीय विकास का एक मुख्य लक्ष्य जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले नुकसान या प्रभावों से बचने के लिए तत्काल कार्यवाही सुनिश्चित कर इससे सम्बन्धित संसाधनों का विकास करना है।
- **उपभोग व उत्पादन प्रणाली को सशक्त बनाना** – इस लक्ष्य के द्वारा उपभोग व उत्पादन प्रणाली को मजबूत और टिकाऊ बनाना है।
- **सामुदायिक तथा शहरी विकास** – इस लक्ष्य के द्वारा शहरों व मानव बस्तियों को सुरक्षित, लचीला, मजबूत व शांतिपूर्ण बनाना है।
- **असमानता में कमी** – इस विकास प्रणाली का मुख्य लक्ष्य देश की अर्थव्यवस्था में वृद्धि कर देश के भीतर व देशों के बीच असमानता को कम करना है।
- **उद्योग व बुनियादी ढांचे का विकास** – इस लक्ष्य के द्वारा सशक्त मूलभूत ढांचा बनाना तथा टिकाऊ औद्योगिकरण को बढ़ावा देना।
- **अच्छा रोजगार व आर्थिक विकास** – इसका मुख्य उद्देश्य सभी के लिए अच्छा रोजगार उपलब्ध कराने के साथ–साथ टिकाऊ विकास व उत्पादक रोजगार को प्रोत्साहित करना है।

- **सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा** – इसका मुख्य उद्देश्य सभी के लिए सस्ती, स्वच्छ व भरोसेमंद ऊर्जा तक पहुंच सुनिश्चित करना जो पर्यावरण के अनुकूल भी हो।
- **स्वच्छ पानी तथा स्वच्छता को प्रोत्साहन** – इसके द्वारा सभी के लिए स्वच्छ पानी उपलब्ध कराकर, स्वच्छ पानी व स्वच्छता की प्रणाली को सशक्त बनाना है।
- **लैंगिक समानता** – इसके द्वारा लैंगिक समानता प्राप्त करने के साथ–साथ महिलाओं और लड़कियों को हर क्षेत्र में विकास के लिए प्रोत्साहित करना।
- **अच्छी शिक्षा** – इस लक्ष्य के द्वारा सभी के लिए अच्छी शिक्षा तथा पहुंच सुनिश्चित कर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बढ़ावा देना जिससे सभी को अच्छा रोजगार मिले तथा बेरोजगारी जैसी समस्याओं को दूर किया जा सके।
- **अच्छा स्वास्थ्य** – इसके द्वारा स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास कर, स्वास्थ्य तथा जीवन स्तर में सुधार करना है।

4.10 सतत् विकास की प्राप्ति के लिए कुछ आवश्यक कदम

- **साधन दक्ष तकनीक** – साधन दक्ष तकनीक सतत् विकास को प्राप्त करने के लिए अति आवश्यक है क्योंकि उभरती हुई आवश्यकता का सामना करने के लिए हमें ऐसी उत्पादन तकनीक खोजनी होगी जिससे कम (इकाई) साधन के इस्तेमाल से अधिक उत्पादन हो।
- **पर्यावरण मित्र ऊर्जा का इस्तेमाल** – पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा स्रोतों का इस्तेमाल धारणीय विकास के लिए अति आवश्यक है पैट्रोल व डीजल के स्थान पर एल.पी.जी. व सी.एन.जी. का इस्तेमाल किया जाना चाहिए क्योंकि पैट्रोल–डीजल के कारण पर्यावरण को दूषित करने वाली गैस अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होती है।
- **सूर्य किरणों को सौर ऊर्जा व विद्युत ऊर्जा में बदलना** – जैसा कि हम जानते हैं कि उत्पादन के लिए ऊर्जा अति आवश्यक है परंतु जीवाश्म ईंधन का प्रयोग अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को कम करता है कायेले, पैट्रोल आदि का प्रयोग $CO2$ के उत्सर्जन को बढ़ाता है जिसके कारण प्रदूषण होता है।
- इसके विपरीत सूर्य किरण पर्यावरण मित्र व कभी न समाप्त होने वाला प्राकृतिक संसाधन है जिसे सौर ऊर्जा व विद्युत ऊर्जा में परिवर्तन कर धारणीय विकास को प्राप्त कर सकते हैं।
- **जैविक खेती को बढ़ावा** – रासायनिक खाद तथा कीटनाशक आदि का इस्तेमाल फसल उत्पादन में वृद्धि करता है लेकिन यह मृदा की उपजाऊ क्षमता पर निर्भर है जिसका अर्थ है भविष्य में मृदा की उत्पादन क्षमता में कमी आएगी इसलिए हमें भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को देखते हुए जैविक खेती को अधिक प्राथमिकता देनी होगी।
- **अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रण** – घरेलू औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों को इधर–उधर फेंकने के कारण पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि होती है हमें ऐसा न करके उनका पुनर्चक्रण यानी किसी भी प्रकार से दोबारा इस्तेमाल करने का प्रयत्न करना चाहिए जैसे घरेलू अपशिष्ट का खाद के रूप में जैविक खेती के लिए इस्तेमाल।
- **रासायनिक अपशिष्ट के निपटदान पर कड़े कानून** – भारत जैसे देश में कानून तो बनाए जाते हैं परन्तु उनका पालन दृढ़ता के साथ नहीं किया जाता औद्योगिक रासायनिक अपशिष्ट हमारी नदियों, तालाबों, झरनों आदि को दूषित करते हैं।

- जो जलीय जीव व स्वच्छ पानी का विनाश करता है हमें इस प्रकार के नुकसान से बचने के लिए इससे सम्बन्धित कानून बनाकर उनका कठोरता से पालन करना चाहिए।

4.11 सतत् विकास के लिए शर्तें / उपाय (Conditions/Measures for Sustainable Development)

सतत् विकास का मापन प्रायः कठिन होता है। इसमें पर्यावरणीय हानि का मूल्यांकन तथा इसको रोकने पर आने वाली लागत से तुलना सम्मिलित होती है। इसे बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे पूंजी स्टाक का मापन, प्राकृतिक साधनों का लेखा और प्राकृतिक साधनों के संरक्षण और उपयोग के बीच वैकल्पिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए उचित छूट दर का प्रयोग। तथापि यहां हम सतत् विकास की प्राप्ति की शर्तों पर परिचर्चा करेंगे।

यह निम्नलिखित है–

1. प्राकृतिक पूंजी भण्डार का मापन (Measuring Natural Capital Stock)

प्राकृतिक साधनों, सम्पत्तियों अथवा पर्यावरणीय सम्पत्ति के भण्डार में सम्मिलित हैं– भूमि का उपजाऊपन, वन, मत्स्य क्षेत्र, अपशिष्ट के समावेशन की क्षमता, तेल, गैस, कोयला, ओजोन की परत और बायोज्योकैमीकल साइकलज।

सतत् विकास की पूर्वापेक्षित शर्त यह है कि प्राकृतिक पूंजी भण्डारों का संरक्षण और सुधार किया जाना चाहिए। इससे अर्थ यह है कि प्राकृतिक पूंजी भण्डार कम–से–कम सतत स्थिति में अवश्य रहने चाहिए। इसका मापन प्राकृतिक पूंजी भण्डार में परिवर्तनों के लागत–लाभ विश्लेषणों के सन्दर्भ में किया जा सकता है। इसी प्रकार जब वातावरण को साफ रखा जाता है तो यह हम सब के लिए लाभप्रद होता है।

अतः सतत् का अर्थ है प्राकृतिक पूंजी सम्पत्ति का संरक्षण और सुधार। कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि प्राकृतिक पूंजी को कोई महत्त्व न दिया जाये तथा इसके स्थान पर आदमी द्वारा निर्मित पूंजी और मानवीय पूंजी को अधिक महत्त्व दिया जाये। उनका विचार है कि सतत् विकास का सम्बन्ध संरक्षण और सुधार से है जिसमें समस्त पूंजी भण्डार सम्मिलित है– आदमी द्वारा निर्मित पूंजी और मानवीय पूंजी। इस विचार को दक्षता और अन्तर–पीढ़ी समानता के साथ आगे बढ़ाया गया।

समस्त पूंजी भण्डार पर विचार करते हुए इसका अर्थ है, प्राकृतिक तथा आदमी द्वारा निर्मित पूंजी। जिन्हें परस्पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है। यह सामाजिक प्रतिफल के दर के आधार पर किया जा सकता है। परन्तु यह कभी–कभी ही होता है क्योंकि पर्यावरणीय अवनति से लाभ का उपभोग कर लिया जाता है न कि निवेश। प्राकृतिक पूंजी से लाभ तथा आदमी द्वारा निर्मित पूंजी पर निवेश के मूल्यांकन की एक अन्य समस्या है। बाजार की कीमतों के आधार पर पर्यावरणीय हानि का मूल्यांकन वांछनीय नहीं है। संक्षेप में, छाया कीमतों का प्रयोग पर्यावरणीय सेवाओं का एक शुद्ध माप नहीं है।

2. प्राकृतिक साधन अथवा हरित लेखा (Natural Resources or Green Accounting)

सतत् विकास की एक अन्य शर्त अथवा माप हरित लेखा है। यह किसी राष्ट्र के लिए आय के आकलन की आज्ञा किसी देश के प्राकृतिक साधन आधार में आर्थिक हानि और क्षीणता को ध्यान में रखते हुए देता है। यह सतत् आय स्तर का माप है जिसे प्राकृतिक सम्पत्ति के भण्डार को कम किए बिना प्राप्त किया जा सकता है। अतः इसकी आवश्यकता है कि राष्ट्रीय आय खातों की प्रणाली में प्राकृतिक सम्पत्ति के भण्डार के सन्दर्भ में समन्वय किया जाए।

कुल राष्ट्रीय उत्पाद के आकलन को राष्ट्रीय उत्पादन के माप द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा जिसमें प्राकृतिक साधनों की अवनति की आर्थिक लागत सम्मिलित होती है। इसे प्रत्यक्ष और परोक्ष और परोक्ष रूप में वस्तुएं और सेवाएं उत्पादित करने की आवश्यकता है। जी.एन.पी. में प्राकृतिक सम्पत्ति का भण्डार सम्मिलित होगा तथा सतत् विकास का माप NNP = GNP - DN हो सकता है। जहां DN, एक वर्ष में प्राकृतिक सम्पत्ति में मौद्रिक मूल्य का मूल्यह्रास है। परन्तु सतत आय के ऐसे माप का परिकलन बहुत कठिन है। यह विशेषतया गैर–विक्रय प्राकृतिक सम्पत्तियों और बाह्यताओं के मौद्रिक मूल्यकरण के परिकलन में होता है। हरित लेखा में अनेक विवादास्पद परिकलन और मूल्यांकन होते हैं।

3. पर्यावरणीय मूल्यों का माप (Measuring Environment Values)

पर्यावरणीय मूल्यों के माप में, एक अन्य समस्या उत्पन्न होती है। यह पर्यावरण सुरक्षा के लाभों की तथा इस पर किए गए खर्चे की तुलना से सम्बन्धित होती है। अर्थशास्त्रीयों ने विश्व विकास प्रतिवेदन 1992 में पर्यावरणीय क्षति के आर्थिक मूल्यांकन के लिए चार उपायों के सुझाव दिए हैं। जो इस प्रकार हैं–

1. बाजार मूल्य

विपरीत स्वास्थ्य प्रभावों और पर्यावरणीय क्षति के कारण उत्पादकता में हानि की स्थिति में बाजार मूल्य को उनका मूल्यांकन करना होता है। विधि के अनुसार मिट्टी के अपरदन, वनों की कटाई तथा वायु और जल के प्रदूषण के कारण हुई हानियों का मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए पर्यावरणीय क्षतियों तथा उत्पादन अथवा स्वास्थ्य पर इसके प्रभावों की गणना कीमतों के आधार पर की जाती है ताकि मौद्रिक मूल्य प्राप्त हों।

स्वास्थ्य जोखिमों से सम्बन्धित कल्याण सम्बन्धी हानियां जो प्रदूषित वातावरण के कारण होती है उन्हें उस आय द्वारा मापा जाता है जिसको बीमारी अथवा अपरिपक मृत्यु के कारण त्यागना पड़ता है। वास्तविक जीवन में, ऐसे अनुमानों का परिकलन कठिन होता है क्योंकि वे आय की हानि पर निर्भर करते हैं।

2. प्रतिस्थापन की लागतें

लोग एवं फर्में वायु, जल और भूमि को पर्यावरण की हानियों से बचाने के लिए वैकल्पिक उपकरण लगवाने में निवेश करते हैं। ये निवेश पर्यावरणीय हानियों का एक अनुमान उपलब्ध कर सकते हैं। वास्तव में इन हानियों के प्रभावों को मापना कठिन होता है।

3. प्रतिनिधि बाजार

पर्यावरणीय हानियों में अन्य बाजारों जैसे सम्पत्ति के मूल्यों और श्रमिकों के वेतनों पर पड़ने वाले प्रभावों को भी हिसाब में लिया जाता है। सम्पत्ति के प्रकरण में मूल्यांकन जोखिमों पर आधारित होता है। सामान्यतः उच्च पर्यावरणीय जोखिमों सहित कार्यों के लिए उच्च वेतन तथा उच्च जोखिम पुरस्कार होते हैं परन्तु यह विधि व्यवहार्य नहीं है क्योंकि श्रमिक पर्यावरण के कारण होने वाली हानियों से परिचित नहीं होते।

सर्वेक्षण – एक अन्य विधि है सर्वेक्षण, जिसका प्रयोग पर्यावरणीय हानियों के मूल्यांकन के लिए किया जाता है। इस विधि को विकासशील देशों में पर्यावरण के प्रभावों को जानने के लिए अपनाया जाता है। यह जातियों अथवा ऐतिहासिक वस्तुओं में सुख–सुविधा मूल्यों के निर्धारण करने में सहायता करती है।

4. सामाजिक छूट दर

प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि पर्यावरणीय अवनति लागतों का कारण बनती है। ये साधनों के उपयोगकर्त्ताओं के लाभों को सुधारती हैं। परन्तु समस्या यह है कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों पर पड़ने वाल पर्यावरणीय प्रभावों की लागतों और लाभों को कैसे मापा जाए? इस कार्य के लिए छूट की दर की आवश्यकता होती है, जिससे सभी लागतों तथा लाभों पर छूट लागू की जा सके। तथापि पर्यावरणीय लागतों

और लाभों की छूट के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के बीच बहुत भ्रम और अस्पष्टता है। उपर्युक्त परिचर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सतत् विकास के माप के लिए कोई स्वीकार योग्य उपाय विकसित किया जाना चाहिए।

4.12 सतत् विकास के लिए नीतियां (Policies for Sustainable Development)

प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण विश्वास है कि कृषि, उद्योग, शहरीकरण तथा संरचना क्षेत्रों में होने वाला सर्वांगीण विकास तथा जनसंख्या की वृद्धि पर्यावरणीय अवनति की ओर ले जाते हैं। अन्य शब्दों में पर्यावरणीय अवनति मानवीय स्वास्थ्य को हानि पहुंचाती है, आर्थिक उत्पदकता को कम करती है तथा सुख–सुविधाओं को हानि की ओर ले जाती है। पर्यावरणीय अवनति के हानिकारक प्रभावों को कम करने के लिए आर्थिक एवं पर्यावरणीय नीतियों का न्यायसंगत चयन और पर्यावरणीय निवेश समय की आवश्यकता है।

आओ हम इन नीतियों का विस्तार में वर्णन करें–

1. निर्धनता को कम करना

सर्व प्रमुख नीति निर्धनता को दूर करना है इसलिए ऐसी परियोजनाएं आरम्भ की जानी चाहिए जो निर्धन वर्ग को रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध करें। सरकार को चाहिए कि स्वास्थ्य, परिवार नियोजन और शिक्षा सेवाओं का विस्तार करें, जिससे जनसंख्या को कम करने में सहायता मिलेगी। नागरिक सुविधाओं जैसे पीने के जल की पूर्ति, सफाई की सुविधाएं, गन्दी बस्तियों के स्थान पर अच्छे निवास स्थान आदि देश में पर्यावरण के सुधार में बहुत सहायक होंगे।

2. वित्तीय सहायताओं की समाप्ति

किसी वित्तीय लागतों के बिना पर्यावरणीय अवनति को कम करने के लिए सरकार को निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों को संसाधनों के प्रयोग के लिए दी गई रियायतों को समाप्त किया जाना चाहिए।

वास्तव में इन रियायतों के कारण, बिजली, उर्वरकों, कीटनाशकों, डीजल, पैट्रोल, गैस, सिंचाई के जल आदि का दुरूपयोग होता है। बदले में ये सब पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न करते हैं। इन रियायतों की समाप्ति अथवा इनको कम करने से देश को सब ओर से लाभ प्राप्त होगा।

3. बाजार आधारित अभिगम

पर्यावरण के बचाव के लिए बाजार आधारित अभिगमों को अपनाने की अत्यधिक आवश्यकता है। वे उपभोक्ताओं और उद्योगों को पर्यावरण पर प्राकृतिक साधनों के प्रयोग की लागत के सम्बन्ध में बताते हैं। बाजार आधारित उपकरण (MIBs) सर्वोत्तम नीति है। ये दो प्रकार की है।

1. मात्रा आधारित और कीमत आधारित वे पर्यावरणीय करों के रूप में होते हैं जिनमें सम्मिलित हैं– प्रदूषण खर्चे (निस्सरण कर/प्रदूषण कर) विपणन योग्य आज्ञा पत्र, जमाकर्ता कोष प्रणाली, आगत कर/उत्पाद खर्चे, विविध प्रकार के कर दरें और उपयोगकर्ता के प्रशानिक खर्चे।
2. वायु और जल साधनों के लिए प्रदूषण कम करने से सम्बन्धित साज–सामान के लिए आर्थिक सहायता।

4. सम्पत्ति अधिकारों का वर्गीकरण और प्रसार

साधनों के अत्यधिक उपयोग पर सम्पत्ति अधिकारों का अभाव पर्यावरण को अवनति की ओर ले जाता है। इस कारण सांझी अथवा सार्वजनिक भूमि पर अधिक चराई, वनों की कटाई तथा खनिजों तथा मत्स्य क्षेत्रों का अत्यधिक प्रयोग हो जाता है।

5. आर्थिक प्रोत्साहन

कीमत, मात्रा और प्रोद्योगिकी से सम्बन्धित आर्थिक प्रोत्साहन पर्याप्त सहायता कर सकते हैं। प्रोत्साहन प्रायः साधनों के प्रयोगकर्ताओं को वायु, जल और भूमि के प्रयोग में प्रदूषकों की मात्रा के लिए विविधतापूर्वक शुल्कों के रूप में दिए जाते हैं। सरकार द्वारा निर्धारित निस्सरण मानकों से कम प्रदूषण उत्पन्न करने पर उन्हें दी जाती है।

6. नियामक नीतियां

पर्यावरणीय अवनति को कम करने के लिए प्रयुक्त होने वाला एक अन्य शस्त्र नियामक नीतियां हैं। नियन्त्रक को कीमत, प्रदूषण की मात्रा कीमत अथवा साधन प्रयोग अथवा तकनीकों के सम्बन्ध में निर्णय करने होते हैं। नियामक अधिकारी निर्णय यह लेता है कि क्या नीतियों को प्रत्यक्ष रूप में पर्यावरणीय समस्याओं को लक्षित करना चाहिए अथवा परोक्ष रूप में।

वह तकनीकी मानकों का निर्धारण करता है और वायु, जल, भूमिप्रदूषकों पर नियम और खर्चे निर्धारित करता है। नियामक प्राधिकरण को पर्यावरणीय मानक लागू करने में सार्वजनिक एवं निजी प्रदूषणकर्ताओं अथवा साधन प्रयोगकर्ताओं के प्रति भेदभाव रहित होना चाहिए।

7. व्यापार नीति

पर्यावरण के सम्बन्ध में व्यापार नीति के दो उलझाव हैं–

1. घरेलू नीति सुधारों के सम्बन्ध में,
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति से सम्बन्धित।

घरेलू व्यापार नीति कम प्रदूषण वाले उद्योगों को शहरों से दूर स्थापित करने पर बल देती है तथा प्रदूषणकारी उद्योगों के लिए साफ–सुथरी तकनीकें अपना कर पर्यावरण हितैषी प्रक्रियाओं पर बल देती है।

8. सार्वजनिक जागरूकता

सार्वजनिक जागरूकता और सहभागिता पर्यावरणीय स्थितियों को सुधारने में बहुत सहायक हैं। पर्यावरण प्रबन्ध और पर्यावरण जागरूकता से सम्बन्धित औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम पर्यावरण की अवनति को नियन्त्रित करने में और पर्यावरण को साफ–सुथरा रखने में बहुत सहायता करते हैं। इसलिए लोगों का सहयोग लागत रहित एवं उपयोगी वन लगाने, वन्य जीवन के संरक्षण, उद्यानों की व्यवस्था, सफाई तथा जल विकास प्रणाली और बाढ़ नियन्त्रण आदि में सहायता उपलब्ध करता है।

9. सार्वभौम पर्यावरण प्रयत्नों में सहभागिता

आधुनिक काल में यह महसूस किया जाता है कि सार्वभौम पर्यावरण प्रयत्नों में सहभागिता पर्यावरण की अधोगति उत्पन्न हानियों को न्यूनतम बनाने में सहायता करती है। इसलिए पर्यावरण के संरक्षण पर समझौते करने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। इसमें मौन्टरीयल प्रोटोकॉल सम्मिलित हैं जिसका प्रयोजन ओजोन–समाप्ति के रसायनों को दूर करना है।

4.13 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) सतत् विकास (Sustainable Development)
2) संधारणीयता (Sustainability)
3) सतत् विकास की विशेषताएं (Charactristics of Sustainable Development)
4) सतत् विकास के लिए शर्तें (Conditions for Sustainable Development)

4.14 सारांश (Summary)

सतत् विकास को पढ़ना हमारे लिए बहुत आवश्यक हो जाता है। आज विश्व में विकास के नाम पर पर्यावरण को ठेस पहुंचाने की बात आम हो गयी है। मनुष्य प्रकृति का दोहन करता ही जा रहा है। निःसन्देह मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न माध्यमों से प्राकृतिक व अन्य संसाधनों से है। लेकिन प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुंध प्रयोग प्रकृति के अनुकूल नहीं है। इसलिए ऐसे विकास की आवश्यकता है जो वर्तमान की पीढ़ी की जरूरतें भी पूरी करें और भावी पीढ़ी के लिए भी संसाधन बचाएं। एक ऐसी अवधारणा पनपी जिसे सतत् विकास के नियम से जाना जाता है। विकास ही वह सतत् विका हो जिसमें क्षति को ध्यान में रखकर संरक्षण, विकास प्रगति की जाए।

4.15 शब्दावली (Glossary)

- पर्यावरण मूल्य – पर्यावरणीय मूल्य मनुष्य और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच नैतिक सम्बन्ध बनाए रखता है। हमें प्रकृति, सभी जीवित प्राणियों का सम्मान करना सीखना चाहिए।

4.16 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 4.3 व 4.4 देखें।

2) सन्दर्भ 4.2 देखें।

3) सन्दर्भ 4.8 देखें।

4) सन्दर्भ 4.11 देखें

4.17 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को. प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

4.18 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) सतत् विकास की अवधारणा को स्पष्ट एवं पारिभाषित करें।

2) सतत् विकास के उद्देश्य व विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

3) सतत् विकास के सिद्धान्त, इसके लिए कुछ शर्तें व नितियों का उल्लेख विस्तारपूर्वक कीजिए।

4) 17 सतत् विकास लक्ष्यों पर प्रकाश डालें।

*****

अध्याय – 5

प्रकृति संसाधन : भूमि संसाधन, भूमि अवनयन, मृदा अपरद व मरूस्थलीकरण के कारण व परिणाम

संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 प्राकृतिक संसाधन

5.1.1 प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

5.1.2 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

5.3 भूमि संसाधन और भूमि उपयोग परिवर्तन

5.4 भूमि अवनयन

5.4.1 भूमि अवनयन के लिए जिम्मेदार कारक

5.5 मृदा अपरदन तथा मरूस्थलीकरण

5.5.1 मृदा अपरदन से होने वाली हानियां और कारण

5.5.2 मृदा अपरदन को रोकने के उपाय

5.5.3 मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण

5.5.4 नियंत्रण के उपाय

5.6 वनोन्मूलन और उसके परिणाम

5.6.1 वनोन्मूलन के कारण

5.7 स्वयं जांच प्रश्न

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 स्वयं जांच उत्तर

5.11 सन्दर्भ–ग्रन्थ

5.12 अभ्यासात्मक–प्रश्न

5.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्राकृतिक संसाधन वे संसाधन हैं जो मानव जाति के कार्यों के बिना मौजूद हैं। दूसरे शब्दों में, वो प्राकृतिक पदार्थ, जो अपने अपेक्षाकृत मूल प्राकृतिक रूप में मूल्यवान माने जाते हैं उन्हें प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। इन सभी मूल्यवान संसाधनों की विशेषताओं में चुम्बकीय, गुरुत्वीय, विद्युतीय गुण या बल आदि शामिल हैं। पृथ्वी में सूर्य के प्रकाश, वायुमंडल, जल एवं थल के साथ–साथ सभी सब्जियों, फसलों और पशुओं के जीवन से प्राकृतिक प्राप्त पदार्थ आदि प्राकृतिक संसाधनों की सूची में शामिल है। एक प्राकृतिक संसाधन का मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि कितना पदार्थ उपलब्ध है और उसकी मांग कितनी है। इनको दो भागों में बांटा गया है।

5.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- प्राकृतिक संसाधन के बारे में,
- भूमि अपरदन के लिए जिम्मेदार कारक का पता चलेगा,
- मृदा अपरदन व मरूस्थलीकरण के बारे में विस्तृत चर्चा करेंगे।

5.2 प्राकृतिक संसाधन

ऐसे संसाधन जिसे मानव द्वारा दोबारा प्राप्त करने में हज़ारों–लाखों साल का समय लगता है या जिसकी पृथ्वी में मानव द्वारा पूर्ति असम्भव है आदि को अनवीकरणीय संसाधन की संज्ञा दी गई है और मानव द्वारा पुनः प्राप्त किए जाने वाले संसाधन को नवीकरणीय संसाधन की श्रेणी में रखा गया है। अनवीकरणीय संसाधन में कोमला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस आदि आते हैं।

5.2.1 प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

इसका संदर्भ प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि भूमि, जल, मृदा, वनस्पति तथा जीव–जन्तु के प्रबंधन से है जो दोनों वर्तमान व भविष्य की पीढ़ियों के लिए जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करने पर विशेष ध्यान देता है। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन सतत विभाग, पतन वैशविक भूमि प्रबंधन और पर्यावरण शासन के आधार बनाता है। औद्योगिकरण, शहरीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या के कारण सघन खेती अपनाने से इन संसाधनों का अनुचित दोहन होने से इन पर दबाव बड़ा है और सम्पूर्ण जीव जगत् का अस्तित्व खतरे में है। पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों यथा नवीन, पल, जानवर, जंगल एवं जल का संग्रहण, संरक्षण, संवर्द्धन इस ढंग से किया जाये कि टिकाऊ खेती के माध्यम से सम्यक उत्पादन एवं उत्पादकता प्राप्त हो सके। हमें प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि यह संसाधन असीमित नहीं है। स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है जिसके कारण संसाधनों की मांग भी कई गुणा तेजी से बढ़ी है। इस प्रबंधन में इस बात को भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि इनका वितरण सभी वर्गों में समान रूप से हो, न कि मात्र मुट्ठी भर अमीर और शक्तिशाली लोगों को इनका लाभ मिले। एक और बात ध्यान देने की आवश्यकता है जब हम इन संसाधनों का दोहन करते हैं तो हम पर्यावरण को क्षति पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए खनन से प्रदूषण होता है क्योंकि घाट के निष्कर्षण के साथ–साथ बड़ी मात्रा में धातु मल भी निकलता है। अतः संपोषित प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में अपशिष्टों के सुरक्षित निपटने की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

5.2.2 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources)

प्राकृतिक संपदाओं का योजनाबद्ध और विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए तो उनसे अधिक दिनों तक लाभ उठाया जा सकता है, वे भविष्य के लिए संरक्षित रह सकती है। मनुष्य अपने जीविकोपार्जन के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता है। आज के समय में मनुष्य ने संसाधनों के दोहन की प्रौद्योगिकी में विकास किया। जनसंख्या की निरंतर वृद्धि के कारण संसाधनों की मांग बढ़ रही है। साथ ही प्रोद्योगिकी के विकास द्वारा इन्हें उपभोग करने की मनुष्य की क्षमता भी बड़ी है। अतः यह जानना आवश्यक है कि कहीं ये संसाधन शीघ्र समाप्त न हो जाए और पूरी मानवता के जीवन पर ही प्रश्नचिह्न न लग जाए। हमें प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए–

1. जल संसाधन के संरक्षण के लिए जल का उचित संग्रहण करना आवश्यक है। यह भूस्तरीय जल की स्थिति को सुधारने के लिए भी आवश्यक है।

2. नदी, तालाब, कुएं आदि को हर प्रकार के प्रदूषण से मुक्त रखना चाहिए।
3. वनों की अंधाधुंध कटाई को रोकना चाहिए। वृक्षारोपण कार्यक्रम वृहद पैमाने पर चलाना तथा नए लगाये पौधों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए।
4. ढलवा भूमि पर मिट्टी के बहाव को रोकने के लिये अधिकाधिक वृक्ष लगाने चाहिए।
5. अधिक संख्या में वृक्षा रोपण न केवल भू–संपदा का संरक्षण करेगा वरन मूल्यवान क्षेत्रीय खनिजों को भी पानी के साथ बह जाने से रोकेगा।
6. वाहनों तथा कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं से वायु, संसाधनों के दूषित होने से बचाने के लिए कड़े नियम बनाने चाहिए।
7. प्राकृतिक गैस, कोल तथा पेट्रोलियम पदार्थों के संरक्षित करने के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों यथा जल–ऊर्जा, वायु और सौर ऊर्जा का उपयोग करना चाहिए।
8. प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण संरक्षण हेतु जनचेतना उत्पन्न करनी चाहिए।

उपर्युक्त वर्णित उपायों के अलावा वैकल्पिक संसाधनों का उपभोग, बढ़ती हुई जनसंख्या पर रोक लगाना आदि ऐसे सुरक्षात्मक उपाय है जो प्राकृतिक संसाधनों पर मंडराते हुए विनाश के खतरों को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

5.3 भूमि संसाधन और भूमि उपयोग परिवर्तन (Land Resource and Land use Change)

भूमि एक प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला सीमित संसाधन है। यह जीवित प्राणियों के अस्तित्व के लिए आधार प्रदान करता है। यह सब कुछ धारण करता है जो स्थलीय परिस्थितियों तंत्र का गठन करता है। मानव आबादी में वृद्धि और परिणामी गतिविधियों के कारण आधुनिक समय में भूमि की बढ़ती मांग के परिणामस्वरूप भूमि की गुणवत्ता और मात्रा में गिरावट और भूमि के लिए प्रतिस्पर्धा हुई है। भूमि और भूमि संसाधन पृथ्वी भी स्थलीय सतह के एक परिसीमन योग्य क्षेत्र को संदर्भित करते हैं, जिसमें इस सतह के ठीक ऊपर या नीचे जीवमंडल की सभी विशेषताओं को शामिल किया गया है, जिसमें निकट सतह की जलवायु, मिट्टी और श्लाके के रूप, सतह, जल विज्ञान शामिल हैं। साथ ही प्रमुख और अन्य जीवों के लिए जरूरी पदार्थों का यह स्त्रोत है जिसे भूमि ही उपलब्ध कराती है। विविध उद्देश्य जिनके लिए भूमि का इस्तेमाल किया जाता है, कृषि और उद्यानकृषि (बागवानी) उत्पादन के लिए, ऊर्जा उत्पादन के लिए, मानव निवास और व्यवसायिक उद्देश्यों जंगल इत्यादि भू–संसाधनों में शामिल है। भूमि हमारा मौलिक संसाधन है। भूमि संसाधन के कई भौतिक रूप है जैसे पर्वत, पहाड़ियाँ, मैदान, निम्नभूमि और घाटियाँ आदि। भूमि विविध प्रकार की वनस्पति का मूल आधार है। अतः किसी स्थान विशेष में भूमि संसाधन का अर्थ है वहाँ की मृदा और उच्चावच लक्षण। किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि भूमि संसाधनों के उपयोग पर निर्भर करती है।

भूमि उपयोग परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्राकृतिक परिदृश्य को प्रत्यक्ष रूप से बस्तियों वाणिज्यिक एवं आर्थिक उपयोग तथा वानिकी गतिविधियों जैसे मानव–प्रेरित भूमि उपयोग के लिए परिवर्तित कर दिया जाता है। यह ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन, भूमिक्षरण और जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में समग्र वातावरण को प्रभावित करता है। यह वायुमंडल में CO_2 के संकेन्द्रण का एक कारण हो सकता है। इस प्रकार यह वैश्विक जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। कुल वैश्विक उत्सर्जन में इसका प्रतिनिधित्व लगभग 25 प्रतिशत है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या और उसके परिणामस्वरूप संसाधनों पर उच्च दबाव भूमि क्षेत्र के मौजूदा प्राकृतिक संसाधनों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। भोजन की मांग में लगातार वृद्धि के कारण वन, झाड़ी और आर्द्रभूमि सहित और कृषि क्षेत्रों पर अतिक्रमण कर फसल क्षेत्र का विस्तार किया गया है। विशेष रूप से निर्माण

ईंधन के लिए वानिकी संसाधनों के निरंतर उपयोग के कारण वनों की सघनता में व्यापक कमी तथा कृषि उपकरणों के कारण कृषि योग्य भूमि का क्षरण हुआ है। किसान प्रायः मिट्टी की उर्वरता में गिरावट की स्थिति में खेती की भूमि को छोड़ चराई के लिए छोड़ देते हैं। आर्द्रभूमि। वेरलैंड को खेती और आवास भूमि में बदलने से आर्द्र भूमियों का विनाश होता है। भूमि उपयोग परिवर्तन को धीमा और प्रतिवर्तित करने की तत्काल आवश्यकता को अत्युक्तिपूर्ण नहीं माना जा सकता है क्योंकि भूमि जैव–विविधता का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। भूमि उपयोग पृथ्वी के किसी क्षेत्र का मनुष्य द्वारा उपयोग को सूचित करता है। भूमि उपयोग और इसमें परिवर्तन का किसी क्षेत्र के पर्यावरण और परिस्थितिकी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। किसी भी भौगोलिक क्षेत्र के पर्यावरण और परिस्थितिक तंत्र के संतुलन में उपयोग की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। जैसे–जैसे विकास प्रक्रिया आगे बढ़ती है और नये मोड़ लेती है। समतल भूमि की मांग बढ़ती है, नये कार्यों और उद्योगों के लिए भूमि की आवश्यकता होती है व परंपरागत उपयोगों में अधिक मात्रा में भूमि की मांग की जाती है। सामान्यतः इन नये उपयोगों अथवा परंपरागत उपयोगों में बढ़ती हुई भूमि की मांग की आपूर्ति के लिए कृषि के अंतर्गत भूमि को काटना पड़ता है और इस प्रकार भूमि कृषि उपयोग में गैर कृषि कार्यों में प्रयुक्त होने लगती है। जहां इस प्रक्रिया से एक ओर सामान्य कृषक में निर्वाह श्रोत का विनाश होता है, दूसरी ओर समग्र अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कृषि पदार्थों की मांग और पूर्ति में गंभीर असंतुलन उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक समझा जाता है कि विकास प्रक्रिया के दौरान जैसे–जैसे समतल भूमि की मांग बढ़ती है उसी के साथ ही बंजर परती तथा बेकार पड़ी भूमि को कृषि अथवा गैर कृषि कार्यों के योग्य बनाने के लिए प्रयास करना चाहिए। भूमि समान गतिविधियों का आधार है, इस पर ही समस्त गतिविधियों और आर्थिक क्रियाओं का सृजन और विकास होता है। भारत में ग्रामीण भूमि उपयोग की विभिन्न श्रेणियाँ इस प्रकार है–

- वन
- बंजर तथा कृषि अयोग्य भूमि
- गैर–कृषि उपयोग हेतु प्रयुक्त भूमि
- कृषि योग्य बंजर
- स्थायी चारागाह एवं पशुचारण
- वृक्षों एवं झाड़ियों के अंगर्तत भूमि
- चालू परती
- अन्य परती
- शुद्ध बोया गया क्षेत्र
- एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र

भारत में पहली बार तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के प्रयासों द्वारा सन् 1988 में एक राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति बनाई गई। इसके द्वारा भूमि उपयोग में अवांछित परिवर्तन को अवैध करार दिया गया। 2013 में राष्ट्रीय वन नीति बनाई गई। इस नीति के अनुसार देश को मुख्य भूमि उपयोगों के आधार पर छह मण्डलों में बांटने की योजना है। प्रत्येक प्रकार के क्षेत्र के लिए स्थानीय तौर पर अलग जरूरतों के मुताबिक अलग तरह के आयोजन तरीकों का उपयोग किया जाएगा। यह नीति वर्तमान समय में चल रहे भूमि अधिग्रहण विवादों के कारण भी महत्त्वपूर्ण है।

5.4 भूमि अवनयन (Land Degradation)

भूमि अवनयन और मरूस्थलीकरण के प्राकृतिक कारणों के रूप में जल और वायु प्रमुख जिम्मेदार तत्त्व हैं। जल जनित अपरदन जो कि अवनयन का सबसे विस्तृत रूप है। जब भूमि की गुणक्ता घटने लगती है, उसकी उपयोगिता कम होने लगती है और उसकी उत्पादक क्षमता में कमी आ जाती है तब उपजाऊ शक्ति में कमी आने को भूमि अवनयन कहते हैं।

5.4.1 भूमि अवनयन के लिए जिम्मेदार कारक

- मृदा का अपरदन
- मृदा अर्थात मिट्टी में हानिकारक लवणों से वृद्धि होना
- वनों की अत्यधिक कटाई
- अत्यधिक खनन होना
- मनुष्य द्वारा किए जाने वाले महत्त्वाकांक्षी विकास के कार्य
- भूमि के मरुस्थलीकरण में वृद्धि होना।
- पशुओं द्वारा भूमि की आवश्यकता से अधिक चर लेना
- जरूरत से ज्यादा सिंचाई
- शहर का कचरा और औद्यागिक कारखानों की अपविष्ट का भूमि पर डालना
- रसायनिक खादों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग करना
- भूजल का स्तर गिरना

इसके अलावा जनसंख्या विस्फोट, औद्योगिकरण, शहरीकरण, वनविनाश, अत्यधिक चराई झूम कृषि तथा खनन गतिविधियाँ भूमि संसाधनों के क्षरण के प्रमुख कारण हैं। इसके अतिरिक्त रसायनिक उर्वरकों एवं नाशीजीवनाशकों (पेक्टीसाइज्स) पर आधारित पारम्परिक कृषि भी भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण है। हरित क्रान्ति के आगमन से कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए रसायनिक खादों, कीटनाशकों तथा शाकनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से न केवल वातावरण प्रदूषित हुआ है, अपितु भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीवों की जनसंख्या में भी लगातार गिरावट दर्ज की गयी है, जिसमें मृदा की पैदावार शक्ति में कमी आयी है। अत्यधिक रक्तायनिक उर्वरकों विशेषकर यूरिया के प्रयोग से भूमि अम्लीय हो जाती है। अम्लीय मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्त्वों जैसे कापर तथा जिंक पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की मृदा में आमतौर से कैल्शियम तथा पोटाशियम तत्त्वों का अभाव होता है। इसलिए इस प्रकार की मृदा में फसल की पैदावार में गिरावट आ जाती है।

भूमि जैसे महत्त्वपूर्ण संसाधन का क्षरण देश के समक्ष एक गंभीर समस्या है। अतः इस समस्या का निराकरण समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो निकट भविष्य में देश में खाद्यान्न उत्पादन की दर में गिरावट होगी।

5.5 मृदा अपरदन तथा मरूस्थलीकरण (Soil Erosion and Desertification)

मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जो कि जीवन बनाये रखने में सक्षम है। पौधे वर्षा को रोकते हैं तथा पेड़ों के कटने और पौधे के नष्ट होने से मृदा अपरदन होता है। पौधों की जड़े स्थान (भूमि) की मिट्टी को पकड़े रहती है। पौधों की रक्षात्मक परत के नष्ट होने के कारण मृदा की ऊपरी सतह जो कार्बनिक पदार्थों से भरपूर होती है, वह पानी है और मृदा अपनी उर्वरता खो देती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भूमि की ऊपरी सतह

का पानी या हवा के कारण एक जगह से दूसरी जगह चली जाती है जिसे मृदा अपरदन या मिट्टी का कटाव कहते हैं। ऐसा रेगिस्तान में बहुत ज्यादा होता है क्योंकि वहां पर मिट्टी हवा के साथ बहुत ज्यादा एक जगह से दूसरी जगह चली जाती है। ऐसी जगह जहां पर कोई भी पेड़–पौधा या घास न हो वहां भी मिट्टी की पानी के साथ कटकर आगे बह जाती है जो कि मृदा अपरदन का ही रूप है।

मृदा अपरदन के कारण बहुत सारी हानियां होती हैं जैसे कि उपजाऊ मिट्टी बहकर आगे चली जाए तो वह जमीन उपजाऊ नहीं रहती। इसलिए मृदा अपरदन को रोकना बहुत ही जरूरी है। मृदा अपरदन होने के कई कारण हैं– जैसे जंगलों की कटाई, बाढ़ और आंधियों का आना, वनों में आग लग जाना, कृषि करने के वैज्ञानिक तरीके इत्यादि। आज के समय की सबसे गंभीर समस्या जंगलों की कटाई है। पहले के मुकाबले आज के समय में बहुत ज्यादा मात्रा में पेड़ों को काटा जा रहा है जिसके कारण वहां की मिट्टी अब पहले जैसी मजबूत नहीं रही और यह बहुत ही आसानी से पानी के साथ में बह कर आगे चली जाती है। पेड़ों के कट जाने से मिट्टी में नमी नहीं रहती और वह बहुत जल्दी सुखकर हवा के साथ भी उड़ जाती है।

5.5.1 मृदा अपरदन से होने वाली हानियां और कारण

- बाढ़ और आंधियों का आना
- अनियंत्रित पशुओं को चराना
- वनों में आग लगना
- कृषि करने के वैज्ञानिक तरीके

5.5.2 मृदा अपरदन को रोकने के उपाय

- मजबूत पेड़बंदी
- भूमि को समतल करें
- जीवांश खाद मिलाना
- पेड़–पौधे लगाना
- वनस्पति उगाना
- वन संरक्षण
- बाढ़ नियंत्रण

मरूस्थलीकरण शुष्क भूमि में भूमि क्षरण का एक प्रकार है जिसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं के कारण जैविक उत्पादकता खो जाती है या मानवीय गतिविधियों से प्रेरित होती है जिससे उपजाऊ क्षेत्र तेजी से शुष्क हो जाते हैं। यह जलवायु परिवर्तन और मानव गतिविधि के परिणामस्वरूप मिट्टी के अत्यधिक दोहन जैसे विभिन्न कारकों के कारण शुष्क क्षेत्रों का फैलाव है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मरूस्थलीकरण एक ऐसी भौगोलिक घटना है जिसमें उपजाऊ क्षेत्रों में भी मरूस्थल जैसे विशिष्टताएं विकसित होने लगती है। मरूस्थलीकरण से प्राकृतिक वनस्पतियों का क्षरण तो होता ही है, साथ ही कृषि उत्पादकता, पशुधन एवं जलवायवीय घटनाएं भी प्रभावित होती है। इसके कारण न केवल मानवीय जीवन बल्कि वन्यजीवन भी प्रभावित हो रहा है और भू–क्षरण बढ़ रहा है जिससे निकट भविष्य में खाद्यान्न संकट गहराने की संभावना जताई जा रही है।

5.5.3 मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण

1) पानी के कटाव – नदियों से होने वाले जमीन के कटाव के कारण सौराष्ट्र और कच्छवे ऊपरी इलाकों के काफी बड़े क्षेत्र प्रभावित हुए हैं। कटाव के कारण जमीन की सतह में कई तरह के बदलाव आते हैं और भू–क्षरण बढ़ता है।

2) हवा से मिट्टी का कटाव – इसका सबसे बुरा असर थार के रेतीले टीलों और रेत की अन्य संरचनाओं पर पड़ा है। मरूस्थल के अन्य भागों में किसान यह बात स्वीकार करते हैं कि ट्रैक्टरों के जरिये गहरी जुताई, रेतले पहाड़ी इलाकों में खेती, अधिक समय तक जमीन को खाली छोड़ने और अन्य परंपरागत कृषि प्रणालियों से रेत का प्रसार और जमीन के मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया तेज होती है।

3) औद्योगिक कचरा – हाल के वर्षों में राजस्थान के औद्योगिक कचरे से भूमि और पल प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। जोधपुर, पाली और बलोत्रा कस्बों में कपड़ा रंगाई और छपाई उद्योग से निकले कचरे को नदियों में छोड़े जाने से भू–तलीय और भूमिगत जल प्रदूषित हो गया है।

4) निर्वनीकरण– वनों का कटाव मरूस्थल के प्रसार का प्रमुख कारण है। गुणात्मक रूप से बढ़ती जनसंख्या के कारण जमीन पर बढ़ते दबाव की वजह से पेड़–पौधों और वनस्पतियों के ह्रास में वृद्धि हो रही है। जंगल सिकुड़ रहे हैं और मरूस्थलीकरण को बढ़ावा मिल रहा है।

5.5.4 नियंत्रण के उपाय

सर्वप्रथम वृक्षारोपण की दर को तेजी से बढ़ाना होगा एवं समांतर रूप से निर्वनीकरण पर रोक लगानी होगी। मरूस्थलीय क्षेत्र में क्षेत्र के अनुकूल पौधों को लगाया जाना चाहिए। मिट्टी के अपरदन को रोका जाना चाहिए, साथ ही कृषि कार्यों में अत्यधिक रसायनिक उर्वरक का प्रयोग न करते हुए मरूस्थलीय क्षेत्र में सूक्ष्म सिंचाई को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। अवैध खनन गतिविधियों पर रोक एवं कॉर्पोरेट कंपनियों को 'कॉपोरेट सोशल रेस्पास्सिंविलिटी' के तहत वृक्षारोपण का कार्य सौंपा जाना चाहिए।

5.6 वनोन्मूलन और उसके परिणाम

केवल ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर वन सम्पूर्ण संसार में पाये जाते हैं। आरम्भ में भूमि का एक तिहाई भाग वनों से ढका हुआ था। आप पहले ही जान चुके हैं कि मानव विकास के प्रारम्भ से ही वे वन संसाधनों पर निर्भर रहते थे। वन सौर ऊर्जा का एक प्राकृतिक उपयोगकर्ता है। वे विभिन्न प्रकार के जीवों को पर्यावास प्रदान करते हैं जिनमें बड़े वन्य पशु भी सम्मिलित हैं। आदिम मानव भी तो वनों में रहते थे और अपने जीवनयापन के लिए पूर्णतः वनों पर निर्भर रहते थे जब तक उन्होंने खेती करना शुरू नहीं किया था। वनों के पेड़ों की कटाई को वनोन्मूल कहते हैं। विभिन्न प्रकार के कार्यों के कारण दुनिया के विभिन्न भागों में वनोन्मूलन एक चेतावनी की दर से किया गया है जिसके कारण वन्य पौधों और प्राणियों का अत्यधिक विनाश हुआ है। वनोन्मूलन का अर्थ है वनों के क्षेत्रों में पेड़ों को जलाना या काटना।

जंगलों को विभिन्न कारणों से काटा गया है–

1. विकासीय प्रक्रियाओं के लिए

जैसे ही मानव बस्तियां, शज्ञय, भूमि, इमारतें (भवन), उद्योगों, स्कूल, अस्पताल, रेल और सिंचाई हेतु नहरें इत्यादि बनाने के लिए आवश्यक विकासीय प्रक्रियाओं का आरम्भ किया। ऊपर बतायी गयी सभी विकासीय प्रक्रियाओं हेतु आवश्यक भूमि की जरूरत को पूरा करने के लिए वनों की कटाई की गयी।

2. इमारती लकड़ी और जलाने के लिए लकड़ी

काष्ठ का प्रयोग भवन निर्माण, फर्नीचर बनाने और मानव के लिए उपयोगी अन्य वस्तुओं के बनाने के लिए किया जाता है। पेड़ जिनसे काष्ठ प्राप्त होता है, जंगल में उगते हैं और इमारती लकड़ी के लिए काट लिए जाते हैं। खाना पकाने और गर्मी प्राप्त करने के लिए ईंधन के उपयोग किए जाने पर भी वनोन्मूलन किया जाता है।

3. चारागाह के लिए

वनों को काट कर घास उगायी जाती है और चारागाहों में बदल दिया जाता है ताकि मवेशी चर सकें।

4. स्थानान्तरित कृषि

स्थानान्तरित कृषि फसल उगाने की एक पद्धति है जिसमें जंगलों का काटना और गिरे हुए (टूटे हुए) पेड़ों को हटाने के लिए जलाना है ताकि खेती के लिए जमीन साफ की जा सके। साफ की गयी भूमि पर कुछ सालों तक फसलें उगायी जाती हैं और इसके कुछ समय बाद भूमि अपनी उर्वरता खो देती है। बाद में किसी नये वन क्षेत्रों को खेती के लिए साफ किया जाता है और यही चक्र बार–बार दोहराया जाता है।

5.6.1 वनोन्मूलन के कारण

- **मृदा अपरदन (Soil Erosion)**

पौधें वर्षा को रोकते हैं और पेड़ों के कटने और पौधे के नष्ट होने से मृदा अपरदन होता है। पौधों की जड़ें स्थान (भूमि) की मिट्टी को जकड़े रहती हैं। पौधों की रक्षात्मक परत के नष्ट होने के कारण मृदा की ऊपरी सतह जो कार्बनिक पदार्थों से भरपूर होती है, बह जाती है और मृदा अपनी उर्वरता खो देती है।

- **भूस्खलन (Landslides)**

वनों से पेड़ों के नष्ट होने से मृदा अपरदन को बढ़ावा मिलता है। यह अंततः पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन का कारण होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पौधों की जड़े मिट्टी को स्थिर दशा में पकड़े रहती है।

- **गाद का जमाव (Silting)**

वनों से पेड़ों की क्षति नदियों और झीलों की गाद इकट्ठा होने का भी कारण होती है जिससे मृदा (मिट्टी) ढीली होकर वर्षा के जल के साथ बह जाती है और जल स्रोतों में पहुंच जाती है।

- **वन्य पर्यावरण की क्षति**

वन्य जीवन जंगल में रहते हैं। जंगलों के काटने का अर्थ है कि उनके पर्यावासों को नष्ट कर देना जिसके परिणामस्वरूप वे या तो संकटापन्न हो जाते हैं या फिर विलुप्त हो जाते हैं।

- **वनोन्मूलन**

वनोन्मूलन के परिणामस्वरूप जलवायु में बदलाव आया है क्योंकि पेड़ आसपास के वातावरण को आर्द्र बनाए रखते हैं। पेड़ों को क्षति से आर्द्रता की कमी हो जाती है। पौधों से होने वाले वाष्पोत्सर्जन से बादल भी बनते हैं और वनोन्मूल के कारण वर्षा में कमी आती है।

- **CO_2 सिंक में कमी**

उद्योगों से निकलने वाले प्रदूषकों की CO_2 को पौधे ले लेते हैं। जब वन खत्म हो जाते हैं तब यह CO_2 सिंक कम हो जाता है और CO_2 पर्यावरण में एकत्र होती है।

- **प्रदूषण**

जब पेड़ों को काटकर फर्नीचर या कागज बनाया जाता है, आरमिल और कागज मिलों से निकला हुआ जल जिसमें अपशिष्ट पदार्थ होते हैं, प्रदूषण करते हैं।

- **औषधीय और अन्य उपयोगी पौधों की क्षति**

विशिष्ट औषधीय पौधे विशेष वनों में उगते हैं। वनोन्मूलन के कारण वे नष्ट हो जाते हैं। सुगंधित शाक, रबर के पेड़ और दूसरे अन्य पौधे भी वनोन्मूलन के कारण नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार वन का विनाश बड़े पैमाने पर पर्यावरण अवक्रमण को बढ़ाता है।

5.7 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) प्राकृतिक संसाधन किसे कहते हैं?

2) भूमि अवनयन तथा इसके लिए जिम्मेदार कारकों की व्याख्या कीजिए।

3) मृदा अपरदन को रोकने के क्या उपाय है?

5.8 सारांश (Summary)

प्राकृतिक संसाधन वे संसाधन होते हैं जो हमें प्रकृति से प्राप्त होते हैं। पृथ्वी में सूर्य के प्रकाश, वायुमण्डल, जल एवं थल के साथ–साथ सभी सब्जियों, फसलों और पशुओं के जीवन से प्राकृतिक पदार्थ आदि प्राकृतिक संसाधनों की सूची में शामिल है। भूमि एक प्राकृतिक रूप में पाया जाने वाला सीमित संसाधन है। जनसंख्या विस्फोट, औद्योगिकरण, शहरीकरण, वनविनाश, अत्यधिक चराई, झूम कृषि तथा खनन गतिविधियां भूमि संसाधनों के क्षरण के प्रमुख कारण है।

5.9 शब्दावली (Glossary)

- **संसाधन** – कोई पदार्थ जो कि मनुष्य के लिए मूल्यवान व उपयोगी है, संसाधन कहलाता है।
- **पर्यावरण** – पर्यावरण का अर्थ हुआ व्यक्ति के आस–पास और चारों ओर जो कुछ भी है वही उसका पर्यावरण कहा जाता है।
- **कृषि** – कृषि शब्द का अर्थ भूमि से जुड़े सभी मानवीय कार्य जैसे– श्वेत का निर्माण, जुताई, बुआई, फसल उगाना, सिंचाई करना आदि सम्मिलित हैं।

5.10 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 5.4.1 देखें।

2) सन्दर्भ 5.4.1 देखें।

3) सन्दर्भ 5.5.2 देखें।

5.11 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

5.12 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) प्राकृतिक संसाधन के प्रबन्धन व संरक्षण का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

2) भूमि संसाधन से आपका क्या अभिप्राय है?

3) भूमि उपयोग में होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।

4) मृदा अपरदन से होने वाली हानियों की व्याख्या करें।

5) मरूस्थलीकरण के क्या कारण है?

*****

अध्याय – 6
बांध, वन, जल–कारण व प्रभाव

संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 बांधों का पर्यावरण पर प्रभाव

6.3 वन

6.3.1 वनों के प्रकार

6.4 जैव–विविधता और जनजातीय आबादी

6.5 जल

6.5.1 भूजल, उसके प्रयोग व दोहन के कारक

6.6 बाढ़

6.6.1 बाढ़ के कारण

6.6.2 बाढ़ के प्रभाव

6.6.3 बाढ़ रोकने के उपाय

6.7 स्वयं जांच प्रश्न

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 स्वयं जांच उत्तर

6.11 सन्दर्भ–ग्रन्थ

6.12 अभ्यासात्मक–प्रश्न

6.0 प्रस्तावना (Introduction)

बांध एक अवरोध है जो जल को बहने से रोकता है और एक जलाशय बनाने में मदद करता है, इससे बाढ़ आने से तो रूकती है, जमा किया गया जल सिंचाई, जलविद्युत, पेय जल की आपूर्ति, नौवहन आदि में भी सहायक होती है। तमिलनाडु में पवित्र कावेरी नदी पर स्थित कल्लनई का ग्रैंड एनीकट दुनिया का सबसे पुराना बांध है।

6.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- बांधों का पर्यावरण पर प्रभाव के बारे में
- वनों के बारे में पता चलेगा
- बाढ़ के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे

6.2 बांधों का पर्यावरण पर प्रभाव (Dam Buildng on Environment)

बांध बनाकर नदी के जल को अवरूद्ध कर दिया जाता है जिससे यह मछलियों के लिए एक अवरोधक के रूप में कार्य करते हैं। मछलियों में नदी के किनारों तथा जल के बहाव के साथ विचरण करने की प्रवृति होती है, ऐसे में बांध के अवरोधक के रूप में कार्य करने से उनके प्रजनन एवं विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिसका असर उस जल निकाय के समस्त जल चक्र में परिलक्षित होता है। अवरूद्ध नदियां बांध के बहाव के प्रतिकूल एक जलाशय बनाती है, तथा जल आसपास के क्षेत्र में बह जाता है। परिणामस्वरूप बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वहां मौजूद परिस्थिति तंत्र तथा आवाज नष्ट हो जाते हैं। इस तरह की बाढ़ पौधों, वन्यजीवों और मनुष्य सहित कई अन्य जीवों को या तो नष्ट कर देती है या विस्थापित कर सकती है। बांधों के आसपास के निवास स्थान में बाढ़ आने से पेड़–पौधे और अन्य जीवन नष्ट हो जाते हैं जो अपघटित होकर वायुमंडल में बड़ी मात्रा में कार्बन का उत्सर्जन करते हैं। क्योंकि नदी का बहाव अवरूद्ध रहता है इसलिये पानी स्थिर हो जाता है और जलाशय के निचले हिस्से में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। ऑक्सीजन की कमी एक ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जो जलाशय के तल पर संयंत्र सामाग्रियों के अपघटन से मीथेन उत्पन्न करती है। अंततः वैश्विक जलवायु परिवर्तन में योगदान करते हुए वायुमंडल में उत्सर्जित होती रहती है। जैसे कि एक अवरूद्ध नदी का बहाव स्वतंत्र रूप से नहीं होता है, इसलिए जो अन्य प्रकार के प्राकृतिक तलहट या अवसाद जमा होकर बांध के पीछे इकट्ठा होते जाते हैं, जिससे नदी के नए किनारे, नदी के डेल्टा, जलोढ़ पंख, नदियों के विभिन्न स्वरूप, कई प्रकार की झीलें और तटीय किनारों का निर्माण होता है। आमतौर पर बांधों को स्थानीय मछलियों की प्रजातियों हेतु पर्यावरण के अनुकूल नहीं बनाया जाता। अतः बांध बनने से ये जीवित नहीं रह पाती है। परिणामरूप मछलियों की स्थानीय आबादी लुप्त हो रही है। स्थानीय मछलियों की प्रजातियों के अस्तित्व को कई कारण प्रभावित करते हैं, जिनमें प्रवासन मार्गों का अवरोध, बाढ़, नदी के प्रवाह में परिवर्तन, तापमान में परिवर्तन, मैलापन, घुलित ऑक्सीजन और स्थानीय पादक जीवन में परिवर्तन शामिल है। इसके अलावा बांध के जलाशय में सतह और गहराई के बीच पानी का तापमान बहुत भिन्न हो सकता है। प्राकृतिक रूप से नदी में जीवों के जीवन चक्र के लिए एक जटिल प्रक्रिया विकसित होती है। जब बांध संचालक द्वारा नदी में विषम तापमान एवं ऑक्सीजन रहित से पानी छोड़ा जाता है, तो इससे नदी के वातावरण को भी नुकसान पहुंचता है। बांध और जलाशय, त्वरित सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए नदी जलों का सदुपयोग करना तथा सूखा एवं बाढ़ से प्रभावित विश्व की वृहत जनसंख्या के कारणों को कम करने के लिए दोहरी भूमिका निभा रहे हैं। बांध और जलाशय निम्नलिखित मानवीय मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में उल्लेखनीय योगदान देते हैं।

- पेयजल और औद्योगिक उपयोग हेतु जल
- सिंचाई
- बाढ़ नियंत्रण
- जल–विद्युत उत्पादन

6.3 वन

भू–क्षेत्र जहां वृक्षों का घनत्व सामान्य से अधिक है उसे वन कहते हैं। वनों ने पृथ्वी के लगभग 9.5 प्रतिशत भाग को घेर रखा है। वन, जीव जन्तुओं के लिए आवास स्थल है और पृथ्वी के जल–चक्र को नियंत्रित और प्रभावित करते हैं और मृदा संरक्षण का आधार है इसी कारण वन पृथ्वी के जैवमण्डल का अहम हिस्सा है। वन धरती के सबसे प्रमुख स्थलीय परितंत्र भी हैं। वन धरती के जीव मण्डल के कुल सकल प्राथमिक उत्पाद के 75 प्रतिशत भाग लिए हैं। धरती की 80 प्रतिशत वनस्पतियां वनों में पाई जाती हैं। अलग–अलग ऊंचाइयों पर स्थित वन विभिन्न परितंत्रों का निर्माण करते हैं– जैसे ध्रुवों के निकट बोरील वन, भूमध्य रेखा के निकट उष्ण

कटिबंधीय वन और मध्यम ऊंचाइयों पर शीतोष्ण वन। किसी क्षेत्र की ऊंचाई और वहां मौजूद नमी उस क्षेत्र में पाए जाने वाले वृक्षों पर प्रभाव डालती है। मानव व वन एक–दूसरे पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभाव डालते हैं। वन जहां मनुष्य को अनेक प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराते हैं वहीं वे आमदनी का एक स्त्रोत भी है। वन प्रजाति का वैज्ञानिक अध्ययन और पर्यावरण के साथ अंग सम्बन्ध वन परिस्थितिकी का जाता है। वनों का महत्त्व दुनियां का कोई भी देश हो उनके विकास में वनों का बहुत बड़ा योगदान होता है। वन सम्पदा के कारण उनके आर्थिक विकास में गति मिलती है। भारत जैसे देश में पेड़ों की पूजा की जाती है। प्राचीन समय में इस देश के ऋषि–मुनियों द्वारा पेड़ों की छांव में ही अपने आश्रमों की स्थापना की जाती है। विश्व में वन सम्पदा का बड़ा महत्त्व है। ये हमें कई चीजें भेंट करते हैं। जिनमें ईंधन के लिए लकड़ी, औषधि तथा ईमारती लकड़ी मुख्य वन उत्पाद है। कई उद्योग वन उत्पाद पर ही निर्भर है उन्हें कच्चे माल की प्राप्ति वनों द्वारा ही प्राप्त होती है। इसलिए कहा जाता है व नही जीवन है। भारतीय उपमहाद्वीप में अनेक प्रकार के वन पाये जाते हैं। मुख्यतः छः प्रकार के वन समूह है जैसे आर्द्र उष्णकटिवधीय वन, शुष्क उष्णकटिबंधीय वन, पर्वतीय उष्णकटिवयीय उप अल्पाइन, उपशीतोष्ण तथा शीतोष्ण जिन्हें 16 मुख वन प्रकारों में उपविभक्ति किया गया है। भारत में विविध प्रकार के वन पाये जाते हैं, दक्षिण में केरल के वर्षावनों से उत्तर में उघारव के अल्पाइन वन, पश्चिम में राजस्थान के मरूस्थल से लेकर पूर्वोत्तर के सदाबहार वनों तथा जलवायु, मृदा का प्रकार, स्थलरूप तथा ऊँचाई वनों के प्रकारों को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक है। वनों का विभाजन, उनकी प्रकृति बनावट, जलवायु जिसमें वे पनपते हैं तथा उनके आस–पास के पर्यावरण के आधार पर किया जाता है।

6.3.1 वनों के प्रकार

1) शंकुधारी वन – उन हिमालय पर्वतीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां तापमान कम होता है। इन वनों में सीधे लंबे वृक्ष पाए जाते हैं जिनकी पत्तियाँ नुकीली होती है तथा शाखाएं नीचे की ओर झुकी होती है जिससे बर्फ इनकी टहनियों पर जमा नहीं हो पाती, चौड़ी पत्तियों वाले वनों के कई प्रकार होते हैं– जैसे सदाबहार वन, पर्णपाती वन, कांटेदार वन, मैंग्रोव वन। इन वनों से पत्तियाँ बड़ी–बड़ी तथा अलग–अलग प्रकार की होती हैं।

2) सदाबहार वन – पश्चिमी धार पूर्वोत्तर भारत तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह में स्थित उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यह वन उन क्षेत्रों में पनपते हैं जहां मानसून कई महीनों तक रहता है। यह वन जंतु तथा कीट जीवन में प्रचुर है।

3) आर्द्र सदाबहार वन – दक्षिण में पश्चिमी घाट के साथ तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह तथा पूर्वोत्तर में सभी जगह पाये जाते हैं। यह वन लंबे, सीधे सदाबहार वृक्षों से जिनका तना तथा जड़ें क्षिपदीय आकार की होती है से बनते हैं जिससे ये तूफान में भी सीधे खड़े रहते हैं।

4) अर्द्ध सदाबहार वृक्ष – इस प्रकार के वन पश्चिमी घाट, अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह तथा पूर्वी हिमालयों में पाये जाते हैं। यह वन घने होते हैं और इनमें अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं

5) पर्णपाती वन – यह उन्हीं क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां मध्यम स्तर की मौसमी वर्षा जो केवल कुछ ही महीनों तक होती है। मार्च तथा अप्रैल के महीनों में इन वृक्षों पर नयी पत्तियाँ उगने गलती हैं।

6) कांटेदार वन – यह वन भारत में कम नमी वाले स्थानों पर पाये जाते हैं। यह वृक्ष दूर–दूर तथा हरी घास से घिरे रहते हैं। इनमें कुछ वृक्षों की पत्तियाँ छोटी होती है तथा कुछ वृक्षों की पत्तियाँ मोटी तथा मोम युक्त होती है ताकि जल का वाष्पीकरण कम किया जा सके।

7) मैंगोव वन – नदियों के डेल्टा तथा तरो के किनारे उगते हैं। यह वृक्ष लवणयुक्त तथा शुद्ध जल सभी में वृद्धि करते हैं। यह वन नदियों द्वारा बहाकर लायी गई मिट्टियों में अधिक वृद्धि करते हैं।

6.4 जैव–विविधता और जनजातीय आबादी (Biodiversity and Tribal Population)

जैव–विविधता अधिनियम 2002 में जैव संसाधनों में प्रयोग और इससे जुड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी से होने वाले लाभ को आदिवासी समुदायों के साथ समान रूप से साझा करने की बात कही गई है। ऐसे में सभी दित धारकों को यह समझना होगा कि आदिवासी लोगों का पारंपरिक ज्ञान जैव–विविधता संरक्षण को अधिक प्रभावी बनाने का एक उपयुक्त विकल्प है। भारत अपनी विशाल आबादी और विकास की चुनौतियों के बावजूद वन्यजीव की एक वृहत विविधता का संरक्षण करने में सफल रहा है। हालांकि सरकार द्वारा चलाए जा रहे संरक्षण के प्रयासों ने आदिवासी लोगों के मन में उस भूमि को खोने का भय उत्पन्न कर दिया है जिस पर वे दशकों से रहते आए थे।

आदिवासी समुदायों द्वारा देवी–देवताओं के निवास स्थान के रूप में देखे जाने से जुड़ा धार्मिक विश्वास वनस्पतियों के प्राकृतिक संरक्षण को बढ़ावा देता है। इसके अलावा कई फसलों, जंगली फलों, बीज, कंद–मूल आदि विभिन्न प्रकार के पौधों का जनजातीय और आदिवासी लोगों द्वारा संरक्षण किया जाता है क्योंकि वे अपनी खाद्य जरूरतों के लिए इन स्त्रोतों पर निर्भर हैं। आदिवासी लोग और जैव–विविधता एक–दूसरे के पूरक हैं। समय के साथ ग्रामीण समुदाय ने औषधीय पौधों की खेती और उनके प्रचार के लिये आदिवासी लोगों के स्वदेशी ज्ञान का उपयोग किया है। इन संरक्षित पौधों में कई साँप और बिच्छू के काटने या टूटी हड्डियों और आथौपेडिक उपचार के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले पौधे भी शामिल है। जैव–विविधता की रक्षा हेतु आदिवासी लोगों के उनके प्राकृतिक आवास से अलग करने से जुड़ा दृष्टिकोण ही उनके और संरक्षणवादियों के बीच संघर्ष का मूल कारण है। आमतौर पर आदिवासी लोगों को सबसे अच्छा संरक्षणवादी माना जाता है क्योंकि वे आध्यात्मिक रूप से अधिक जुड़ाव रखते हैं। उच्च जैव–विविधता के क्षेत्रों के संरक्षण का सबसे सस्ता और तेज तरीका आदिवासी लोगों के अधिकारों का सम्मान करना है। आदिवासी लोग संरक्षण प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं क्योंकि वे प्रकृति से अधिक एकीकृत और आध्यात्मिक रूप से जुड़ पाते हैं, आदिवासी लोगों के लिये सम्मान की भावना विकसित करने की आवश्यकता है क्योंकि वन क्षेत्रों में आदिवासियों की उपस्थिति जैव–विविधता के संरक्षण में सहायक होती है।

6.5 जल (Water)

जल या पानी एक आम रसायनिक पदार्थ है जिसका अणु दो हाइड्रोजन परमाणु और एक ऑक्सीजन परमाणु से बना है–H_2O यह हमारे प्राणियों के जीवन का आधार है। आमतौर पर जल शब्द का प्रयोग द्रव अवस्था के लिए उपयोग में लाया जाता है, यह ठोस अवस्था (बर्फ) और गैसीय अवस्था (भाप या जल वाष्प) में भी पाया जाता है। पानी जल–आत्मीय सतहों पर तरल–क्रस्टल के रूप में भी पाया जाता है। जल लगातार एक चक्र में घूमता रहता है जिसे जलचक्र कहते हैं, इसमें वाष्पीकरण या ट्रांस्पिरेशन, वर्षा और बहकर सागर में पहुँचता है। जल विश्व अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह रसायनिक पदार्थों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए विलायक के रूप में कार्य करता है और औद्योगिक प्रशीतन और परिवहन को सुगम बनाता है। जल पृथ्वी पर कई अलग–अलग रूपों में मिलता है– आसमान में जल वाष्प और बादल, समुद्र में समुद्री जल और कभी–कभी हिमशैल, पहाड़ों में हिमनद और नदियां और तरल रूप में भी भूमि पर एक्वीफर के रूप में। जल में कई पदार्थों को घोला जा सकता है जो इसे एक अलग स्वाद और गंध प्रदान करते हैं। जल का उपयोग जब मानव करता है तो यह उसके लिये संसाधन हो जाता है। दैनिक कार्यों से लेकर कृषि में और विविध उद्‌भोगों में जल का उपयोग होता है।

6.5.1 भू–जल, उसके प्रयोग व दोहन के कारक (Use and over exmoitation of surface and ground water)

देश में सतही पानी की कमी के चलते निरंतर भूमिगत जल का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। भूमिगत जल के अतिदोहन से भूमिगत जल के स्तर में काफी गिरावट दर्ज की गई है जो भविष्य के लिए हानिकारक है। भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन से सदावाहिनी नदियां भी सूख रही है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भूमिगत जलस्तर में गिरावट दर्ज की गई है। जिसके कारण भूमिगत जल से सिंचाई के लिये अधिक व्यय होता है। यह मुख्य रूप से ऊर्जा की फिजूलखर्ची का सूचक है। इसके अतिरिक्त भूमिगत जल के अधिक दोहन से समृद्ध लोगों को लाभ होता है जबकि कमज़ोर लोगों को पानी से वंचित होना पड़ता है। भूमिगत जलस्तर से न केवल जल की उपलब्धता में कमी आती है बल्कि इसकी कमी से भू–गर्भीय निर्वाण भी हो सकता है, जो भू–सतह के फटने या धसने के लिये जिम्मेदार है। इसके फलस्वरूप जान–माल का भी काफी मात्रा में नुकसान हो सकता है। टयूबेलों की बढ़ती संख्या दर्शाती है कि इस जिले के भूमिगत जल संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव है। भूमिगत जल या उपयोग एवं विकास जल की उपलब्धता तथा मांग पर निर्भर करता है। पिछले 10–15 सालों में अधिकतर छिछले टयूबवेल फेल हो गए हैं तथा उनके स्थान पर सबसर्मील ट्यूबवेल लगाए गए हैं व भूमिगत जल दोहन की लागत अधिक हुई है। जिससे जल में सिंचाई की कुल लागत बढ़ी है। कृषि क्षेत्र में बदलाव जैसे कि कम जल वाली फसलें उगाना, फसल विविधीकरण द्वारा भूमिगत जल का उपयोग कम किया जा सकता है। भू–जल का उपयोग घरों में पशुपालन एवं सिंचाई के लिये काफी लंबे समय से होता आ रहा है। सतही पानी वायुमंडल से प्रभावी होकर जब दूषित हो जाता है। जबकि भूतल पृथ्वी के अंदर होने के कारण दूषित नहीं हो पाता। जब वर्षा होती है तो पृथ्वी पर गिरने वाली जलधारा के रूप में प्रवाहित होकर झरनों, तालाब अथवा झीलों में चला जाता है। यह जल सतही जल कहलाता है। वर्षा के जल का कुछ भाग संचारित होकर गुरुत्वाकर्षण के कारण भूमि के नीचे चला जाता है। अतः भूजल बनने की यह प्रक्रिया भृत कहलाती है और संचितजल भूजल कहलाता है। भूजल निरंतर क्रियाशील रहता है और सतही जल की तुलना में यह बहुत धीरे–धीरे बहता है। इस जल के स्तरण की वास्तविक दर संचरण और जलभृत की संग्रहण क्षमता पर निर्भर करती है। कभी–कभी झरनों व नदियों में भूमिगत जल का स्तर बढ़ने से इनमें उफान (बाढ़) आ जाता है। भारत में एक बहुत बड़ी संख्या भूमत्व पर निर्भर करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सतही जल ऐसा जल होता है जो भूमि की सतह पर झरनों, नदियों, तालाबों अथवा झीलों के ऊपर उपस्थित होता है और भूजल ऐसा जल होता है जो सामान्यतः भूमिगत रूप में पाया जाता है तथा इसे कुओ, टयूबवेल अथवा हैंडपम्पों द्वारा खुदाई करके प्राप्त किया जाता है।

मानव क्रियाओं द्वारा अत्यधिक उपयोग के कारण इसका संकट पैदा हो गया है। पिछले दो दशकों में भारत के बहुत से भागों में अत्यधिक उपयोग से पानी निकालने से जल स्तर बड़ी तेजी के साथ गिरा है। खाद्य और नकदी फसलों की सिंचाई हेतु बनाए गए बहुत से कुओं में जल का स्तर बड़ी तेजी से गिर रहा है। भारत की शीघ्रता से बढ़ती जनसंख्या व उसकी जीवनशैली में आए ये बदलाव के कारण घरेलु जल की आवश्यकता भी बढ़ रही है। उद्योगों में पानी की बढ़ती आवश्यकता भी कुल मात्रा में वृद्धि को दिखाती है। प्रचण्ड प्रतिस्पर्धा के चलते प्रयोगकर्ता कृषि, उद्योगों और घरेलू सैक्टरों में पानी के बढ़ते उपयोग से भूजल तालिग का स्तर कम हुआ है। भूजल की गुणवत्ता भी बुरी तरह से प्रभावित हुई है। सतही संग्रहण की तरह, भूजल का संग्रहण भी अत्यंत धीमी गति से होता है। भूजल के दो घटक है, एक स्थिर भाग एवं दूसरा गतिशील भाग जो वार्षिक पुनर्भरण के योग के कारण को बताता है। वार्षिक उपयोग की जरूरतों को पूरा करना जरूरी है। भूमिगत जल ने भारत की सतत्पोषणीय हरित क्रान्ति में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उच्च उत्पादकता वाली किस्में जिनके कारण कृषि उत्पादकता बढ़ जाती है में समय पर पानी की सिंचाई करनी पड़ती है। यह इस बात को भी बढ़ावा देता है कि किसान तकनीक एवं संस्थात्मक आविष्कारों से भूमिगत संरचना के भूजल से उसे दूसरे किसानों के खेतों तक भी ले जाएं जिसके कारण भूजल का बाजार काफी फल–फूल रहा है।

6.6 बाढ़ (Flood)

भारत विश्व का दूसरा बाढ़ प्रभावित देश है। बाढ़ एक ऐसी स्थिति है जिसमें कोई निश्चित भू क्षेत्र अस्थायी रूप से जलमग्न हो जाता है और जन जीवन प्रभावित हो जाता है। बांध टूटना, जलतरंगों की गति बढ़ाना, मानसून की अधिकता आदि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाढ़ एक आपदा का नाम है, जिसमें जल का अस्थायी अतिप्रवाह होने से अत्यधिक जलजमाव सूखी भूमि हो जाता है उसे बाढ़ या सैलाब कहते हैं और अंग्रेजी भाषा में Flood कहते हैं। कभी कबार मानवीय भूल के कारण कोई बांध या तरबंध टूटने से भी बाढ़ जैसे हालात उत्पन्न हो जाते हैं उसे अप्राकृतिक बाढ़ कहते हैं। भारतीय परिदृश्य में अत्याधिक लगातार मानसून के बारिश के कारण बांध या तरबंध टूटने से बाढ़ का पानी आबादी वाले क्षेत्रों में प्रवेश करता है जिसे प्राकृतिक बाढ़ भी कह सकते हैं। अगर बाढ़ का पानी स्थिर है तो वह इतना खतरनाक नहीं होता है। बाढ़ के प्रभाव से एक विस्तृत भू–भाग जलमग्न हो जाता है एवं इससे विस्तृत पैमाने पर जन–धन की हानि होती है। सामान्यता बाढ़ नदी में सीमा से अधिक जल आ जाने के कारण आती है। इस सन्दर्भ में कहा गया है, ''बाढ़ नदी की एक ऐसी उच्च अवस्था है, जिसमें नदी सामान्यता अपने विशिष्ट पहुंच वाले प्राकृतिक बांधों को लेकर बहने लगती है। नदियों की वाहिगओं में अमवा सागरीय जल के ऊँचे हो जाने से वे सभी भू–भाग जो सामान्यतया जलमग्न नहीं रहते हैं, जलमग्न हो जाते हैं तो ऐसी स्थिति को बाढ़ कहा जाता है।

बाढ़ों के विभीषिक रूप से कृषि क्षेत्र ही नष्ट नहीं होते, वरन् बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में भवनों दूरसंचार, यातायात सेवाओं के अतिरिक्त पशुओं तथा स्वयं मानव को भारी जान–माल की हानि उठानी पड़ती है। विश्व में अधिकांश बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र उन जलोढ़ मैदानी भागों में मिलते हैं, जिसमें बड़ी–बड़ी नदियां अपनी सहायक नदियों के साथ प्रवाहित होती है।

6.6.1 बाढ़ के कारण

बाढ़ के कारण इस प्रकार है–

1. अत्यधिक वर्षा – किसी स्थान में लगातार कई दिनों तक भीषण वर्षा होने से नदियों का जल स्तर बढ़ने लगता है जिसके परिणामस्वरूप नदियों के समीपवर्ती भू–भाग जल मग्न हो जाते हैं। अत्यधिक वर्षा के दो कारण हैं– बादलों का फटना, चक्रवात।

2. वनों का ह्रास – वनों की कटाई से भू–क्षरण की दर बढ़ रही है जिसके कारण नदियों, जलाशयों से जलसंग्रहण क्षमता में कमी होती है। वनों की कटाई के कारण भूमि द्वारा जल अवशोषण की दर में कमी होने से जलाशय तथा नदियों में जल–स्तर बढ़ जाता है जिसके कारण प्रतिवर्ष विश्व की लाखों हेक्टेयर भूमि बाढ़ग्रस्त हो जाती है।

3. नदी तल में अवसादों का जमाव – पर्वतों से निकलने वाली नदियां मैदानी भागों में प्रवेश करते समय भारी मात्रा में अवसादों को साथ बहाकर लाती है। ये अवसाद मिट्टी तथा बालू के रूप में नदी के तली पर विक्षेपित हो जाते हैं जिसके कारण नदी की तली निरन्तर उल्टी होती जाती है तथा नदी में जल संग्रहण की क्षमता कम हो जाती है। इस कारण वर्षाकाल में बाढ़ों की तीव्रता में वृद्धि हो जाती है।

4. जलग्रहण क्षेत्र का विस्तृत होना – किसी क्षेत्र अथवा प्रदेश के जल संग्रहण का क्षेत्र अधिक विस्तृत होने पर मध्यम वर्षा के समय जल की भारी मात्रा का संग्रहण होता है तथा साथ ही जल की अधिकता से बाढ़ की संभावनाएं बढ़ जाती है।

5. जल प्रबंधन की अपर्याप्त व्यवस्था – अप्रवाह प्रबंधन की सुचारू व्यवस्था न होने के कारण बाढ़ की संभावना बढ़ जाती है। अप्रवाह प्रबंधन के अव्यस्थित होने के कई कारण हो सकते हैं जिसमें भूस्खलन के कारण उत्पन्न अवरोध, नदी बहिकाओं का स्पष्ट विकसित न होना, नदियों में विर्सपों का अधिक मात्रा में होना, नदी की वहन क्षमता में कमी, डेल्टा के मुहानों का बालू रोधिका के निर्माण में अवरूद्ध हो जाना प्रमुख है।

6. जलाशय में अवसादी जमाव की अधिकता – बाढ़ों का नियंत्रित करने के लिये नदियों पर बड़े जलाशयों का निर्माण किया जा रहा है। भू–क्षरण से बहकर आने वाली लाखों टन मिट्टी प्रतिवर्ष जलधाराओं में मिलकर जलाशयों में एकत्रित हो रही है। वनों के काटे जाने से भू–क्षरण की मात्रा बढ़ रही है तथा जलाशयों में अवसादों के जमा होने की दर भी बढ़ रही है जिससे बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होती है।

6.6.2 बाढ़ के प्रभाव

भारत में सबसे अधिक बाढ़े उत्तर प्रदेश व असम में आती हैं। बाढ़ से होने वाले दुष्प्रभाव निम्न है–

1. फसलों का नुकसान – बाढ़ से प्रमुख रूप से फसलें नष्ट हो जाती है। 74 लाख हेक्टेयर भूमि प्रतिवर्ष बाढ़ से प्रभावित होती है। 2 अरब से भी अधिक रूपये का नुकसान होता है।

2. जनजीवन की हानि – प्रतिवर्ष बाढ़ के प्रभाव से हजारों लोगों की मृत्यु हो जाती है व कइयों के पशु मर जाते हैं व मकान गिर जाते हैं।

3. यातायात में व्यवधान – बाढ़ से सड़कें दूर जाती है व यातायात बाधित हो जाता है।

4. बीमारियों में वृद्धि – बाढ़ में मृत मनुष्यों, जीवों व जानवरों में अत्यधिक मात्रा में, रोगाणु फैलते हैं जो विभिन्न प्रकार की बीमारियां तथा महामारी फैलाते हैं

5. जैव प्रजातियों की हानि – कई संवेदनशील जैव प्रजातियाँ बाढ़ के कारण नष्ट हो जाती है।

6. आर्थिक दबाव – बाढ़ से हुई क्षति की पूर्ति के लिए सरकारी खजाने पर दबाव बढ़ जाता है। अतः ऐसी स्थिति में गैर बाढ़ पीड़ित लोगों पर अस्थायी खेती लगाते हैं जिससे लोगों पर आर्थिक दबाव पड़ता है।

6.6.3 बाढ़ रोकने के उपाय

1. जलग्रहण क्षेत्र में वृक्षारोपण कर मृदा अपरदन की दर कम करके विभिन्न भागों में बोरिंग कर कुओं का निर्माण किया जाये। इससे एक ओर भूमिगत जल के स्तर में वृद्धि होगी तथा दूसरी ओर धरातलीय जल प्रवाह की मात्रा में भी कमी होगी, जिससे बाढ़ के प्रकोप को कम किया जा सकेगा।
2. मुख्य नदी की सहायक नदियों पर छोटे–छोटे जलसंग्रह बांध अनेक स्थानों पर निर्मित किया जाए, जिससे मुख्य नदी में जल के आयतन में अधिक वृद्धि नहीं होगी तथा बाढ़ के प्रकोपों से होने वाली हानियों को कम करने में सफलता प्राप्त होगी।
3. नदियों पर निर्मित बांध तथा जलाशयों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ सामयिक सफाई होती रहनी चाहिए।
4. नदियों तथा जलधाराओं के प्राकृतिक प्रवाह मार्ग में आने वाले अवरोधों को दूर करना चाहिए।
5. नदियों तथा उनकी सहायक नदियों की तली की सामयिक सफाई होती रहनी चाहिए।
6. मुख्य नदी ने अतिरिक्त जल को अन्य चैनल निर्मित कर वितरित कर देना चाहिए ताकि बाढ़ का प्रकोप कम हो सके।

6.7 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) बांधों का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

2) वनों के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

3) बाढ़ को रोकने के क्या–क्या उपाय है?

6.8 सारांश (Summary)

बांध बनाकर नदी के जल को अवरूद्ध कर दिया जाता है। बांध के आसपास के निवास स्थान में बाढ़ आने से पेड़–पौधे और अन्य जीवन नष्ट हो जाते हैं। वन, जीव–जन्तुओं के लिए आवास स्थल है। ये धरती के सबसे प्रमुख स्थलीय परिवेश भी हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में अनेक प्रकार के वन पाए जाते हैं। इसका विभाजन उनकी प्रकृति बनावट, जलवायु जिसमें वे पनपते हैं तथा उनके आस–पास के आधार पर किया जाता है।

6.9 शब्दावली (Glossary)

- जलवायु – किसी स्थान के वातावरण की दशा को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता है।
- **तापमान**– किसी वस्तु की उष्णता की माप है। तापमान से यह पता चलता है कि कोई वस्तु ठंडी है या गर्म।
- **अर्थ व्यवस्था**– यह उत्पादन, वितरण एवं खपत की एक सामाजिक व्यवस्था है।

6.10 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 6.2 देखें।

2) सन्दर्भ 6.3.1 देखें।

3) सन्दर्भ 6.6.3 देखें।

6.11 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

6.12 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) वन किसे कहते हैं तथा इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए?

2) जैव–विविधता तथा जनजातीय आबादी का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

3) जल से आप क्या समझते हैं?

4) बाढ़ की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

*****

अध्याय – 7
सूखा, जल संघर्ष तथा ऊर्जा संसाधन के स्रोत

संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 सूखा

7.2.1 सूखे के कारण

7.2.2 सूखे के प्रकार

7.2.3 सूखा का प्रभाव

7.2.4 सूखा के लिए सम्भव समाधान

7.3 पानी को लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष

7.4 जल संघर्ष के कारण

7.4.1 आर्थिक व व्यापारिक मुद्दे

7.5 ऊर्जा संसाधन

7.5.1 नवीकरणीय और अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोत

7.6 स्वयं जांच प्रश्न

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 स्वयं जांच उत्तर

7.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ

7.11 अभ्यासात्मक–प्रश्न

7.0 प्रस्तावना (Introduction)

सूखा पानी की आपूर्ति में लम्बे समय तक की कमी की एक घटना, चाहे वायुमंडील पानी हो, सतह का पानी हो या भूजल। सूख महीनों या वर्षों तक रह सकता है और इसे 15 दिनों के बाद घोषित किया जा सकता है। यह प्रभावित क्षेत्र के पारिस्थितिकी तंत्र और कृषि पर काफी प्रभाव डाल सकता है और स्थानीय अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचाता है। उष्ण कटिबंध में वार्षिक शुष्क मौसमों में सूखे के विकास और बाद में होने वाली आग की सम्भावना में काफी वृद्धि होती है। गर्मी की अवधि जलवाष्प के वाष्पीकरण को तेज करके सूखे की स्थिति को काफी खराब कर सकती है।

7.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- सूखा के बारे में पता चलेगा
- पानी को लेकर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के बारे में चर्चा करेंगे
- ऊर्जा संसाधन के बारे में

7.2 सूखा (Drought)

सूखा दुनियां के अधिकांश हिस्सों में जलवायु की आवर्ती विशेषता है। सूखे के कारण आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभाव पढ़ते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सूखा उस स्थिति को कहते हैं जब वर्षा आवश्यकता से कम होती है। इस स्थिति में भूमिगत जल का स्तर भी कम हो जाता है और जीवन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारत में सूख दक्षिण–पश्चिम मानसून के कमज़ोर होने से पड़ता है। कम वर्षा या मानसून के अपने निश्चित समय से देरी से आने के कारण सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

7.2.1 सूखे के कारण

1. वनों की कटाई – वनों की कटाई से वर्षा की कमी के मुख्य कारणों में से एक कहा जाता है जिससे सूखा स्थिति उत्पन्न होती है। पानी के वाष्पीकरण, भूमि पर पर्याप्त पानी की जरूरत और बारिश को आकर्षित करने के लिए भूमि पर पेड़ों और वनस्पतियों की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता है। वनों की कटाई और उनके स्थान पर कंक्रीट की इमारतों के निर्माण ने पर्यावरण में एक प्रमुख असंतुलन का कारण बना दिया है। यह मिट्टी को पानी की पकड़ की क्षमता को कम करता है और वाष्पीकरण बढ़ाता है। ये दोनों कम वर्षा का कारण है।

2. कम सतह पर जल प्रवाह – नदियां और झीलें दुनिया भर के विभिन्न क्षेत्रों में सतह के पानी के मुख्य स्रोत हैं। अत्यधिक गर्मियों या विभिन्न मानव गतिविधियों के लिए सतह के पानी के उपयोग के कारण इन स्रोतों में पानी सूख जाता है जिससे सूखा उत्पन्न होता है।

3. ग्लोबल वार्मिंग – पर्यावरण पर ग्लोबल वार्मिंग का नकारात्मक प्रभाव के बारे में सभी को पता है। ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन है जिसमें पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के परिणामस्वरूप वाष्पीकरण में वृद्धि हुई है। उच्च तापमान भी जंगल की आग का कारण है जो सूखा की स्थिति को बढ़ावा देता है।

इसके अलावा अत्यधिक सिंचाई भी सूखे के कारणों में से एक है क्योंकि यह सतह के पानी को खत्म कर देती है।

7.2.2 सूखा के प्रकार

कुछ क्षेत्रों को लंबे समय तक बारिश के अभाव में चिन्हित किया जाता है। दूसरे क्षेत्रों को वर्ष में औसत मात्र से कम मिलता है और कुछ हिस्सों में सूखा का सामना कर सकते हैं। इसलिए जगह और समय–समय पर सूक्ष्मता और सूखा का प्रकार स्थान से भिन्न होता है। सूखे के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. मौसम सम्बन्धी सूखा – जब किसी क्षेत्र में एक विशेष अवधि के लिए बारिश में कमी आती है यह कुछ दिनों, महीनों, मौसम या वर्षा के लिए हो सकता है। यह मौसम सम्बन्धी सूखा से प्रभावित होता है। भारत में एक क्षेत्र को मौसम सम्बन्धी सूखा से प्रभावित तब माना जाता है जब वार्षिक वर्षा औसत बारिश से 75 प्रतिशत कम होती है।

2. हाइड्रोलॉजिकल सूखा – यह मूल रूप से पानी मे कमी के साथ जुड़ा हुआ है। हाइड्रोलॉजिकल सूखा अक्सर दो लगातार मौसम सम्बन्धी सूखा का परिणाम होता है। ये दो श्रेणियों में विभाजित है–

– सतह जल सूखा

– भूजल सूखा

3. मृदा की नमी का सूखा – इस स्थिति में अमलीय मिट्टी की नमी शामिल है जो कि फसलों की वृद्धि को बाधित करती है। यह मौसम सम्बन्धी सूखा का नतीजा है क्योंकि इससे मिट्टी में पानी की आपूर्ति कम हो जाती है और वाष्पीकरण के कारण अधिक पानी या नुकसान होता है।

4. कृषि सूखा – जब मौसम सम्बन्धी या हाइड्रोलॉजिकल सूखा एक क्षेत्र में फसल उपज पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तो इसे कृषि सूखा से प्रभावित माना जाता है।

5. अकाल – यह सबसे गम्भीर सूखा की स्थिति है। ऐसे क्षेत्र में लोग भोजन तक पहुंच नहीं पाते हैं और बड़े पैमाने पर भुखमरी और तबाही होती है। सरकार को ऐसी स्थिति में हस्तक्षेप करने की जरूरत है और अन्य स्थानों से इन जगहों पर भोजन की आपूर्ति की जाती है।

6. सामाजिक – आर्थिक सूखा – यह स्थिति तब होती है जब फसल की विफलता और सामाजिक सुरक्षा के कारण भोजन की उपलब्धता और आय में कमी आती है। सूखा एक कठिन स्थिति है खासकर अगर सूखा की गंभीरता ज्यादा है। हर साल सूखा की वजह से कई लोग प्रभावित होते हैं। जबकि सूखा की घटना एक प्राकृतिक घटना है।

7.2.3 सूखा का प्रभाव

सूखा से प्रभावित इलाकों में आपदा से उबरने के लिए पर्याप्त समय लगता है खासकर अगर सूखा की गंभीरता अधिक होती है। सूखा में लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी बिगड़ती है और विभिन्न क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसके प्रभाव निम्न प्रकार से है–

1. कृषि हानि – सूखा से कृषि और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों पर एक बड़ा प्रभाव डालता है क्योंकि ये सीधे जमीन और सतह के पानी पर निर्भर करते हैं। फसल की पैदावार में कमी, पशुधन उत्पादन की कमी दर, पौधे बीमारी और हवा के कारण में वृद्धि सूखा के कुछ प्रमुख प्रभाव है।

2. किसानों के लिए वित्तीय नुकसान – सूखा से किसान सबसे प्रभावित होते है। सूखा प्रभावित क्षेत्रों में फसलों का उत्पादन नहीं होता है और देश में किसानों की एकमात्र आय खेती के जरिए उत्पन्न होती है। इस स्थिति से किसान सबसे ज्यादा प्रभावित होता है। अपनी जरूरतों को पूरा करने के प्रयास में कई किसान ऋण ले लेते हैं जिसे बाद में उनके लिए चुका पाना मुश्किल है। ऐसी स्थिति के कारण किसानों के आत्महत्या के मामले भी आम है।

3. वन्यजीवों का जोखिम – सूखा की वजह से जंगलों में आम के मामलों में वृद्धि हुई है और यह उच्च जोखिम वाले वन्यजीव आबादी को प्रभावित करते हैं। वनों को जलाने के कारण कई जंगली जानवर अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं जबकि कई अन्य अपना आश्रम खो देते हैं।

4. कीमत बढ़ना – कम आपूर्ति और उच्च मांग के कारण विभिन्न अनाजों, फलों, सब्जियों की कीमते बढ़ रही है। खाद्य पदार्थों जैसे कि जैन, सॉस और पेय पदार्थों विशेष रूप से फलों और सब्जियों से बने पदार्थों की कीमते भी बढ़ जाती है। कुछ मामलों में लोगों की मांगों को पूरा करने के लिए माल अन्य स्थानों से आयात किया जाता है। इसलिए कीमतों पर लगाए गए कर के मूल्य उच्च है। खुदरा विक्रेता को किसानों की माल और सेवाओं की पेशकश करते हैं वे कम व्यापार के कारण वित्तीय नुकसान का सामना करते है।

5. मिट्टी का क्षरण – लगातार सूखा और इसकी गुणवत्ता में कमी के कारण मिट्टी में नमी कम हो जाती है। कुछ क्षेत्रों में फसलों को प्राप्त करने की योग्यता हासिल करने के लिए बहुत समय लगता है।

6. पर्यावरण पर समग्र प्रभाव – पर्यावरण में नुकसान पौधों और जानवरों की विभिन्न प्रजातियों के कारण होता है। वहां परिदृश्य गुणवत्ता और जैव विविधता का विघटन होता है। सूखा के कारण हवा और पानी की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। हालांकि इन स्थितियों में से कुछ अस्थायी अन्य लंबे समय तक चल सकते है या स्थायी भी हो सकते हैं।

सूखा सबसे विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं में से एक है। अकाल सूखा का सबसे गम्भीर रूप है जो प्रभावित क्षेत्रों को मुख्यतः सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय नुकसान पहुंचाता है।

7.2.4 सूखा के लिए सम्भव समाधान

– बारिश के पानी का संग्रहण

– सागर जल विलवणीकरण

– पानी को रीसायकल करना

– बादलों की सीडिंग

– अधिक से अधिक पेड़ लगाये

– पानी का सही उपयोग

– अभियान चलाने चाहिए

7.3 पानी को लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष

स्वतंत्रता के बाद जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, कृषि विकास, शहरीकरण, औद्योगीकरण आदि के कारण जल की मांग में लगातार वृद्धि होती गई। इस कारण इन नदियों के जल में हिस्सेदारी के सम्बन्ध में अनेक अंतर्राज्यीय जल विवाद उत्पन्न हुए। जल विवाद एक ऐसी दशा है जिसमें पानी के उपयोग को लेकर दो या दो से अधिक राष्ट्रो, प्रान्तों और सतहों के बीच प्रतिस्पर्धा और संघर्षों की स्थितियां बन जाती है। संविधान का अनुच्छेद 262 अंतराज्यीय जल विवादों के न्याय निगर्मन से सम्बन्धित है, इसमें दो प्रावधान है।

1. संसद कानून बना कर अंतर्राज्यीय नदियों तथा इसके जल प्रयोग, बंटवारे तथा नियंत्रण से संबंधित किसी विवाद पर शिकायत का न्याय व निर्णयकर सकती है।
2. संसद यह भी व्यवस्था कर सकती है भी ऐसे किसी विवाद में न ही सर्वोच्च न्यायालय तथा न ही कोई अन्य न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करे इस प्रावधान के अंतर्गत संसद ने दो कानून बनाए–

   – नदी बोर्ड अधिनियम 1956

   – अंतर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम 1956

जब इस प्रकार कहा जा सकता है जल संघर्ष एक ऐसा शब्द है जो जब संसाधनों तक पहुंचने के अधिकारों को लेकर देशों, राज्यों, समूहों के बीच संघर्ष का वर्णन करता है। संयुक्त राष्ट्र यह मानता है कि जल विवाद सार्वजनिक या निजी जल उपयोगकर्ताओं के हितों के विरोध का परिणाम है। पूरे इतिहास में जल संहर्षों की एक विस्तृत श्रृंखला दिखाई देती है। क्षेत्रीय विवादों, संसाधनों की लड़ाई और सामरिक लाभ सहित कई कारणों से जल संघर्ष उत्पन्न होते है।

ये संघर्ष मीठे पानी और खारे पानी दोनों पर और राष्ट्रों के बीच और भीतर दोनों जगह होते है। क्योंकि मीठे पानी के संसाधन आवश्यक है, फिर भी दुर्लभ है, वे पेयजल, सिंचाई और ऊर्जा उत्पादन की आवश्यकता से उत्पन्न होने वाले जल विवादों का केन्द्र है। जैसा कि मीठे पानी एक महत्त्वपूर्ण, फिर भी आसमान रूप से वितरित प्राकृतिक संसाधन है, इसकी उपलब्धता अकसर किसी देश या क्षेत्र के रहने और आर्थिक स्थितियों को प्रभावित करती है। मध्य पूर्व जैसे क्षेत्रों में लागत प्रभावी जल आपूर्ति विकल्पों की कमी, जल संकट के अन्य तत्त्वों में से भी जल उपयोगकर्त्ताओं पर गंभीर दबाव डाल सकते हैं, चाहे वे कॉपोरेटिव सरकार या व्यक्ति हो, जिससे तनाव हो सकता है और सम्भवतः आक्रामकता हो सकती है।

7.4 जल संघर्ष के कारण

जल और पर्यावरण पर 1992 के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के अनुसार, पानी मानव जीवन के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है और मानवीय गतिविधियां पानी की उपलब्धता और गुणवत्ता से निकटता से जुड़ी हुई है। दुर्भाग्य से पानी का सीमित संसाधन है और भविष्य में पहुंच 'जलवायु परिवर्तन के साथ खराब हो सकती है। जल संघर्ष इसलिए होता है क्योंकि जल संसाधनों और पीने योग्य पानी की मांग आपूर्ति से अधिक हो सकता है या क्योंकि पानी की पहुंच और आवंटन पर नियंत्रण विवादित हो सकता है। जल संकट के तत्व प्रभावित पक्षों पर अधिक साझा जल संसाधन प्राप्त करने के लिए दबाव डाल सकते हैं, जिससे राजनीतिक तनाव और एक मुशत संघर्ष हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन और बढ़ती वैशविक आबादी भी सीमित जल संसाधनों पर नए दबाव डालने और जल संघर्ष के जोखिम को बढ़ानें के लिए गठबंधन करती है। वैश्विक आबादी का ग्यारह प्रतिशत या 783 मिलियन लोगों के पास अभी भी पीने के पानी के बेहतर सत्रोतों तक पहुंच नहीं है। जो जल विवादों के लिए उत्प्रेरक प्रदान करता है।

जल विवादों के व्यापक स्पेक्ट्रम से उन्हें संबंधित करना मुश्किल हो जाता है, लेकिन ऐसे विवादों के जोखिम को कम करने के लिए कई तरह की रणनीतियां उपलब्ध है। स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय कानून और समझौते, अन्तर्राष्ट्रीय नदियों और इसमें बंटवारे को बेहतर बनाने में मदद कर सकते है। सभी के लिए सुरक्षित पानी उपलब्ध कराने से नियंत्रण और पानी तक पहुंच के विवादों को कम किया जा सकता है।

7.4.1 आर्थिक व व्यापारिक मुद्दे

एक वाणिज्यिक संसाधन के रूप में पानी की व्यवहार्यता, जिसमें पछली पकड़ना, कृषि, विनिर्माण, मनोरंजन और पर्यटन शामिल है, अन्य संभावनाओं के साथ तब भी विवाद पैदा कर सकता है। एक संसाधन के रूप में, कुछ लोग पानी को तेल के समान मूल्यवान मानते हैं जिसकी लगभग हर उद्योग को आवश्यकता होती है। पानी की कमी एक उद्योग को पूरी तरह से पंगु बना सकती है जैसे कि यह एक आबादी को पंगु बना सकती है और विकसित देशों को प्रभावित कर सकता है जैसे वे कम विकसित पानी के बुनियादी ढांचे वाले देशों को प्रभावित करते है, लेकिन जल की कमी से सभी स्तरों पर वाणिज्य को नुकसान हो सकता है।

राष्ट्रों के बीच अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक विवादों को विश्व व्यापार संगठन को माध्यम से संबोधित किया जा सकता है जिसमें मत्स्य केन्द्र जैसे जल–विशिष्ट समूह है। जो वाणिज्यिक संघर्ष समाधान के लिए एक एकीकृत न्यायिक प्रोटोकॉल प्रदान करते हैं। फिर भी घरेलू स्तर पर होने वाले जल संघर्ष के साथ–साथ संघर्ष पूरी तरह से वाणिज्यिक प्रकृति का नहीं हो सकता है, विश्व व्यापार संगठन द्वारा मध्यस्थता के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है।

1886 में ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका सीलिंग मतव्य पालन को लेकर भिड़ गए और आज रूस ने बेरिंग सी डोनट होल के नाम से जाना जाने वाला अंतर्राष्ट्रीय पानी की एक जेब को घेर लिया। जल विवादों में मध्यस्थता करने और जल प्रबंधन में सुधार करने में अंतर्राष्ट्रीय संगठन सबसे बड़ी भूमिका निभाते हैं। जल प्रदूषण को मापने के वैज्ञानिक प्रयासों से लेकर विश्व व्यापार संगठन के राष्ट्रों के बीच व्यापार विवदों को सुलझाने के प्रयासों तक, कई प्रकार के जल विवादों को मौजूदा ढांचे और संस्थानों के माध्यम से सम्बन्धित किया जा सकता है। फिर भी ऐसे जल संघर्षों की संख्या बढ़ रही है जो बड़े पैमाने पर उप–राष्ट्रीय स्तर पर अनसुलझे हैं और ये और अधिक खतरानाक हो जाएंगे क्योंकि पानी अधिक दुर्लभ हो जाता है।

7.5 ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)

ऊर्जा संसाधनों का विकास औद्योगिक विकास का सूचक है। हमारे देश में व्यापारिक स्तर पर प्रयोग किए जाने वाले तीन प्रमुख ऊर्जा संसाधनों हैं– कोयला, खनिज, तेज अथवा पैट्रोलियम तथा जलविद्युत। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक गैस, परमाणु ऊर्जा, पवन चक्की ज्वारीय ऊर्जा, सौर ऊर्जा, भूगर्भिक ऊर्जा आदि भी देश की ऊर्जा आपूर्ति में कुछ योगदान करते हैं। ऊर्जा संसाधन से प्राप्त ऊर्जा में मानव इच्छाओं व उसकी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की क्षमता होती है तथा जिनका उपयोग मानव कल्याण के उद्देश्य से किया जाता है। भारत में ऊर्जा के प्रमुख स्त्रोतों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है–

पारंपरिक स्त्रोत – कोयला, पैट्रोलियन और परमाणु ऊर्जा।

गैर पारम्परिक स्त्रोत – सौर ऊर्जा, जल ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा आदि।

पारम्परिक स्त्रोत जीवाराम ईंधन या ऊर्जा के पारम्परिक स्त्रोत प्रकृति में विस्तृत है और पर्यावरण के अनुकूल नहीं है, दूसरी ओर ऊर्जा के गैर पारम्परिक स्त्रोत जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भू–तापीय ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा आदि ऊर्जा के अक्षम स्त्रोत हैं और वे पर्यावरण के अनुकूल भी है। क्योंकि वे पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करते है।

7.5.1 नवीकरणीय और अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत (Revnewable and Non-Renovable Energy Resource)

ऊर्जा के कुछ स्त्रोतों की एक लघु समय अवधि के बाद पुनः पूर्ति की जा सकती है। इस प्रकार के ऊर्जा के स्त्रोतों को 'नवीकरणीय' ऊर्जा स्त्रोत कहते हैं। जबकि ऊर्जा के वे स्त्रोत लघु समय अवधि के अन्दर जिनकी पुनः पूर्ति नहीं की जा सकती है। 'अनवीकरणीय' ऊर्जा स्त्रोत कहलाते हैं। कच्चे तेल से प्राप्त होने वाले पेट्रोल और डीजल को कार, बस, ट्रक, ट्रैन, विमानों आदि को चलाने में काम में लाया जाता है। ये गैस सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है। इनकी पुनः पूर्ति नहीं की जा सकती है या इनका बार–बार उपयोग नहीं किया जा सकता है। अतः ये ऊर्जा के अनवीकरणयीय स्त्रोत कहलाते हैं। यह सच है कि वर्तमान में हमारे उपयोग के लिए ऊर्जा का अधिकांश हिस्सा अनवीकरणीय स्त्रोतों से ही प्राप्त कर रहे हैं जिनमें जीवाशम ईंधन, जैसे कि कोयला, कच्चा तेल और प्राकृतिक गैर शामिल है।

1. कोयला – कोयलों का निर्माण भी अन्य जीवाशम ईंधनों की तरह होता है परन्तु इसके निर्माण की प्रक्रिया 'कोयला भवन' (कोलिफिकेशन) के द्वारा होती है। उच्च ताप व दाब की स्थिति में अपघटित पादप पदार्थों द्वारा कोयला बनता है। कोयला का संघटन एकसार नहीं होता है, यह क्षेत्र के अनुसार बदलता है। कोयले भी कई प्रकार के होते हैं जैसे कि वीट, लिग्नाईट उप–बिटमेनी और बिटुमेनी। भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण गोंडवाना कोयला क्षेत्र दामोदर घाटी क्षेत्र में स्थित है।

2. प्राकृतिक गैस – हमारे देश में प्राकृतिक गैस ऊर्जा का एक अन्य स्त्रोत है। अंटार्कटिका द्वीप को छोड़कर पृथ्वी के बाकी कई स्थानों पर तेल व गैस क्षेत्र पाए जाते हैं। भूमि के अन्य स्त्रोतों की तरह प्राकृतिक गैस के भी भंडार होते है। मीथेन मुख्य रूप से दलदली इलाकों में पाई जाती है और यह जानवरों की पाचन प्रणाली का एक उप–उत्पाद भी है। हालांकि प्राकृतिक गैस एक जीवाशम ईंधन है, यह गैसोलीन से ज्यादा इच्छा ईंधन है। परन्तु यह जलने पर कार्बनडाईआक्साइड बनाती हैं जो मुख्य ग्रीनहाउस गैस है। पैट्रोल और डीजल की तुलना में ज्यादा मात्रा में उपलब्ध होने के बावजूद प्राकृतिक गैस भी सीमित संसाधनों की क्षेत्र में आता है।

3. नाभिकीय ऊर्जा – कुछ तत्त्व, जैसे कि रेडियम व यूरेनियम परमाणु ऊर्जा विघटन के प्राकृतिक स्त्रोतों की तरह काम करते हैं। वास्तव में इन तत्त्वों के परमाणुओं का स्वतः विघटन होता रहता है, जिससे कि

परमाणु के नाभिक का विखंडन होता है। ऊर्जा के अनेक वैकल्पिक और नवीकरणीय स्त्रोत उपलब्ध है। जो न केवल पर्यावरण अनुकूल है बल्कि प्रचुरता से उपलब्ध भी है। जल, पवन, सूर्य का प्रकाश, भूतापीय, समुद्री तरंगे, हाइड्रोजन व जैव भार आदि ऐसे ही कुछ संभावित ऊर्जा के स्त्रोत है।

4. सूर्य – सूर्य हमें लाखों–करोड़ों वर्षों से प्रकाश और ऊष्मा दे रहा है और यह माना जाता है कि आगे आने वाले अरबो सालों तक हमें सूर्य से प्रकाश और ऊष्मा मिलती रहेगी। सभी पौधे सूर्य और सभी जंतु पौधों से ही ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जंतुओं के लिए भी ऊर्जा का स्रोत सूर्य ही है। यहां तक कि मक्खन, अण्डों व दूध में भी जो ऊर्जा होती है। वह सूर्य से ही आती है। नाभिकीय ऊर्जा को छोड़कर ऊर्जा के अन्य सभी रूप सौर ऊर्जा का ही परिणाम है। भविष्य के लिए सूर्य एक सबसे सशक्त नवीकरणीय ऊर्जा का स्त्रोत है। सौर ऊर्जा का उपयोग खाना पकाने, ऊष्मा प्राप्त करने, विद्युत ऊर्जा के उत्पादन और समुद्री जल के अलवणीकरण में किया जाता है। सौर सैलो की मदद से सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदला जाता है। छोटे स्तर पर सौर ऊर्जा का उपयोग घरों के दैनिक उपयोग के लिए तथा स्वमिंग पूल के लिए भी पानी को गर्म करने में किया जाता है। बड़े स्तर पर सौर ऊर्जा से मोटरकार, विद्युत संयत्र और अंतरिक्ष यान आदि चलाए जाते हैं।

2. पवन ऊर्जा – ऊर्जा का एक अन्य वैकल्पि स्त्रोत पवन ऊर्जा है। सौर ऊर्जा की तरह पवन ऊर्जा का दोहन भी मौसम और पवनचक्की लगाए जाने के स्थान पर निर्भर करता है। परंतु यह सबसे प्राचीन और स्वच्छ ऊर्जा का स्त्रोत है। पवनचक्की में विशाल परिणाम में ऊर्जा उत्पादन करने की क्षमता होती है।

3. जल विद्युत ऊर्जा – पवन ऊर्जा की तरह सहता हुआ पानी और विशाल बांधों में भरा पानी भी ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। जिसे जल विद्युत ऊर्जा कहते है। परन्तु अतिविकास और जलशक्ति या अंधाधुंध दोहन स्थानीय पर्यावरण व आवासीय क्षेत्रों पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकता है।

4. भूतापीय ऊर्जा – भूतापीय ऊर्जा एक अन्य वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोत है जिसके की पृथ्वी की आंतरिक ऊष्मा से प्राप्त किया जाता है। वास्तव में यह ऊष्मा प्राप्त करने के प्राकृतिक स्त्रोतों के बहुत पुराने तरीकों में से एक है। वर्तमान में पृथ्वी की इस आंतरिक ऊष्मा का प्रयोग विद्युत के उत्पादन में मुख्यतः उन क्षेत्रों में, जहां विवर्तिक प्लेटों की गति देखने को मिलती है, किया जा रहा है ज्वालामुखी लक्षणों को भूतापीय ऊर्जा के बाहुल्य क्षेत्र कहा जाता है। ऊर्जा का बाहुल्य क्षेत्र वह क्षेत्र है जहां पर पृथ्वी के प्रावार की मोटाई कम होती है।

5. महासागर – ऊर्जा का एक स्त्रोत – महासागर भी एक सशक्त नवीकरणीय ऊर्जा का स्त्रोत है। महासागर की ऊर्जा को हम तीन तरीकों से इस्तेमाल कर सकते हैं– तरंगों की ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा तथा महासागरीय जल के ताप में अंतर का उपयोग करके।

6. जैवभार से ऊर्जा उत्पादन – जैवभार पौधों और जंतुओं से बनने वाला कार्बनिक पदार्थ है। इसमें कूड़ा–कर्कर कृषि अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, खाद, लकड़ी, जीवों के मृत भाग आदि शामिल है। ऊर्जा के अन्य स्त्रोतों की तरह जैवभार में भी सूर्य से प्राप्त ऊर्जा संचित होती है। अतः जैव भार की ऊर्जा के अच्छे स्त्रोतों में से एक है।

7. हाइड्रोजन – भविष्य के ऊर्जा का स्त्रोत – हाइड्रोजन को भविष्य के एक पर्यावरण अनुकूल ऊर्जा स्त्रोत के रूप में देखा जा रहा है। दीर्घकालीन अवधि में हाइड्रोजन में ऊर्जा के पारंपरिक स्त्रोतो, जैसे कि पैट्रोल, डीजल, कोयला आदि पर निर्भरता को कम करने की संभावना दिखाई देती है। इसके अलावा ऊर्जा स्त्रोत के रूप में हाइड्रोजन का उपयोग ग्रीन हाउस गैसों व अन्य प्रदूषण के उत्सर्जन को कम करने में मदद करेगा। जब हाइड्रोजन का दहन किया जाता है तो केवल जल वाष्प ही उत्पन्न होती है। अतः हाइड्रोजन को उपयोग में लेने का एक मुख्य लाभ यह है कि जब इसके जलाया जाता है। कार्बनडाईआक्साइड नहीं बनती है। अतः हम कह

सकते हैं कि हाइड्रोजन हवा को प्रदूषित नहीं करती है। ब्राह्मण्ड में हाइड्रोजन सर्वाधिक प्रचुरता से पाया जाने वाला तत्त्व है। यह सामान्य ताप व दाब पर यह गैस रूप में होता है। पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप में हाइड्रोजन गैस रूप में नहीं पाई जाती। प्राकृति हाइड्रोजन हमेशा अन्य तत्त्वों के साथ यौगिक जैसा कि पानी, कोयला और पैट्रोलियम के रूप में होती है।

7.6 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) सूखा के क्या प्रभाव है?

2) सूखा के लिए सम्भव समाधान क्या है?

3) जल संघर्ष के क्या कारण है?

4) नवीकरणीय और अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोत की व्याख्या कीजिए।

7.7 सारांश (Summary)

सूखा दुनिया के अधिकांश क्षेत्रों में जलवायु की आवर्ति विशेषता है। भारत में सूखा दक्षिण–पश्चिम मानसून के कमजोर होने से पड़ता है। स्वतन्त्रता के बाद जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, कृषि विकास, शहरीकरण, औद्योगीकरण आदि के कारण जल की मांग में लगातार वृद्धि होती गई। किसी कारण जल विवाद उत्पन्न हुए। ऊर्जा संसाधनों का विकास औद्योगिकर विकास का सूचक है।

7.8 शब्दावली (Glossary)

- **ऊर्जा** – किसी भी कार्यकर्ता के कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं।
- **संगठन** – वह सामाजिक व्यवस्था या युक्ति है जिसका लक्ष्य एक होता है, जो अपने कार्यों की समीक्षा करते हुए स्वयं का नियंत्रण करती है।
- **संघर्ष** – दो या अधिक समूहों के बीच मतभेद, प्रतिरोध, विरोध आदि से हैं।

7.9 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 7.2.3 देखें।

2) सन्दर्भ 7.2.4 देखें।

3) सन्दर्भ 7.4 देखें।

4) सन्दर्भ 7.5.1 देखें।

7.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014

8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

7.11 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) सूखा से आपका क्या अभिप्राय है?

2) सूखा के क्या कारण हैं?

3) जल संघर्ष के कारणों की व्याख्या कीजिए।

*****

अध्याय – 8
पर्यावरण प्रदूषण तथा उसके प्रकार
(Environment Pollution and Their Types)

संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ

8.3 वायु प्रदूषण

8.3.1 विभिन्न गैसों का प्रभाव

8.3.2 वायु प्रदूषण को रोकने के उपाय

8.4 जल प्रदूषण

8.4.1 जल प्रदूषण के कारण

8.4.2 जल प्रदूषण के प्रभाव

8.4.3 जल प्रदूषण को रोकने के उपाय

8.5 ध्वनि प्रदूषण

8.5.1 ध्वनि प्रदूषण का कारण

8.5.2 ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव

8.5.3 ध्वनि प्रदूषण का नियंत्रण

8.6 मृदा प्रदूषण

8.6.1 मृदा प्रदूषण का कारण

8.6.2 मृदा प्रदूषण का प्रभाव

8.6.3 मृदा प्रदूषण का नियंत्रण

8.7 ओजोन परत में छेद

8.8 रेडियो एक्टिव प्रदूषण

8.8.1 रेडियो एक्टिव प्रदूषण के कारण

8.8.2 रेडियो एक्टिव प्रदूषण का प्रभाव

8.9 जलवायु परिवर्तन

8.10 वैश्विक ताप वृद्धि

8.10.1 वैश्विक ताप वृद्धि से समस्याएं

8.10.2 वैश्विक ताप को नियंत्रित करने के उपाय

8.11 अम्लीय वर्षा

8.11.1 अम्लीय वर्षा के प्रमुख स्रोत

8.11.2 अम्लीय वर्षा के कुप्रभाव
8.12 पॉलीथीन प्रदूषण
8.12.1 पॉलीथीन थैली के प्रयोग से होने वाली हानि
8.13 स्वयं जांच प्रश्न
8.14 सारांश
8.15 शब्दावली
8.16 स्वयं जांच उत्तर
8.17 सन्दर्भ ग्रन्थ
8.18 अभ्यासात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरण के किसी भी घटक में होने वाला अवांछनीय परिवर्तन, जिससे जीव जगत् पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, प्रदूषण कहलाता है। पर्यावरण प्रदूषण में मानव की विकास प्रक्रिया, औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पर्यावरणीय घटकों के आधार पर पर्यावरणीय प्रदूषण को भी ध्वनि, जल, वायु एवं मृदा प्रदूषण आदि में बांटा जाता है।

सभी जीव अपनी वृद्धि एवं विकास तथा अपने जीवन चक्र चलाने के लिए संतुलित पर्यावरण पर निर्भर करते हैं। संतुलित पर्यावरण से तात्पर्य एक ऐसे पर्यावरण से है, जिसमें प्रत्येक घटक एक निश्चित मात्रा एवं अनुपात में उपस्थित होता है परन्तु कभी–कभी मानवीय या अन्य कारणों से पर्यावरण में एक अथवा अनेक घटकों की मात्रा या तो आवश्यकता से बहुत अधिक बढ़ जाता है तथा जीव समुदाय के लिए किसी न किसी रूप में हानिकारक सिद्ध होता है। पर्यावरण में इस अनचाहे परिवर्तन को ही 'पर्यावरणीय प्रदूषण' कहते हैं।

8.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

पर्यावरण प्रदूषण क्या है?

प्रदूषण के विभिन्न प्रकार

8.2 पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ (Meaning of Environment Pollution)

पर्यावरण प्रदूषण को समझने से पूर्व यह समझना जरूरी है कि पर्यावरण क्या है और हमें कैसे प्रभावित करता है। हर्षकोविट्स के शब्दों में, ''पर्यावरण सम्पूर्ण बाह्य परिस्थितियों एवं प्रभावों का जीवधारियों पर पड़ने वाला सम्पूर्ण प्रभाव है जो उनके जीवन विकास एवं कार्य को प्रभावित करता है।''

पर्यावरण प्रदूषण आज हमारे ग्रह पर मानवता और अन्य जीवन रूपों का सामना करने वाली सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। पर्यावरण प्रदूषण को पृथ्वी/वायुमंडल प्रणाली के भौतिक और जैविक घटकों के संदूषण के रूप में परिभाषित किया जाता है। सामान्य पर्यावरणीय प्रक्रियाएं प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती हैं। प्रदूषक प्राकृतिक रूप से पदार्थ या ऊर्जा हो सकते हैं, लेकिन अधिक मात्रा में होने पर उन्हें दूषित माना जाता है। प्राकृतिक संसाधनों की किसी भी दर का उपयोग प्रकृति द्वारा स्वयं को पुनर्स्थापित करने की क्षमता से अधिक होने पर वायु, जल और भूमि के प्रदूषण का परिणाम हो सकता है। पर्यावरण प्रदूषण आज विभिन्न घातक स्वरूपों में विद्यमान है जो मानव सभ्यता के अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। स्थिति यहां तक आ गई है कि सृष्टि का भविष्य संकटग्रस्त है। पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख स्वरूप निम्न हैं–

8.3 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

मानव को प्रकृति प्रदत्त एक निःशुल्क उपहार मिला है और वह है– वायु। यह उपहार सभी जीवों का आधार है। मानव बिना भोजन एवं बिना जल के कुछ समय भले ही व्यतीत कर ले, बिना वायु के वह दस मिनट भी जीवित नहीं रह सकता। यह अत्यंत चिन्ता का विषय है कि प्रकृति प्रदत्त जीवनदायिनी वायु लगातार जहरीली होती जा रही है। शहरों का असीमित विस्तार, बढ़ता औद्योगीकरण, परिवहन के साधनों में लगातार वृद्धि तथा विलासिता की वस्तुएं जैसे– एयरकन्डीशनर, रेफ्रिजरेटर आदि। वायु प्रदूषण को लगातार बढ़ावा दे रही है।

मानव 24 घण्टे में लगभग 22,000 बार सांस लेता है तथा इसमें प्रयुक्त वायु की मात्रा लगभग 35 गैलन या 16 किग्रा है। ऐसी वायु जो हानिकारक अवयवों से मुक्त हो, उसे शुद्ध वायु कहते हैं। वायु के मुख्य संघटकों में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन एवं कार्बनडाइऑक्साइड हैं। उक्त के अतिरिक्त वायुमण्डल में थोड़ी मात्रा में आर्गन या नियॉन जैसी विरल गैसें भी पाई जाती है। वायुमण्डल में प्रमुख गैसों की सान्द्रता निम्न प्रकार है–

1.	नाईट्रोजन	79.20 प्रतिशत
2.	ऑक्सीजन	20.60 प्रतिशत
3.	कार्बनडाइऑक्साइड	0.20 प्रतिशत
4.	अन्य	अति सूक्ष्म रूप में

आधुनिक युग में उद्योगों की चिमनियों, बढ़ते वाहनों एवं अन्य कारणों से वायुमण्डल में अनेक हानिकारक गैसें मिश्रित हो रही हैं, जिनमें सल्फरडाइऑक्साइड, कार्बनमोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन के विभिन्न ऑक्साइड, क्लोरो लोरो कार्बन एवं फार्मेलिडहाइड मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त सड़कों पर चल रहे वाहनों से निकला सीसा (लेड), अधजले हाइड्रोकार्बन और विशैला धुआँ भी वायुमण्डल को लगातार प्रदूषित कर रहे हैं। वायुमण्डलीय वातावरण के इस असंतुलन को वायु प्रदूषण कहते हैं। अत्यधिक वायु प्रदूषण के कारण आसमान अब भूरा दिखाई देता है। विषाक्त वायु को अवशोषित करने वाले वृक्षों के कटान से वायुमण्डल में प्राणवायु ऑक्सीजन की लगातार कमी हो रही है तथा दूषित गैसों का दबाव बढ़ रहा है।

विभिन्न वायु प्रदूषक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। वायुमण्डल में इन विषाक्त गैसों की उपस्थिति के कारण स्मॉग (स्मोक+फॉग) का निर्माण होता है। लंदन एवं लॉस एंजेल्स में स्मॉग निर्माण से अनेक लोगों की मृत्यु हो चुकी है। हमारे देश में मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में मिथाइल आइसो सायनाइड गैस से वायु इतनी प्रदूषित हुई जिससे हजारों लोग मौत एवं विकलांगता का शिकार हो गए। प्रदूषित वायु मानव के श्वसन–तंत्र को कुप्रभावित करती है।

8.3.1 विभिन्न गैसों का घातक प्रभाव

क्रम सं.	प्रदूषक	प्रभाव
1.	कार्बनमोनोऑक्साइड	रक्त के हीमोग्लोबिन से मिलकर विषैला पदार्थ कार्बाक्सीहीमोग्लोबिन बनता है तथा अनेक व्याधियां पैदा करता है।
2.	क्लोरीन	आँख, नाक, गले में जलन, आँखों में सूजन तथा खाँसी की बीमारी
3.	धूलकण	एलर्जी, साँस के रोग, रेत की अधिकता से सिलकोसिस नामक रोग

4.	एसबेस्टस कण	एस्बेस्टॉसिस नामक रोग
5.	लेड कण	लेड विषाक्तता तथा कैंसर
6.	मैगनीज करण	निमोनिया व साँस की बीमारी
7.	हाइड्रोजन सल्फाइड	नाक, कान, गले में जलन, लकवा
8.	हाइड्रोजन लोराइड	बच्चों की शारीरिक संरचना में विकृति तथा लोरोसिस
9.	हाइड्रोजन के ऑक्साइड	श्वसन क्रिया अवरूद्ध होने से फेफड़ों में धूलकण व कजली का अधिक प्रवेश
10.	फास्जीन	खाँसी, क्षोभ को प्रेरित करती है
11.	पारे की वाष्प	अत्यंत विषैली होने की वजह से पारे की विषाक्तता हो जाती है
12.	नाइट्रोजनडाइऑक्साइड	जलन, फेफड़ों के रोग तथा दृष्टि की समस्या होती है
13.	ओजोन	आँख, नाक, गले में जलन, दमे की बीमारी तथा वातावरण में स्मॉग बनाना
14.	सल्फरडाइऑक्साइड	सिरदर्द, उल्टी, साँस लेने में तकलीफ तथा मृत्यु दर में वृद्धि
15.	रेडियोधर्मी कण	मुख्यतः कैंसर तथा आगे की पीढ़ी में संतानों में विकृति होना तथा आयु भी घटती है।

उक्त के अतिरिक्त प्रदूषित वायुमण्डल के कारण धातु की बनी वस्तुओं में अनेक बार रंगाई करनी पड़ती है। वायु प्रदूषण से ऐतिहासिक धरोहरों को भी क्षति पहुंचती है। ताजमहल का 'पत्थर कैंसर' वायु प्रदूषण का ही परिणाम है। धुआँ तथा धूल से सूक्ष्म कणों के कारण सूर्य का प्रकाश भूमि तक ठीक से नहीं पहुंच पाता जिससे आकाश की निर्मलता घटती है। इससे वायुयानों के चालन में कठिनाई होती है और दुर्घटना की आशंका बनी रहती है।

वायु प्रदूषण से होने वाले असंतुलन का परिणाम हमें चातुर्दित दिखाई दे रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार ने इस दिशा में वायु (प्रदूषण, निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम– 1981 पारित किया। केंन्द्र में केंद्रीय प्रदूषण बोर्ड तथा विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न नियंत्रण के सम्बन्ध में यथोचित कार्यवाही नहीं की जाती उनके विरूद्ध अभियोजनात्मक कार्यवाही की जाती है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा परिवेशीय वायु की गुणवत्ता का मानक बनाया गया है, जो निम्न प्रकार है–

क्र.स.	**परिक्षेत्र सल्फरडाइ ऑक्साइड**	**निलंबित ऑक्साइड**	**सूक्ष्म**	**कार्बनमोनो के ऑक्साइड**	**नाइट्रोजन**
1.	औद्योगिक और मिश्रित वातावरण	120	500	5000	120
2.	आवासीय और शहरी	80	200	2000	80
3.	संवेदनशील क्षेत्र (ऐतिहासिक इमारतें, पर्यटन स्थल एवं अभयारण्य आदि)	30	100	1000	30

8.3.2 वायु प्रदूषण को रोकने हेतु प्रमुख उपाय

1. वायु प्रदूषण रोकने में वृक्षों का सबसे बड़ा योगदान है। पौधे वायुमण्डलीय कार्बनडाइऑक्साइड अवशोषित कर हमें प्राणवायु ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। अतः सड़कों, नहर पटरियों तथा रेल लाइन के किनारे तथा उपलब्ध रिक्त भू–भाग पर व्यापक रूप में वृक्ष लगाए जाने चाहिए ताकि हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ वायुमण्डल भी शुद्ध हो सके। औद्योगिक क्षेत्रों के निकट हरि पट्टियां विकसित की जानी चाहिए जिसमें ऐसे वृक्ष लगाए जाएं जो चिमनियों के धुएं से आसानी से नष्ट न हों तथा घातक गैसों को अवशोषित करने की क्षमता रखते हो। पीपल एवं बरगद आदि का रोपण इस दृष्टि से उपयोगी है।
2. औद्योगिक इकाइयों को प्रयास करना चाहिए कि वायुमण्डल में फैलने वाली घातक गैसों की मात्रा निर्धारित मानकों के अनुसार रखें जिसके लिए प्रत्येक उद्योग में वायु शुद्धिकरण यंत्र अवश्य लगाए जाएं।
3. उद्योगों में चिमनियों की ऊँचाई पर्याप्त होनी चाहिए ताकि आस–पास कम से कम प्रदूषण हो।
4. पैट्रोल कारों में कैटेलिटिक कनवर्टर लगाने से वायु प्रदूषण को बहुत हद तक कम किया जा सकता है। इस प्रकार की कारों में सीसा रहित पैट्रोल का प्रयोग किया जाना चाहिए।
5. घरों में धुआँ रहित ईंधनों को बढ़ावा देना चाहिए।
6. जीवाश्म ईंधनों (पैट्रोलियम, कोयला), जो वायुमण्डल को प्रदूषित करते हैं, का प्रयोग कुछ कम करके सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा जैसी वैकल्पिक ऊर्जाओं का प्रयोग किया जा सकता है।

हमारा वायुमण्डल हमारे स्वास्थ्य को सर्वाधिक प्रभावित करता है, इस तथ्य के विपरीत हमने विभिन्न पर्यावरणीय तंत्रों को इस सीमा तक परिवर्तित कर दिया है जिसका परोक्ष दुष्परिणाम हमें स्पष्ट दिखाई देता है। इस स्थिति पर ध्यान न देना आत्महत्या सिद्ध होगा। अतः हम सबको मिलकर इस धरती पर प्रलयकारी परिस्थिति पैदा होने की आशंका को टालने के लिए निरंतर संघर्ष करना होगा। वायु प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं को हम भले ही रोक तो नहीं सकते परन्तु कुछ विशिष्ट सुरक्षा उपायों से कुछ हद तक पर्यावरण संरक्षण, संतुलन व विकास में योगदान कर सकते हैं।

8.4 जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल में ठोस कार्बनिक, अकार्बनिक पदार्थ, रेडियोएक्टिव तत्त्व, उद्योगों का कचरा एवं सीवेज से निकला हुआ पानी मिलने से जल प्रदूषित हो जाता है।

8.4.1 जल प्रदूषण के कारण

जल प्रदूषण के मुख्य कारण निम्न हैं–

1. उद्योगों से निकलने वाला कचरा– कई धातुएं जैसे– मरकरी, कैडमियम एवं लेड आदि अपने साथ निकालता है।
2. सीवेज का जल मानव तथा पशुओं के मल को अपने साथ ले जाता है जिसमें कई जीवाणु हानिकारक पदार्थ जैसे यूरिया एवं यूरिक एसिड आदि मिले रहते हैं।
3. बहुत से साबुनों से निकलने वाला पानी भी जल को प्रदूषित करता है।
4. निर्माण कार्य में प्रयुक्त पदार्थ, इमारतों में प्रयोग होने वाले पदार्थ जैसे फास्फोरिक एसिड, कार्बोनिक एसिड, सल्यूरिक एसिड आदि नदी में मिलकर जल प्रदूषण फैलाते हैं।

5. कुछ कीटनाशक पदार्थ जैसे डीडीटी, बीएचसी आदि छिड़काव से जल प्रदूषित हो जाता है तथा समुद्री जानवरों एवं मछलियों आदि को हानि पहुंचाता है। अन्ततः खाद्य शृंखला को प्रभावित करते हैं।
6. नाइट्रेट तथा फॉस्फेट लवण ही साधारणतया उर्वरक के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। यह लवण वर्षा में मिट्टी के साथ मिलकर जल को प्रदूषित कर देते हैं।
7. कच्चा पैट्रोल, कुँओं से निकलते समय समुद्र में मिल जाता है जिससे जल प्रदूषण होता है।

8.4.2 जल प्रदूषण के प्रभाव

1. भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली बीमारियों का एक मुख्य कारण प्रदूषित जल है। अतिसार, पेचिश, हैजा एवं टायफाइड आदि दूषित जल के प्रयोग से ही होते हैं। जल में पाए जाने वाले विभिन्न प्रदूषकों से उत्पन्न होने वाली बीमारियां निम्न प्रकार हैं–

क्र.सं.	प्रदूषक	प्रभाव
1.	आर्सेनिक	कैंसर, ब्लैक फुट रोग
2.	कैडमियम	उच्च रक्तचाप, रक्तकणिकाओं का क्षय, मिचली, दस्त, हृदय रोग
3.	बेरेलियम	कैंसर
4.	लोराइड	दाँतों का लोरोसिस रोग, हड्डियों का क्षय
5.	सीमा	कैंसर, एनिमिया, उग्र शरीर विष, तंत्रिका तंत्र पर कुप्रभाव, गर्भवती महिलाओं में रोग
6.	पारा	अत्यधिक विषैला, मस्तिष्क पर कुप्रभाव, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर कुप्रभाव
7.	क्रोमियम	चर्म रोग, खुजली कैंसर
8.	सिलेनियम	बलों का झड़ना, त्वचा सम्बन्धी रोग
9.	मल जल (सीवेज)	कुपोषण, पेचिस, आंत्र रोग
10.	कार्बनिक रसायन डिटरजेंट आदि	जलीय जीवों पर कुप्रभाव, कृमि रोग, पेट सम्बन्धी रोग
11.	नाइट्रेट	मेटहीमोग्लोबैमिया
12.	मैंगनीज	श्वास रोग, निमोनिया, त्वचा रोग

2. सूक्ष्म जीव जल में घुले हुए ऑक्सीजन के एक बड़े भाग को अपने उपयोग के लिए अवशोषित कर लेते हैं। जब जल में जैविक द्रव्य बहुत अधिक होते हैं तब जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जिसके कारण जल में रहने वाले जीव–जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है।
3. औद्योगिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न रासायनिक पदार्थ प्रायः क्लोरीन, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, जस्ता, सीसा, निकिल एवं पारा आदि विषैले पदार्थों से युक्त होते हैं। यदि यह जल पीने के माध्यम से अथवा इस जल में पलने वाली मछलियों को खाने के माध्यम से शरीर में पहुंच जाएं तो गम्भीर बीमारियों का कारण बन जाता है जिसमें अंधापन, शरीर के अंगों को लकवा मार जाना और श्वसन क्रिया आदि का विकार शामिल हैं। जब यह जल, कपड़ा धोने अथवा नहाने के लिए नियमित प्रयोग में लाया जाता है तो त्वचा रोग उत्पन्न हो जाता है।

4. प्रदूषित जल से खेतों में सिंचाई करने पर प्रदूषक तत्त्व पौधों में प्रवेश कर जाते हैं। इन पौधों अथवा इनके फलों को खाने से अनेक भयंकर बिमारियां उत्पन्न हो जाती हैं।
5. आज हजारों जलयान एवं पेट्रोलियम टैंकर समुद्र में चल रहे हैं। ये लाखों टन पेट्रोलियम का विसरण समुद्र की सतह पर करते हैं, जो इनके लीकेज अथवा छोटी–मोटी दुर्घटनाओं से होते हैं। यह तेल मछलियों के लिए विष है और समुद्री पर्यावरण के लिए अभिशाप है। इस तेल की कुछ हानिकारक धातुएं जैसे– सीसा, निकिल अथवा कोबाल्ट आदि वनस्पतियों अथवा जीवों के माध्यम से मनुष्य तक पहुंच जाती है।

मनुष्य द्वारा पृथ्वी का कूड़ा–कचरा समुद्र में डाला जा रहा है। नदियां भी अपना प्रदूषित जल समुद्र में मिलाकर उसे लगातार प्रदूषित कर रही हैं। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि भू–मध्य सागर में कूड़ा–कचरा बंद न किया गया तो डॉलफिन और टूना जैसी सुन्दर मछलियों का यह सागर शीघ्र ही इनका कब्रगाह बन जाएगा।

8.4.3 जल प्रदूषण रोकने के उपाय

1. अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को रोका जाना चाहिए तथा उसके स्थान पर गोबर की खाद का प्रयोग किया जाना चाहिए।
2. रासायनिक साबुनों के बढ़ते प्रयोग को कम किया जाना चाहिए।
3. उद्योगों के कचरे को नदियों में मिलाने से पूर्व उसमें उपस्थित कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों को नष्ट कर देना चाहिए।
4. रेडिया एक्टिव पदार्थ, अस्पतालों एवं रासायनिक प्रयोगशालाओं के कूड़े को जल में मिलाने के स्थान पर उसे जमीन में गाड़ना चाहिए। जल संकट की ओर विश्व जनमत का ध्यान आकृष्ट करने हेतु प्रति वर्ष 22 मार्च को विश्व जल दिवस मनाया जाता है।

8.5 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

अनियंत्रित, अत्यधिक तीव्र एवं असहनीय ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। ध्वनि प्रदूषण की तीव्रता को डेसिबल इकाई में मापा जाता है। शून्य डेसिबल, ध्वनि की तीव्रता का वह स्तर है जहां से ध्वनि सुनाई देने लगती है। फुसफुसाहट में बोलने पर ध्वनि की तीव्रता 30 डेसिबल होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार 40 से 50 डेसिबल तक की ध्वनि मनुष्य के सहने लायक होती है। उससे अधिक की तीव्रता की ध्वनि मनुष्य के लिए हानिकारक होती है। मानव के परिप्रेक्ष्य में ध्वनि का स्तर निम्न प्रकार है–

क्र.सं.	क्रिया	ध्वनि का स्तर (डेसिबल में)
1.	सामान्य श्रवण की सीमा	20
2.	सामान्य वार्तालाप	50.60
3.	सुनने की क्षमता में गिरावट	75
4.	चिड़चिड़ाहट	80
5.	मांसपेशियों में उत्तेजना	90
6.	दर्द की सीमा	120

8.5.1 ध्वनि प्रदूषण का कारण

1. औद्योगिक क्षेत्रों में उच्च ध्वनि के पासर सायरन, हॉर्न तथा मशीनों के द्वारा होने वाले शोर।
2. शहरों एवं गांवों में किसी भी त्योहार व उत्सव में, राजनैतिक दलों के चुनाव प्रचार व रैली में लाउडस्पीकरों का अनियंत्रित इस्तेमाल/प्रयोग।
3. अनियंत्रित वाहनों के विस्तार के कारण उनके इंजन एवं हार्न के कारण
4. जनरेटरों एवं डीजल पम्पों ओद से ध्वनि प्रदूषण

8.5.2 ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव

पर्यावरण प्रदूषण के अन्य स्वरूपों के साथ ध्वनि प्रदूषण भी हमारे लिए बड़े खतरे का कारण है। अधिक शोर से हमारे मस्तिष्क पर घातक प्रभाव पड़ता है तथा सुनने की शक्ति भी लगातार घटती जाती है जिससे धीरे–धीरे बहरापन आ जाता है। ध्वनि प्रदूषण से हृदय गति बढ़ जाती है जिससे रक्तचाप, सिरदर्द एवं अनिद्रा जैसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। नवजात शिशुओं के स्वास्थ्य पर ध्वनि प्रदूषण का बुरा प्रभाव पड़ता है तथा इससे कई प्रकार की शारीरिक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। गैस्ट्रिक, अल्सर और दमा जैसे शारीरिक रोगों तथा थकान एवं चिड़चिड़ापन जैसे मनोविकारों का कारण भी ध्वनि प्रदूषण ही है।

8.5.3 ध्वनि प्रदूषण का नियंत्रण

1. यथासंभव लाउडस्पीकरों का प्रयोग प्रतिबंधित कर देना चाहिए। जब तक अत्यंत आवश्यक न हो इनके प्रयोग की अनुमति नहीं देनी चाहिए। लाउडस्पीकरों का प्रयोग चिकित्सालयों एवं शिक्षण संस्थानों आदि से 500मी. से अधिक दूरी पर ही किया जाना चाहिए।
2. घरों में रेडियो, टेप, टेलीविजन का प्रयोग कम आवाज में करना चाहिए।
3. वाहनों के हार्न का प्रयोग कम से कम करना चाहिए।
4. वाहनों के सायलेंसरों एवं इंजन की देखभाल समय से करनी चाहिए।
5. हवाई जहाजों एवं जेट विमानों को निर्धारित ऊँचाई पर ही उड़ाना चाहिए।
6. पटाखों का प्रयोग कम से कम करना चाहिए।
7. सड़कों के किनारे वृक्ष लगाकर ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
8. ध्वनि प्रदूषण से बचाव के साधन जैसे– ईयर प्लग, ईयर पफ आदि का प्रयोग करके ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
9. रेलगाड़ी से उत्पन्न शोर को बैलास्ट विहीन रेल पथों के निर्माण द्वारा दूर किया जा सकता है।
10. ध्वनि प्रदूषण से ग्रसित सड़कों एवं मकानों को ध्वनि निरोधी बनाना चाहिए।

8.6 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

वर्षा से भूमि की संरचना का बिगड़ना, दिन–प्रतिदिन उर्वरकों का प्रयोग, चूहे मारने की दवा आदि का प्रयोग तथा फसलों को बीमारी से बचाने के लिए दवा का छिड़काव भूमिका की उर्वरकता को नष्ट कर देता है तथा ऐसा प्रदूषण मृदा प्रदूषण कहलाता है।

8.6.1 मृदा प्रदूषण का कारण

1. सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन डाइऑक्साइड वर्षा से क्रिया करके अम्ल बनाती हैं जिसे अम्लीय वर्षा कहते हैं। अम्लीय वर्षा भूमि की उर्वरकता को नष्ट करती है।

2. कई उर्वरक जैसे– अमोनियम सल्फेट, यूरिया, कैल्शियम सायनामाइड, अमोनियम नाईट्रेट एवं कैल्शियम सुपर फॉस्फेट आदि का लगातार प्रयोग मृदा की उर्वरकता को नष्ट करता है।
3. सब्जी, फलों तथा फूलों पर लगने वाले कीड़ों को मारने के लिए किया जाने वाला रासायनिक छिड़काव मृदा को प्रदूषित करता है।

8.6.2 मृदा प्रदूषण का प्रभाव

मृदा प्रदूषण से भूमि की उत्पादकता घटती है तथा उसमें कोई भी फसल एवं पेड़–पौधे आदि नहीं तैयार हो पाते हैं। धीरे–धीरे भूमि उसरीली हो जाती है। नग्न भूमि मृदाक्षरण को बढ़ावा देती है जिससे बाढ़ की विकराल समस्या आती है।

8.6.3 मृदा प्रदूषण कर नियंत्रण

1. कृषि कार्य में रासायनिक खादों के स्थान पर गोबर, घास, कूड़े आदि से निर्मित कम्पोस्ट खाद एवं हरी खाद का प्रयोग करने से मृदा प्रदूषण को रोकने में सहायता मिलती है।
2. एक खेत में एक ही फल उगाने के स्थान पर अलग–अलग फसल को उगाने से मृदा प्रदूषण को रोकने में सहायता मिलती है।
3. वृक्षारोपण मृदा प्रदूषण को रोकने का एक प्रभावी उपाय है।

8.7 ओजोन परत में छेद

पृथ्वी के वायुमण्डल की विभिन्न परतें निम्न हैं–

क्र.सं.	ऊँचाई	परत	तापमान
1.	0 से 11 किलोमीटर	ट्रोपोस्फेयर	15 से .56 डिग्रि सेंटीग्रेड
2.	11 से 50 किलोमीटर	स्ट्रेटोस्फेयर	.56 से .02 डिग्रि सेंटीग्रेड
3.	50 से 85 किलोमीटर	मेजोस्फेयर	.02 से 92 डिग्रि सेंटीग्रेड
4.	85 से 500 किलोमीटर	थर्मोस्फेयर	92 से 1200 डिग्रि सेंटीग्रेड

हमारे वायुमण्डल के भीतर ओजोन स्ट्रेटोस्फेयर स्तर में 11 से 35 किलोमीटर ऊँचाई तक घने आवरण के रूप में (प्रति क्यूबिक सेंटीमीटर हवा में 3,000 बिलियन अणु) पाई जाती है। कम सान्द्रण में यह गैस 10 से 15 किलोमीटर एवं 30 से 50 किलोमीटर ऊँचाई तक पाई जाती है। ओजोन गैस ऑक्सीजन के तीन परमाणुओं से मिलकर बनती है एवं इसका अणुसूत्र 03 है।

ओजोन की यह परत सूर्य से आने वाली घातक पराबैगनी किरणों को अवशोषित एवं परावर्तित कर पृथ्वी की रक्षा करती है। इसी आवरण को ओजोन सुरक्षा कवच कहते हैं। यहां पर ओजोन का निर्माण ऑक्सीजन पर पराबैगनी किरणों के प्रभाव से होता है। पराबैगनी किरणों के ट्रोपोस्फेयर में पहुंचने से प्रमुख घातक प्रभाव निम्नानुसार है–

1. मनुष्य की प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास होता है जिससे रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है।
2. आनुवांशिक गुणों के वाहक डीएनए की क्षति होती है।
3. त्वचा कैंसर एवं मोतियाबिंद जैसे रोग बढ़ते हैं।
4. पौधों में होने वाली प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
5. फसल उत्पादन में कमी आती है।

6. समुद्री जीवों को हानि पहुंचती है।

7. अनेक पेड़–पौधों व जीवों की प्रजातियां धीरे–धीरे लुप्त हो जाती है।

ओजोन परत के बावजूद लगभग एक प्रतिशत पराबैगनी किरणों धरती पर आती हैं। यदि ओजोन परत न होती तो धरती पर जीवन न होता। वायुमण्डल में बढ़ते प्रदूषण के कारण ऑक्सीजन एवं ओजोन का संतुलन बिगड़ रहा है। ओजोन परत को हानि पहुंचाने वाली प्रमुख गैसें निम्न हैं–

1. क्लोरोफ्लोरो कार्बन
2. क्लोरो ब्रोमो कार्बन
3. कार्बन टेट्रा क्लोराइड
4. मेथिल क्लोरोफार्म हैलोजन

प्रयोगों द्वारा यह सत्यापित है कि C.F.C का एक अणु स्ट्रेटोस्फेयर में एक लाख ओजोन अणुओं को नष्ट कर सकता है। ओजोन की सबसे कमी वाला क्षेत्र अण्टार्कटिका है। अण्टार्कटिका एवं दक्षिणी ध्रुव पर पाया जाने वाला ओजोन छिद्र किसी क्षेत्र विशेष को नहीं बल्कि पूरे विश्व को प्रभावित करता है। ओजोन परत की क्षति के भयंकर कुपरिणाम हैं। अनुमान है कि ओजोन परत में एक प्रतिशत की क्षति से हुए पराबैगनी विकिरण की वृद्धि से एक वर्ष में स्किन कैंसर के मरीजों में 6 प्रतिशत की वृद्धि होती है। ओजोन परत को हानि पहुंचाने वाले पदार्थों का प्रयोग मुख्यतः रेफ्रिजरेटर, एयर कंडीशनर, प्लास्टिक फोम, स्प्रे के द्रवों, अग्निशमन एवं इलेक्ट्रॉनिक के साल्वेंट क्लीनर के रूप में हो रहा है। क्लोरोलोरो कार्बन निम्न सतह पर बहुत स्थिर होते हैं। जैसे ये स्ट्रेटोस्फेयर में ओजोन परत तक पहुंचते हैं, पराबैगनी किरणों से क्रिया करके हैलोजन बनाते हैं। ये मुक्त मूलक ओजोन का तीव्र क्षरण करते हैं।

लुप्त हो रही ओजोन परत की रक्षा हेतु प्रभावी कदम उठाने के लिए 2 मई 1989 में विश्व के 80 राष्ट्रों ने अपनी सहमति दी थी। 1990 में एक अन्तर्राष्ट्रीय बैठक में तय हुआ कि विकसित देश 2000 तक 'क्लारो लोरो कार्बन' का उत्पादन पूर्णतः बंद कर देंगे। विकासशील देशों को इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु 10 वर्ष की छूट दी गई। ओजोन परत में छिद्र के व्यास की बढ़त को देखते हुए शीघ्रातिशीघ्र सम्पूर्ण विश्व में सीएफसी के उत्पादन पर रोक लगाना आवश्यक हो गया है। माण्ट्रियल प्रोटोकॉल दिनांक 16 सितम्बर 1987 को लागू हुआ ओजोन परत में बढ़ते छिद्र की ओर विश्व जनमत का ध्यान आकृष्ट करने के लिए प्रतिवर्ष 16 सितम्बर को 'अन्तर्राष्ट्रीय ओजोन परत संरक्षण दिवस' मनाया जाता है। इन प्रयासों से जब ओजोन छिद्र के आकार में निरंतर कमी देखी जा रही है।

8.8 रेडियो एक्टिव

नाभिकीय परमाणु परीक्षणों के फलस्वरूप कई रेडियो एक्टिव तत्व जैसे– यूरेनियम, थेरियम, प्लूटोनियम तथा रेडियो एक्टिव किरणें जैसे– अल्फा, बीटा व गामा किरणें वातावरण में प्रवेश करके रेडियो धर्मी प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

8.8.1 रेडियो एक्टिव प्रदूषण का कारण

नाभिकीय भट्टियां तथा युद्ध में प्रयोग हो रहे नाभिकीय बम तथा अन्य सामग्री तथा नाभिकीय परीक्षण आदि रेडियोधर्मी प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं। इन सब के द्वारा हानिकारक रेडियोएक्टिव तत्त्व, किरणें आदि निकलकर वातावरण में प्रवेश कर वायु, जल तथा मृदा को हानि पहुंचाती हैं।

8.8.2 रेडियो एक्टिव प्रदूषण का प्रभाव

1. रेडियोएक्टिव पदार्थ वातावरण में इतनी अधिक मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित करते हैं कि इससे पौधों की कोशिकाएं तथा जानवरों एवं मनुष्यों की कोशिकाएं भी नष्ट हो जाती हैं।
2. रेडियो धर्मी प्रदूषण के आस–पास रहने से टयूमर हो जाता है तथा समय से पूर्व ही गाल सफेद हो जाते हैं।
3. नाभिकीय विस्फोट से नदियों तथा समुद्र का जल प्रदूषित हो जाता है जिससे समुद्री जीव–जन्तु नष्ट हो जाते हैं।
4. रेडियोएक्टिव तत्व स्ट्रान्शियम मृदा को नष्ट कर देता है।
5. गामा रेडियो एक्टिव किरणें अत्यधिक खतरनाक होती हैं। अत्यधिक भेदन क्षमता होने के कारण इनसे उत्सर्जित ऊर्जा से जीवित कोशिकाएं आदि नष्ट हो जाती हैं।
6. नाभिकीय रिएक्टरों में यू–235 ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस नाभिकीय विखंडन से अत्यधिक ऊर्जा अवमुक्त होती है जो मनुष्य एवं पेड़–पौधों के लिए हानिकारक होती है।

रेडियो एक्टिव प्रदूषण का निदान –परमाणु एवं नाभिकीय परीक्षणों को सीमित करना।

8.9 जलवायु परिवर्तन

पृथ्वी के उद्‌भव से लेकर आज तक इसमें निरंतर परिवर्तन हो रहा है। इसकी गति कभी तीव्र होती है तो कभी मंद। पर्यावरण के प्रमुख भौगोलिक घटक जैसे– ताप, वायुदाब, आर्द्रता, वायु वेग, वर्षा आदि जलवायु का निर्माण करते हैं।

विगत वर्षों में जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, वन विनाश, स्वचालित वाहनों में वृद्धि तथा रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से पर्यावरण को क्षति पहुंची है तथा जलवायु के विभिन्न तत्त्वों जैसे– ताप, वायुदाब, आर्द्रता, वायु वेग, वर्षा आदि में व्यापक परिवर्तन हुआ है। इन परिवर्तनों के कारण मानव अस्तित्व खतरे में है। जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं–

प्राकृतिक कारण –मृदा क्षरण, बाढ़, तूफान, चक्रवात, भूस्खलन, ज्वालामुखी, दावाग्नि, सूखा, आँधी, तड़ित एवं भूकम्प आदि।

मानवीय कारण –जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, वन विनाश, यातायात के साधन, अनियोजित नगरीकरण, संसाधनों का असीमित विदोहन आदि।

जलवायु परिवर्तन के मुख्य प्रभाव निम्न हैं–

1. ग्रीन हाउस प्रभाव तथा वैश्विक ताप में वृद्धि, 2. अम्लीय वर्षा, 3. ओजोन परत का क्षरण, 4. नाभिकीय दुर्घटनाएं, 5. प्रचण्ड अग्निकाण्ड, 6. भूस्खलन, 7. मरूस्थलीकरण, 8. मृदाक्षरण, 9. पर्यावरण प्रदूषण, 10. बाढ़, 11. अकाल, 12. भूकम्प, 13. तूफान।

8.10 वैश्विक ताप वृद्धि

सामान्य परिस्थितियों में पृथ्वी का ताप इससे टकराने वाले सूर्य विकिरणों तथा अंतरिक्ष में वापस लौट जाने वाली किरणों द्वारा नियंत्रित होता है। जब वायुमण्डल में कार्बनडाइऑक्साइड की सांद्रता बढ़ जाती है तो इस गैस की मोटी परत किरणों को परावर्तित होने से रोकती है। यह मोटी ग्रीन हाउस की काँच की दीवार तथा कार की खिड़की के काँच की भांति होती है। यह दोनों ही गर्मी को बाहर विकृत होने से रोकती है। इसे 'ग्रीन हाउस प्रभाव' कहते हैं। यही क्रिया प्रकृति में भी होती है। यहां कार्बनडाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, ओजोन,

जलवाष्प, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा क्लोरोलोरोकार्बन गैसें एक मोटी परत पृथ्वी के वातावरण में बना लेती हैं जो गलास हाउस के काँच की भांति ही कार्य करती है अर्थात् सूर्य उष्मा जो भीतर आती है पूरी ही पूरी वापस नहीं जाने पाती जिससे विश्व स्तर पर वातावरण की निचली परत में वायु का ताप बढ़ जाता है। बढ़ी हुई कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा में समुद्रों द्वारा अवशोषित किया जा सकता है परन्तु औद्योगीकरण तथा ऊर्जा के अत्यधिक उपयोग से समुद्री अवशोषण क्षमता की तुलना में वायु मण्डल में अधिक कार्बनडाइऑक्साइड उत्सर्जित हो रही है। इस प्रकार वायुमण्डल में कार्बनडाऑक्साइड की सांद्रता निरंतर बढ़ रही है। कार्बनडाइऑक्साइड पृथ्वी के ताप में 50 प्रतिशत एवं क्लोरोलोरोकार्बन में 20 प्रतिशत तक की वृद्धि करती है।

कुछ अन्य गैसें जैसे सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा क्लोरोलोरो कार्बन भी ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न करते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार 2050 में पृथ्वी का ताप 1 से 5 डिग्री तक बढ़ जाएगा। ताप बढ़ने से ध्रुवों पर अधिक प्रभाव पड़ेगा। ग्रीनलैंड, आइसलैंड, नार्वे, साइबेरिया एवं अलास्का इससे सर्वाधिक प्रभावित होंगे। ध्रुवीय बर्फ पिघल जाएगी। 5 डिग्री ताप वृद्धि से समुद्र स्तर में 5 मीटर की वृद्धि होगी जो सेनफ्रांसिस्को एवं शंघाई जैसे उच्च जनसंख्या वाले तटीय शहरों पर प्रभाव डालेगा।

8.10.1 वैश्विक तापवृद्धि से उत्पन्न प्रमुख समस्याएं

1. जैविक विविधता में तेजी से कमी आएगी तथा महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोतों का ह्रास होगा।
2. 1 डिग्री तापवृद्धि अक्षांश से 100 किमी परिवर्तन के बराबर होगा।
3. बढ़े हुए ताप से विश्व के अनेक भागों में तीव्र तूफान आएंगे। उन क्षेत्रों में भी तूफान आ सकते हैं जहां पहले कभी ऐसा नहीं होता था।
4. ताप बढ़ने से वर्षा एवं मानसून के स्वरूप में परिवर्तन होगा। कहीं पर सूखा होगा तथा कहीं अत्यधिक वर्ष होगी। इससे मृदा क्षरण बढ़ेगा।
5. पर्वत शिखरों एवं ग्लेशियरों की बर्फ पिघलने से समुद्र का स्तर बढ़ेगा।
6. ताप वृद्धि से समुद्र गर्म होगा जिससे बांग्लादेश, भारत, मिश्र, इण्डोनेशिया आदि में बाढ़ आ सकती है।
7. वैश्विक तापवृद्धि से समुद्री पारिस्थिकी तंत्र अत्यधिक बिगड़ जाएगा।
8. तटीय शहरों की बाढ़ वहां संक्रामक रोग फैला सकती है।

8.10.2 वैश्विक ताप वृद्धि को नियंत्रित करने के उपाय

1. ऊर्जा उत्पादन व उपयोग में सुधार करना।
2. कार्बनिक ईंधन का प्रयोग कम करके उसके स्थान पर हाइड्रोजन ईंधन का प्रयोग किया जाए।
3. कार्बन मुक्त ऊर्जा स्रोत जैसे सूर्य, वायु एवं नाभिकीय ऊर्जा का विकास किया जाए।

8.11 अम्लीय वर्षा

वायुमण्डल में विद्यमान कार्बनडाइऑक्साइड गैस पानी में घुलकर कार्बोनिक अम्ल बनाती है। वर्षा के जल में कार्बोनिक अम्ल मिले होने के कारण वर्षा के जल का पी.एच. सामान्य से कुछ कम (लगभग 6.5) होता है। घातक गैसें जैसे सल्फर डाइऑक्साइड, सल्फर ट्राईऑक्साइड तथा नाइट्रोजनऑक्साइड आदि, जो वायु प्रदूषण के कारण वायुमण्डल में विद्यमान रहती हैं, वर्षा जल को अवशोषित कर उसका पी.एच. और कम कर देती हैं। यही अम्लीय वर्षा कहलाती है। भारत के कुछ प्रमुख महानगरों में वर्षा का पी.एच निम्न प्रकार पाया गया–

1. कोलकत्ता – 5.8
2. चेन्नई – 5.85
3. दिल्ली – 6.21
4. मुम्बई – 4.8

प्रमुख गैसें जो अम्लीय वर्षा हेतु उत्तरदायी हैं–

1. सल्फर डाइऑक्साइड – यह पानी के साथ घुलकर सल्यूरिक अम्ल बनाती है।
2. सल्फर ट्राईऑक्साइड – यह पानी के साथ घुलकर सल्यूरस अम्ल बनाती है।
3. हाइड्रोजन सल्फाइड – यह वायुमण्डल में हाड्रोजन मूलकों के साथ सल्फर डाइऑक्साइड बनाती है।
4. नाइट्रोजन के आक्साइड – यह प्रकाश ऑक्सीकरण द्वारा नाइट्रस अम्ल बनाती है।
5. कार्बनडाइऑक्साइड – यह पानी के साथ घुलकर कार्बोनिक अम्ल बनाती है।

8.11.1 अम्लीय वर्षा के प्रमुख स्रोत

सल्फर डाइऑक्साइड कायले के जलने, विद्युत शक्ति संयंत्रो एवं पेट्रोलियम शोधन से सल्फर डाइऑक्साइड गैस निकलती है। इसी के साथ कुछ मात्रा में सल्फर ट्राईऑक्साइड भी निकलती है। प्राकृतिक स्रोतों में ज्वालामुखी प्रमुख है। हाइड्रोजन सल्फाइड गैस प्राकृतिक रूप से सल्फर को अपचयित करने वाले जीवाणुओं से प्राप्त होती है तथा दलदली भूमि से निकलती रहती है। यह गैस जीवाष्म ईंधनों के आंशिक रूप से जलने एवं अनेक उद्योगों में द्वितीयक उत्पाद के रूप में प्रकट होती है। नाइट्रोजन की विभिन्न ऑक्साइड गैसें अनेक जीवाश्म इंधनों के ज्वलन तथा विस्फोटक उद्योगों से निकलकर वायुमण्डल में मिल जाती हैं। आजकाल होने वाली 60 से 70 प्रतिशत अम्लीय वर्षा सल्फर के विभिन्न ऑक्साइड से होती है। 30 से 40 प्रतिशत अम्लीय वर्षा नाइट्रोजन के ऑक्साइड एवं अन्य कारणों से होती है।

8.11.2 अम्लीय वर्षा के कुप्रभाव

अम्लीय वर्षा के अत्यंत घातक परिणाम होते हैं जिनमें प्रमुख निम्न प्रकार है–

1. यह जल, स्थल, वायु, वनस्पतियों, जीव जन्तुओं एवं इमारतों सभी को क्षति पहुंचाती है।
2. झीलों, तालाबों नदियों आदि का जल अत्यधिक अम्लीय हो जाता है जिसे अम्ल सदमा कहते हैं। इससे पानी में रहने वाले जीव प्रभावित होते हैं।
3. झीलों, तालाबों आदि से पानी रिस कर भू–गर्भ में स्थित विभिन्न धातुओं जैसे तांबा, एल्युमिनियम, कैडमियम आदि से क्रिया करके विभिन्न जहरीले यौगिक बनाता है जो प्राणियों को प्रभाव करते हैं।
4. अम्लीय वर्षा से त्वचा रोग तथा एलर्जी होती है।
5. अम्लीय जल जब घरों में जस्ता, सीसा या ताम्बे के पाइपों से गुजरता है तो इस जल में धातुओं की अधिकता हो जाती है जिससे अतिसार व पेचिश जैसे रोगों की सम्भावना बढ़ती है।
6. इससे दमा तथा कैंसर का भय होता है।
7. इससे मृदा की उर्वरता में कमी आती है।
8. इससे पौधों की वृद्धि में कमी आती है।
9. पौधों की पत्तियों में उपस्थित पर्णहरित का विघटन हो जाता है जिससे पत्तियों का रंग परिवर्तित हो जाता है।

10. पौधों की पत्तियां, पुष्प एवं फल असमय झड़ जाते हैं।

11. प्राचीन इमारतों का क्षरण होता है जिसे ''स्टोन कैंसर'' कहते हैं।

आगरा से 40 किमी दूर मथुरा का तेल शौधक कारखाना है जो प्रतिदिन 25 से 30 टन सल्फर डाइऑक्साइड गैस वायुमण्डल को देता है। इसी कारण आगरा के वायुमण्डल में सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा 1.75 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर है। इसके कारण ताजमहल पर कहीं–कहीं संक्षारक धब्बे दिखाई देते हैं।

अम्लीय वर्षा से स्वीडन की बीस हजार झीलों की मछलियां मर गई। जर्मनी के जंगलों को अम्लीय वर्षा से अपार क्षति पहुंची है। अम्लीय वर्षा को नियंत्रित करने के लिए सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइडों के प्रयोग में कमी लाना आवश्यक है।

8.12 पॉलीथीन प्रदूषण

प्राथमिक रूप से प्लास्टिक थैलों, प्लास्टिक फिल्म व बोतल आदि जैसे वाहकों में प्रयुक्त होने वाली पॉलीथीन सर्वप्रथम संयोगवश संश्लेषित हुई। वर्ष 1898 में जर्मन रसायनशास्त्री हास वान पेचमान द्वारा डाइ एजोमीथेन को गर्म करते समय पॉलीएथीलीन या पॉलीथीन सर्वप्रथम संयोगवश संश्लेषित हुई। सर्वाधिक प्रयोग होने वाली प्लास्टिक उनके सहयोगियों यूजेन बामबर्गर व फ्रेडिक शीरनर ने इस वेत पदार्थ जो–$CH2$ की लंबी श्रृंखला धारित करती है, जो पॉलीमेथीलीन नाम दिया। पॉलीएथीलीन या पॉलीथीन का वैज्ञानिक (आइयूपीएसी) नाम पॉली ईथीन या पॉलीमेथीलीन है। इसका वार्षिक वैश्विक उत्पादन लगभग 8 करोड़ टन है। विभिन्न प्रकार के ज्ञात पॉलीएथीलीन का रासायनिक सूत्र $\frac{1}{4}C_2H_4\ \frac{1}{2}{}_nH_2$ है। इस प्रकार सामान्यतया पॉलीएथीलीन समान कार्बनिक यौगिकों का मिश्रण है जो द के मान के साथ परिवर्तित होता है। उद्योगों में व्यावहारिक रूप से प्रयुक्त होने वाली संश्लेषित पॉलीएथीलीन का आविष्कार वर्ष 1933 में एरिक फौसेट व रेनाल्ड गिडसन ने संयोगवश किया था।

पॉलीथीन के भौतिक गुण –सामान्य रूप से व्यापारिक कार्यों में प्रयुक्त होने वाले मध्यम व उच्च घनत्व वाले पॉलीथीन 120 डिग्री सेंटीग्रेड से 180 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान के मध्य पिघलता है। अतः प्रयुक्त होने के उपरांत जहां फेंका जाता है वहीं अत्यंत लंबे समय तक बने रहकर सामान्य क्रियाकलाप बाधित करता है।

रासायनिक गुण – अधिकांश एलडीपई (लो डेंसिटी पॉलीथीन, मिडिल डेंसिटी पॉलीथीन एवं हाई डेंसिटी पॉलीथीन) अत्यंत उत्कृष्ट कोटि के रासायनिक प्रतिरोधक होते हैं, अर्थात् तीव्र अम्लीय या तीव्र क्षारीय पदार्थ से अभिक्रिया नहीं करते हैं। पॉलीथीन, नीली ज्वाला देते हुए धीरे–धीरे जलता है। जलने पर पॉलीथीन से पैराफीन की गंध आती है। लगातार जलाने पर ज्वाला समाप्त होने पर बूंद के रूप में हो जाता है। कमरे के तापमान पर क्रिस्टल नहीं घुलते हैं। सामान्यतया टालूईन या जाईलीन जैसे ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन एवं ट्राई क्लोरोइथेन या ट्राई क्लोरोबेंजीन जैसे क्लोरीनेट विलायक में पॉलीथीन उच्च तापमान पर घुलता है।

कम मूल्य, सहज रूप से सुलभ होने व अत्यंत उपयोगी होने के कारण पॉलीथीन का प्रयोग अत्यंत तेजी से बढ़ रहा है। कागज के थैलों, कुल्हड़ों, कागज की प्लेटों का चलन पॉलीथीन का बढ़ते प्रयोग के कारण समाप्त होता जा रहा है। आसानी से उपलब्ध होने के कारण सामान क्रय करन जाते समय कपड़े का थेला ले जाने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है। पॉलीथीन की बढ़ती लोकप्रियता व प्रयोग के कारण समाज व पर्यावरण के समक्ष नई समस्याएं व चुनौतियां उत्पन्न हो रही हैं, इसका मुख्य कारण पॉलीथीन का अपघटन न होना है। पॉलीथीन के अपघटन न होने से शहरों, गांवों व यहां तक कि दुर्गम वन क्षेत्रों में भी प्रयोग के पश्चात् फेंके गये पॉलीथीन का ढेर बहुत लंबे समय तक पड़ा रहता है। इस कारण उत्पन्न होने वाली समस्याएं एक दृष्टि में–

8.12.1 पॉलीथीन थेली के प्रयोग से होने वाली हानि

1. प्लास्टिक थैले में मुख्यतः जाइलीन, एथीलीन ऑक्साइड एवं बेंजीन का प्रयोग होता है। यह सभी टॉक्सिक रसायन हैं जो मानव स्वास्थ्य के लिए घातक हैं।
2. भूमि पर प्लास्टिक इकट्ठा होने पर वह लंबे समय तक गलती नहीं है। प्लास्टिक से भरे स्थान पर पौधे नहीं उगते हैं तथा यह भूमि की उर्वरा शक्ति को धीरे–धीरे समाप्त करती है।
3. प्लास्टिक के थैले में फेंकी हुई खाद्य सामग्री को खाकर गाय, बंदर एवं अन्य जीव तड़प–तड़प कर मर जाते हैं। नदियों या समुद्र के किनारे फेंकी गई पॉलीथीन थैली को खाकर मछलियां, डॉल्फिन, कछुए एवं अन्य समुद्री जीव मर जाते हैं।
4. पॉलीथीन थैली या प्लास्टिक को जलाने पर जहरीली गैस निकलती है, जो वायुमण्डल के लिए हानिकारक है।
5. पॉलीथीन या प्लास्टिक भूमि, जल एवं वायु तीनों के लिए अभिशाप है। धरती पर इसके गलने में 400 वर्ष से भी अधिक का समय लगता है।

पॉलीथीन या प्लास्टिक का प्रयोग रोकने या कम करने की दिशा में मात्र राजकीय प्रयास पर्याप्त नहीं है। पॉलीथीन/प्लास्टिक का प्रयोग कम करने की दिशा में हम निम्न प्रकार से सहयोग कर सकते हैं–

1. पॉलीथीन के थैले का प्रयोग न करें। सब्जी लेने या अन्य किसी कार्य के लिए बाजार जाते समय कपड़े का थैला लेकर जाएं।
2. प्लास्टिक के कप में चाय बिल्कुल न ग्रहण करें। यह स्वास्थ्य के लिए अत्यंत खतरनाक है। इसके स्थान पर मिट्टी के कुल्हड़ या गिलास आदि का प्रयोग करें।
3. पॉलीथीन के थेले में भरकर कूड़ा या खाद्य पदार्थ कदापि इधर–उधर न फेंके। यदि अपरिहार्य परिस्थिति वश पॉलीथीन या प्लास्टिक फेंकना आवश्यक हो तो ऐसे स्थान पर फेंके जहां से रिसाइकिल हेतु उसे एकत्रित किया जा सके।
4. जहां अत्यंत आवश्यक न हो पानी हेतु प्लास्टिक की बोतल का प्रयोग न करें।
5. विवाह समारोह व अन्य पर्वों पर प्लास्टिक की प्लेट तथा कप के स्थान पर पात्तल, दोना तथा मिट्टी के कुल्हड़ के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाए।
6. जहां अत्यंत आवश्यक हो, प्लास्टिक के विकल्प के रूप में बायोडेग्रेडेबल पदार्थों से बने बैग, कप आदि का प्रयोग किया जाए, जो मिट्टी में आसानी से गल जाते हैं।

8.13 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) पर्यावरण प्रदूषण क्या है?

2) ध्वनि प्रदूषण के कारण क्या हैं?

3) रेडियो एक्टिव प्रदूषण के विषय में बताएं।

8.14 सारांश (Summary)

पर्यावरण वह परिवेश है जिसमें हम रहते हैं लेकिन प्रदूषकों द्वारा हमारे पर्यावरण का प्रदूषित होना पर्यावरण प्रदूषण है। पृथ्वी का वर्तमान चरण जो हम देख रहे हैं, वह पृथ्वी और उसके संसाधनों के सदियों के शोषण का परिणाम है। इसके अलावा, पर्यावरण प्रदूषण के कारण पृथ्वी अपना संतुलन खो सकती है। मानव बल ने पृथ्वी पर जीवन का निर्माण और विनाश किया है। मानव पर्यावरण के क्षरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मानव ने आधुनिकता और वैज्ञानिकता के नाम पर प्रकृति का अत्यधिक दोहन किया है। परिणामस्वरूप हमारी धरती प्रदूषित हो गयी है। आज पूरी की पूरी आबोहवा ही प्रदूषित हो गयी है। न ही पीने के लिए साफ पानी है और न ही सांस लेने के लिए शुद्ध हवा और इसका जिम्मेदार और कोई नहीं केवल और केवल मनुष्य है। मनुष्य प्रजाति ने पेड़ों को काटकर अपने लिए ही समस्या उत्पन्न नहीं की है, अपितु अन्य पशु–पक्षियों से भी उनका निवास छीन लिया है।

8.15 शब्दावली (Glossary)

प्रदूषण – वायु, जल, मिट्टी आदि का अवांछित द्रव्यों से दूषित होना प्रदूषण कहलाता है।

विलुप्ति – उस घटना को कहते हैं जब किसी वस्तु या जीव जाति का अंतिम सदस्य मर जाता है और विश्व में उस वस्तु या जीव का कोई अस्तित्व नहीं रहता है।

8.16 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 2 देखें।

2) सन्दर्भ 5.2 देखें।

3) सन्दर्भ 8 देखें।

8.17 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

8.18 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) पर्यावरण प्रदूषण क्या है तथा उसके अनेक प्रकारों की व्याख्या करें।

2) ध्वनि प्रदूषण पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

3) अम्लीय वर्षा के कारकों तथा प्रभावों का वर्णन करें।

*****

अध्याय – 9
जलवायु परिवर्तन
(Climate Change)

संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 जलवायु परिवर्तन

9.2.1 जलवायु परिवर्तन के कारण

9.2.2 जलवायु परिवर्तन से प्रभाव

9.2.3 जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु वैश्विक प्रयस

9.2.4 जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु भारत के प्रयास

9.3 ग्लोबल वार्मिंग

9.3.1 ग्लोबल वार्मिंग के कारण

9.3.2 ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव

9.3.3 ग्लोबल वार्मिंग के बचाव

9.4 ओजोन परत

9.4.1 ओजोन परत क्या है?

9.4.2 ओजोन परत के लाभ

9.4.3 ओजोन परत गैस किस मंडल में पाई जाती है

9.4.4 ओजोन परत कितनी मोटी होती है?

9.4.5 ओजोन परत कैसे बनती है

9.4.6 ओजोन परत घटने से हानि

9.4.7 ओजोन परत संरक्षण के उपाय

9.4.8 ओजोन परत के कार्य

9.4.9 ओजोन परत के कारण

9.4.10 ओजोन क्षरण के प्रभाव

9.5 अम्बलीय वर्षा

9.5.1 अम्लीय वर्षा के कारण

9.5.2 अम्लीय वर्षा की समस्या के समाधान के उपाय

9.5.3 अम्लीय वर्षा के कारण और परिणाम

9.5.4 अम्लीय वर्षा से कैसे निपटें?

9.5.5 अम्लीय वर्षा पर परिचर्चा

9.6 स्वयं जांच प्रश्न

9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 स्वयं जांच उत्तर
9.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ
9.11 अभ्यासात्मक–प्रश्न

9.0 प्रस्तावना (Introduction)

वर्ष 2100 तक भारत समेत अमेरिका, कनाडा, जापान, न्यूजीलैंड, रूस और ब्रिटेन जैसे सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएं जलवायु परिवर्तन के असर से अछूती नहीं रहेंगी। कुछ समय पूर्व कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की एक शोध टीम ने 174 देशों के वर्ष 1960 के बाद जलवायु सम्बन्धी आंकड़ों का अध्ययन किया है। अध्ययन के अनुसार पृथ्वी पर 1.5 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान की स्थिति में विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ–साथ मानव के अस्तित्व पर भी खतरा उत्पन्न हो जाएगा। इसके अतिरिक्त पिछली सदी से अब तक समुद्र के जल स्तर में भी लगभग 8 इंच की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। वहीं संयुक्त राष्ट्र आपदा जोखिम न्यूनीकरण कार्यालय के अनुसार, भारत को जलवायु परिवर्तन के कारण हुई प्राकृतिक आपदाओं से वर्ष 1998–2017 के बीच की समयावधि के दौरान लगभग 8,000 करोड़ डॉलर की आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ा है। यदि पूरी दुनिया की बात की जाए तो इसी समयावधि में तकरीबन 3 लाख करोड़ डॉलर की क्षति हुई है। हाल ही में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क के तत्वावधान में आयोजित COP-25 सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए विभिन्न दिशा–निर्देश जारी किए गए।

इस आलेख में जलवायु परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन के कारण, उससे उत्पन्न चुनौतियों पर विश्लेषण किया जाएगा। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के उपायों पर भी विचार–विमर्श किया जाएगा।

9.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- जलवायु परिवर्तन क्या है?
- ग्लोबल वार्मिंग किसे कहते है और इसके क्या प्रभाव है?
- ओजोन परत किसे कहते हैं?

9.2 क्या है जलवायु परिवर्तन

- जलवायु परिवर्तन को समझने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि जलवायु क्या होता है? सामान्यतः जलवायु का आशय किसी दिए गए क्षेत्र में लम्बे समय तक औसत मौसम से होता है।
- अतः जब किसी क्षेत्र विशेष के औसत मौसम में परिवर्तन आता है तो उसे जलवायु परिवर्तन कहते हैं।
- जलवायु परिवर्तन को किसी एक स्थान विशेष में भी महसूस किया जा सकता है एवं सम्पूर्ण विश्व में भी। यदि वर्तमान संदर्भ में बात करें तो यह इसका प्रभाव लगभग सम्पूर्ण विश्व में देखने को मिल रहा है।
- पृथ्वी का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक बताते हैं कि पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी का तापमान बीते 100 वर्षों में 1 डिग्री फारेनहाइट तक बढ़ गया है। पृथ्वी के तापमान में यह परिवर्तन संख्या की दृष्टि से काफी कम हो सकता है, परन्तु इस प्रकार के किसी भी परिवर्तन का मानव जाति पर बड़ा असर हो सकता है।

- जलवायु परिवर्तन के कुछ प्रभावों को वर्तमान में भी महसूस किया जा सकता है। पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होने से हिमनद पिघल रहे हैं और महासागरों का जल स्तर बढ़ता जा रहा, परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं और कुछ द्वीपों के डूबने का खतरा भी बढ़ गया है।

9.2.1 जलवायु परिवर्तन के कारण

जलवायु परिवर्तन के कारणों का बेहतर विश्लेषण करने के लिए इसे दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1. प्राकृतिक गतिविधियां
2. मानवीय गतिविधियां

प्राकृतिक गतिविधियां

महाद्वीपीय संवहन – सृष्टि के प्रारम्भ में सभी महाद्वीप एक ही बड़े धरातल के रूप में पृथ्वी पर विद्यमान थे, किंतु सागरों के कारण धीरे–धीरे वे एक–दूसरे से दूर होते गए और आज उनके अलग–अलग खंड बन गए हैं। महाद्वीपीय संवहन अर्थात् महाद्वीपों का खिसकना अब भी जारी है जिसकी वजह से समुद्री धाराएं तथा हवाएं प्रभावित होती हैं और इनका सीधा प्रभाव पृथ्वी की जलवायु पर पड़ता हे। हिमालय पर्वत की श्रृंखला प्रतिवर्ष एक मिलीमीटर की दर से ऊंची हो रही है, जिसका मुख्य कारण भारतीय उपखंड का धीरे–धीर एशियाई एशियाई महाद्वीप की ओर खिसकना माना जाता है।

ज्वालामुखी विस्फोट – ज्वालामुखी विस्फोट होने पर बड़ी मात्रा में विभिन्न गैसें जैसे कार्बनडाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, जलवाष्प आदि तथा धूलकण वायुमंडल में उत्सर्जित होते हैं, जो कि वायुमंडल की ऊपरी परत, समतापमंडल में जाकर फैल जाते हैं तथा पृथ्वी पर आने वाले सूर्य प्रकाश की मात्रा घटा देते हैं। जिससे पृथ्वी का तापमान कम हो जाता है। एक अनुमान के अनुसार, प्रतिवर्ष लगभग 100 लाख टन कार्बनडाइऑक्साइड गैस ज्वालामुखी विस्फोट द्वारा वायुमंडल में फैल जाती है। वर्ष 1816 में इंग्लैंड, अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों में ग्रीष्म ऋतु में जो अचानक ठंड आई थी, जिसे "Killing Summer Frost" कहा गया, उसका कारण वर्ष 1815 में इंडोनेशिया में हुए अनेक ज्वालामुखी विस्फोटों को माना जाता है।

पृथ्वी का झुकाव – पृथ्वी के झुकाव के कारण ऋतुओं में परिवर्तन होता है। अधिक झुकाव अर्थात् अधिक गर्मी तथा अधिक सर्दी और कम झुकाव अर्थात् कम गर्मी तथा कम सर्दी का मौसम। इस प्रकार पृथ्वी के झुकाव के कारण जलवायु प्रभावित होती है।

समुद्री धाराएं – जलवायु को संतुलित रखने में सागरों का बड़ा योगदान रहता है। पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग में समुद्र व्याप्त है, जो कि वातावरण तथा जमीन की तुलना में दोगुना सूर्य का प्रकाश का अवशोषण करते हैं। सागरों को कार्बनडाइऑक्साइड का सबसे बड़ा सिंक कहा जाता है। वायुमण्डल की अपेक्षा 50 गुना अधिक कार्बनडाइऑक्साइड गैस समुद्र में होती है। समुद्री बहास में बदलाव आने से जलवायु प्रभावित होती है।

मानवीय गतिविधियां

शहरीकरण – उन्नीसवीं सदी में हुई औद्योगिक क्रांति की ओर सभी का ध्यान आकर्षिक हुआ। रोजगार पाने के लिए गाँवों में स्थित आबादी शहरों की तरफ प्रस्थान करने लगी और शहरों का आकार दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगा। मुंबई, कोलकता, दिल्ली, चेन्नई जैसे महानगरों में उनकी क्षमता से कई गुना अधिक आबादी निवास कर रही है, जिससे शहरों के संसाधनों का असीमित दोहन हो रहा है। जैसे–जैसे शहर बढ़ रहे हैं, वहां पर उपलब्ध भू–भाग दिन–प्रतिदिन ऊंची–ऊंची इमारतों से ढकता जा रहा है, जिससे उस स्थान की जल संवर्धन क्षमता कम हो रही है तथा बारिश के पानी से प्राप्त होने वाली शीतलता में भी कमी हो रही है, जिससे वहां के पर्यावरण तथा जलवायु पर निरंतर प्रभाव पड़ रहा है।

औद्योगिकरण – जलवायु परिवर्तन में औद्योगिकीकरण की बड़ी भूमिका है। विभिन्न प्रकार की मिलें वातावरण में सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, कार्बनडाइऑक्साइड तथा अनेक प्रकार की अन्य जहरीली गैसों और धूलकरण हवा में छोड़ती हैं, तो वायुमंडल में काफी वर्षों तक विद्यमान रहती है। यह गीन हाउस प्रभाव, ओजोन परत का क्षरण तथा भूमंडलीय तापमान में वृद्धि जैसी समस्याओं का कारण बनते हैं। वायु, जल एवं भूमि प्रदूषण भी औद्योगिकीकरण की ही देन है।

वनोन्मूलन – निरंतर बढ़ती हुई आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए वृक्ष काटे जा रहे हैं। आवास, खेती, लकड़ी और वन्य वन संसाधनों की चाह में वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है, जिससे पृथ्वी का हरित क्षेत्र तेजी से घट रहा है और साथ ही जलवायु के परिवर्तन में तेजी आ रही है।

रासायनिक कीटनाशकों एवं उर्वरकों का प्रयोग – पिछले कुछ दशकों में रासायनिक उर्वरकों की मांग इतनी तेजी से बढ़ी है कि आज विश्व भर में 1000 से भी अधिक प्रकार की कीटनाशी उपलब्ध हैं। जैसे–जैसे इनका उपयोग बढ़ता जा रहा है वैसे–वैसे वायु, जल तथा भूमि में इनकी मात्रा भी बढ़ती जा रही है, जो कि पर्यावरण को निरंतर प्रदूषित कर घातक स्थिति में पहुंचा रहे हैं।

9.2.2 जलवायु परिवर्तन से प्रभाव

वर्षा पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप दुनिया के मानसूनी क्षेत्रों में वर्षा में वृद्धि होगी जिससे बाढ़, भूस्खलन तथा भूमि अपरदन जैसी समस्याएं पैदा होंगी। जल की गुणवत्ता में गिरावट आएगी तथा पीने योग्य जल की आपूर्ति पर गंभीर प्रभाव पड़ेंगे। जहां तक भारत का प्रश्न है, मध्य तथा उत्तरी भारत में कम वर्षा होगी जबकि इसके विपरीत देश के पूर्वोत्तर तथा दक्षिण–पश्चिमी राज्यों में अधिक वर्षा होगी। परिणामस्वरूप वर्षा जल की कमी से मध्य तथा उत्तरी भारत में सूखे जैसी स्थिति होगी जबकि पूर्वोत्तर तथा दक्षिण पश्चिमी राज्यों में अधिक वर्षा के कारण बाढ़ जैसी समस्या होगी।

समुद्री जल स्तर पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप ग्लेशियरों के पिघलने के कारण विश्व का औसत समुद्री जल स्तर इक्कीसवीं शताब्दी के अंत तक 9 से 88 से.मी. तक बढ़ने की सम्भावना है, जिससे दुनिया की आधी से अधिक आबादी जो समुद्र से 60 कि.मी. की दूरी पर रहती है, पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारत के उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गोवा, गुजरात और पश्चिम बंगाल राज्यों के तटीय क्षेत्र जलमग्नता के शिकार होंगे। परिणामस्वरूप आसपास के गांवों व शहरों में 10 करोड़ से भी अधिक लोग विस्थापित होंगे जबकि समुद्र में जल स्तर की वृद्धि के परिणामस्वरूप भारत के लक्षद्वीप तथा अंडमान निकोबार द्वीपों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। समुद्र का जल स्तर बढ़ने से मीठे जल के स्रोत दूषित होंगे परिणामस्वरूप पीने के पानी की समस्या होगी।

कृषि पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि पैदावार पर पड़ेगा। संयुक्त राज्य अमरीका में फसलों की उत्पादकता में कमी आएगी जबकि दूसरी तरफ उत्तरी तथा पूर्वी अफ्रीका, मध्य पूर्व देशों, भारत, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया तथा मैक्सिको में गर्मी तथा नमी के कारण फसलों की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होगी। वर्षा जल की उपलब्धता के आधार पर धान के क्षेत्रफल में वृद्धि होगी। भारत में जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप गन्ना, मक्का, ज्वार, बाजरा तथा रागी जैसी फसलों की उत्पादकता दर में वृद्धि होगी जबकि इसके विपरीत मुख्य फसलों जैसे गेहूँ, धान तथा जौ की उपज में गिरावट दर्ज होगी। आलू के उत्पादन में भी अभूतर्पव गिरावट दर्ज होगी।

जैव–विविधता पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन का प्रभाव जैव विविधता पर भी पड़ेगा। किसी भी प्रजाति को अनुकूलन हेतु समय की आवश्यकता होती है। वातावरण में अचानक परिवर्तन से अनुकूलन के प्रभाव में उसकी मृत्यु हो जाएगी। जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव समुद्र की तटीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली

दलदली क्षेत्र की वनस्पतियों पर पड़ेगा जो तट का स्थिरता प्रदान करने के साथ–साथ समुद्री जीवों के प्रजनन का आदर्श स्थल भी होती हैं। दलदली वन जिन्हें ज्वारीय वन भी कहा जाता है, तटीय क्षेत्रों को समुद्री तूफानों में रक्षा करने का भी कार्य करते हैं। जैव विविधता क्षरण के परिणामस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन का खतरा बढ़ेगा।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर भी पड़ेगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, जलवायु में उष्णता के कारण श्वास तथा हृदय सम्बन्धी बीमारियों में वृद्धि होगी। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप न सिर्फ रोगाणुओं में बढ़ोतरी होगी अपितु इनकी नई प्रजातियों की भी उत्पत्ति होगी जिसके परिणामस्वरूप फसलों की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। मानव स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के चलते एक बड़ी आबादी विस्थापित होगी जो 'पर्यावरणीय शरणार्थी' कहलाएगी। इससे स्वास्थ्य सम्बन्धी और भी समस्याएं पैदा होगी।

9.2.3 जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु वैश्विक प्रयास

जलवायु परिवर्तन पर अंतर–सरकारी पैनल का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन, इसके प्रभाव और भविष्य के संभावित जोखिकों के साथ–साथ अनुकूलन तथा जलवायु परिवर्तन को कम करने हेतु नीति निर्माताओं को रणनीति बनाने के लिए नियमित वैज्ञानिक आकलन प्रदान करना है। IPCC आकलन सभी स्तरों पर सरकारों को वैज्ञानिक सूचनाएं प्रदान करता है जिसका इस्तेमाल जलवायु के प्रति उदार नीति विकसित करने के लिए किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन फ्रेमवर्क सम्मेलन एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता है। जिसका उद्देश्य वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करना है। वर्ष 1995 से लगातार UNFCCC की वार्षिक बैठकों का आयोजन किया जाता है। इसके तहत की वर्ष 1997 में बहुचर्चित क्योटी समझौता हुआ और विकसित देशों (एनेक्स–1 में शामिल देश) द्वारा ग्रीनहाउस गैसों को नियंत्रित करने के लिए लक्ष्य तय किया गया। क्योटो प्रोटोकॉल के तहत 40 औद्योगिक देशों को अलग सूची एनेक्स–1 में रखा गया है।

पेरिस समझौता जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता है। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लक्ष्य के साथ सम्पन्न 32 पृष्ठों एवं 29 लेखों वाले पेरित समझौते को ग्लोबल वार्मिंग को राकने के लिए एक ऐतिहासिक समझौते के रूप मान्यता प्राप्त है।

COP-25 सम्मेलन में लगभग 200 देशों के प्रतिनिधियों ने उन गरीब देशों की मदद करने के लिए एक घोषणा का समर्थन किया जो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से जूझ रहे हैं। इसमें पेरिस जलवायु परिवर्तन समझौते के लक्ष्यों के अनुरूप पृथ्वी पर वैश्विक तापन के लिए उत्तरदायी ग्रीनहाउस गैसों में कटौती के लिए 'तत्काल आवश्यकता' का आह्वान किया गया।

9.2.4 जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु भारत से प्रयास

जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्ययोजना का शुभारंभ वर्ष 2008 में किया गया था। इसका उद्देश्य जनता के प्रतिनिधियों, सरकार की विभिन्न एजेंसियों, वैज्ञानिकों, उद्योग और समुदायों को जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न खतरे और इससे मुकाबल करने के उपायों के बारे में जागरूक करना है। इस कार्ययोजना में 8 मिशन शामिल हैं–

- राष्ट्रीय सौर मिशन
- विकसित ऊर्जा दक्षता के लिए राष्ट्रीय मिशन
- सुस्थिर निवास पर राष्ट्रीय मिशन

- राष्ट्रीय जल मिशन
- सुस्थिर हिमालयी पारिस्थितिक तंत्र हेतु राष्ट्रीय मिशन
- हरित भारत हेतु राष्ट्रीय मिशन
- सुस्थिर कृषि हेतु राष्ट्रीय मिशन
- जलवायु परिवर्तन हेतु रणनीतिक ज्ञान पर राष्ट्रीय मिशन

अन्तर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन – अन्तर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन सौर ऊर्जा से सम्पन्न देशों का एक संधि आधारित अंतर–सरकारी संगठन है। अन्तर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन की शुरूआत भारत और फ्रांस ने 30 नवम्बर, 2015 को पेरिस जलवायु सम्मेलन के दौरान की थी। ISA के प्रमुख उद्देश्यों में वैश्विक स्तर पर 1000 गीगावाट से अधिक सौर ऊर्जा उत्पादन क्षमता प्राप्त करना और वर्ष 2030 तक सौर ऊर्जा में निवेश के लिए लगभग 1000 बिलियन डॉलर की राशि को जुटाना शामिल है।

वैश्विक तापमान यानी ग्लोबल वार्मिंग आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन चुकी है। इससे न केवल मनुष्य, बल्कि धरती पर रहने वाला प्रत्येक प्राणी त्रस्त है। ग्लोबल वार्मिंग से निपटने के लिए दुनियाभर में प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन समस्या कम होने के बजाय साल–दर–साल बढ़ती ही जा रही है। चूंकि यह एक शुरूआत भर है, इसलिए अगर हम अभी से नहीं सम्भलें तो भविष्य और भी भयावह हो सकता है। आगे बढ़ने से पहले हम यह जान लें कि आखिर ग्लोबल वार्मिंग है क्या?

9.3 क्या है ग्लोबल वार्मिंग

जैसा कि नाम से ही साफ है, ग्लोबल वार्मिंग धरती के वातावरण के तापमान में लगातार हो रही बढ़ोत्तरी है। हमारी धरती प्राकृतिक तौर पर सूर्य की किरणों से उष्मा प्राप्त करती है। ये किरणें वायुमंडल से गुजरती हुई धरती की सतह से टकराती हैं और फिर वहीं से परावर्तित होकर पुनः लौट जाती हैं। धरती का वायुमंडल कई गैसों से मिलकर बना है जिनमें कुछ ग्रीन हाउस गैसें भी शामिल हैं। इनमें से अधिकांश धरती के ऊपर एक प्रकार से एक प्राकृतिक आवरण बना लेती हैं। यह आवरण लौटती किरणों के एक हिस्से को रोक लेता है और इस प्रकार धरती के वातावरण को गर्म बनाए रखता है। गौरतलब है कि मनुष्यों, प्राणियों और पौधों के जीवित रहने के लिए कम से कम 16 डिग्री सेल्शियस तापमान आवश्यक होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि ग्रीनहाउस गैसों में बढ़ोत्तरी होने पर यह आवरण और भी सघन या मोटा होता जाता है। ऐसे में यह आवरण सूर्य की अधिक किरणों को रोकने लगता है फिर यहीं से शुरू हो जाते हैं ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभाव।

9.3.1 क्या है ग्लोबल वार्मिंग की वजह?

ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार तो मनुष्य और उसकी गतिविधियां ही हैं। अपने आप को इस धरती का सबसे बुद्धिमान प्राणी समझने वाला मनुष्य अनजाने में या जानबूझकर अपने ही रहवास को खत्म करने पर तुला हुआ है। मनुष्य जनित इन गतिविधियों से कार्बनडाइऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड इत्यादि ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा में बढ़ोतरी हो रही है जिससे इन गैसों का आवरण सघन होता जा रहा है। यही आवरण सूर्य की परावर्तित किरणों को रोक रहा है जिससे धरती के तापमान में वृद्धि हो रही है। वाहनों, हवाई जहाजों, बिजली बनाने वाले संयंत्रों, उद्योगों इत्यादि से अंधाधुंध होने वाले गैसीय उत्सर्जन की वजह से कार्बनडाइऑक्साइड में बढ़ोतरी हो रही है। जंगलों का बड़ी संख्या में हो रहा विनाश इसकी दूसरी वजह है। जंगल कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करते हैं, लेकिन इनकी बेतहाशा कटाई से यह प्राकृतिक नियंत्रक भी हमारे हाथ से छूटता जा रहा है।

इसकी वजह एक अन्य सीएफसी है जो रेफ्रीजरेटर्स, अग्निशामक यंत्रों इत्यादि में इस्तेमाल की जाती है। यह धरती के ऊपर बने एक प्राकृतिक आवरण ओजोन परत को नष्ट करने का काम करती है। ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली घातक पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस ओजोन परत में एक बड़ा छिद्र हो चुका है जिससे पराबैंगनी किरणें सीधे धरती पर पहुंच रही हैं और इस तरह से उसे लगातार गर्म बना रही है। यह बढ़ते तापमान का ही नतीजा है कि ध्रुवों पर सदियों से जमी बर्फ भी पिघलने लगी है। विकसित या हो अविकसित देश, हर जगह बिजली की जरूरत बढ़ती जा रही है। बिजली के उत्पादन के लिए जीवाष्म ईंधन का इस्तेमाल बड़ी मात्रा में करना पड़ता है। जीवाष्म ईंधन के जलने पर कार्बनडाइऑक्साइड पैदा होती है जो ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव को बढ़ा देती है। इसका नतीजा ग्लोबल वार्मिंग के रूप में सामने आता है।

9.3.2 ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव

वातावरण का तापमान और बढ़ेगा – पिछले दस सालों में धरती के औसत तापमान में 0.3 से 0. 6 डिग्री सेल्शियस की बढ़ोतरी हुई है। आशंका यही जताई जा रही है कि आने वाले समय में ग्लोबल वार्मिंग में और बढोतरी ही होगी।

समुद्र सतह में बढ़ोतरी – ग्लोबल वार्मिंग से धरती का तापमान बढ़ेगा जिससे ग्लेशियरों पर जमा बर्फ पिघलने लगेगी। कई स्थानों पर तो यह प्रक्रिया शुरू भी हो चुकी है। ग्लेशियरों की बर्फ के पिघलने से समुद्रों में पानी की मात्रा बढ़ जाएगी जिससे साल–दर–साल उनकी सतह में भी बढ़ोतरी होती जाएगी। समुद्रों की सतह बढ़ने से प्राकृतिक तटों का कटाव शुरू हो जाएगा जिससे एक बड़ा हिस्सा डूब जाएगा। इस प्रकार तटीय इलाकों में रहने वाले अधिकांश लोग बेघर हो जाएंगे।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा प्रभाव मनुष्य पर ही पड़ेगा और कई लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा। गर्मी बढ़ने से मलेरिया, डेंगू और यलो फीवर जैसे संक्रामक रोग बढ़ेंगे। वह समय भी जल्दी ही आ सकता है जब हम में से अधिकांश को पीने के लिए स्वच्छ जल, खाने के लिए ताजा भोजन और श्वास लेने के लिए शुद्ध हवा भी नसीब नहीं होगा।

पशु–पक्षियों व वनस्पतियों पर प्रभाव – ग्लोबल वार्मिंग का पशु–पक्षियों और वनस्पतियों पर भी गहरा प्रभाव पड़ेगा। माना जा रहा है कि गर्मी बढ़ने के साथ ही पशु–पक्षी और वनस्पतियां धीरे–धीरे उत्तरी और पहाड़ी इलाकों की ओर प्रस्थान करेंगे, लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ अपना अस्तित्व ही खो देंगे।

शहरों पर प्रभाव – इसमें कोई शक नहीं है कि गर्मी बढ़ने से ठंड भगाने के लिए इस्तेमाल में लाई जाले वाली ऊर्जा की खपत में कमी होगी, लेकिन इसकी पूर्ति एयर कंडिशनिंग में हो जाएगी। घरों को ठंडा करने के लिए भारी मात्रा में बिजली का इस्तेमाल करना होगा। बिजली का उपयोग बढ़ेगा तो उससे भी ग्लोबल वार्मिंग में इजाफा ही होगा।

9.3.3 ग्लोबल वार्मिंग से कैसे बचें?

ग्लोबल वार्मिंग के प्रति दुनियाभर में चिंता बढ़ रही है। इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस साल का नोबेल शांति पुरस्कार पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाली संयुक्त राष्ट्र की संस्था इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्याइमेंट चेंज और पर्यावरणवादी अमेरिका के पूर्व उपराष्ट्रपति अल गोर को दिया गया है, लेकिन सवाल यह है कि क्या पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में काम करने वालों को नोबेल पुरस्कार देने भर से ही ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से निपटा जा सकता है? बिल्कुल नहीं। इसके लिए हमें कई प्रयास करने होंगे।

1. सभी देश क्योटो संधि का पालन करें। इसके तहत 2012 तक हानिकारक गैसों के उत्सर्जन को कम करना होगा।
2. यह जिम्मेदारी केवल सरकार की नहीं है। हम सभी भी पेट्रोल, डीजल और बिजली का उपयोग कम करके हानिकारक गैसों को कम कर सकते हैं।
3. जंगलों की कटाई को रोकना होगा। हम सभी अधिक से अधिक पेड़ लगाएं। इससे भी ग्लोबल वार्मिंग के असर को कम किया जा सकता है।
4. टैक्नीकल डेवलपमेंट से भी इससे निपटा जा सकता है। हम ऐसे रेफ्रीजरेटर्स बनाए जिनमें सीएफसी का इस्तेमाल न होता हो और ऐसे वाहन बनाए जिनसे कम से कम धुआं निकलता हो।

9.4 ओजोन परत

क्या आपको मालूम है कि ओजोन परत क्या है? यदि नहीं तो हम आपको इस अध्ययन के माध्यम से ओजोन परत से सम्बन्धित जानकारी विस्तार से बताएंगे। जैसे कि ओजोन परत की सुरक्षा के उपाय, इसको बचाने के उपाय आदि। हम सब जानते हैं कि बिना पृथ्वी के जीवन जीना असम्भव है। यदि ओजोन परत में कमी होगी तो पराबैंगनी किरणों का स्तर बढ़ जाएगा जिससे पृथ्वी पर बहुत से नुकसान हो सकते हैं। हम सभी को ओजोन परत को बचाने के लिए जागरूक होना पड़ेगा और आपको ओजोन परत के बचाव के उपाय, ओजोन परत क्या है, भी जानना होगा। बढ़ता प्रदूषण, मौसम परिवर्तन ओजोन परत को अधिक मात्रा में हानि पहुंचा रहे हैं। यदि पृथ्वी पर सुरक्षित तरीके से रहना है तो प्रत्येक व्यक्ति को ओजोन परत की खराब हो रही स्थिति को सही करने में सहयोग करना होगा।

9.4.1 ओजोन परत क्या है?

ओजोन परत को हम सुरक्षा का कवच बोलते हैं जो सूर्य की तरफ से आने वाली पैराबैंगनी किरणों से पृथ्वी की रक्षा करती है। यह पृथ्वी की सतह से लगभग 15 से 25 कि.मी. की ऊँचाई पर स्थित होती है जिसे ओजोन परत कहते हैं। यह परत बिल्कुल ही बारीक सी होती है। यह पृथ्वी पर सूर्य से आने वाली हानिकारक पैराबैंगनी किरणों को रोकने का काम करती है। यदि पैराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर आती है तो इसे हमारे वातावरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, जीव–जन्तु और पेड़–पौधों को बहुत हानि पहुंचती है।

यह एक गंधयुक्त गैस होती है जो हल्के नीले रंग में पाई जाती है। ओजोन परत के कारण ही पृथ्वी पर जीवन सम्भव हो पाता है। ओजोन परत पृथ्वी पर जिन्दा रहने के लिए बहुत ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है। यह पृथ्वी के वायुमंडल की ही एक परत होती है। ओजोन परत में ओजोन गैस की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है।

9.4.2 ओजोन परत के लाभ

ओजोन परत हमारे जीवन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इससे ही पृथ्वी पर जीवन सम्भव हो पाया है। ओजोन परत के लाभ निम्नलिखित है–

- ओजोन परत सूर्य से आने वाली अल्ट्रा वायलेट और अन्य हानिकारक किरणों से हमारी रक्षा करती है।
- यह परत मनुष्य और जीव–जन्तुओं को इन किरणों की वजह से होने वाली खतरनाक बिमारियों से बचाती है।
- ओजोन परत फसलों को हानि से बचाती है।
- ओजोन परत धरती के वायुमंडल का जो तापमान होता है, उसे भी कंट्रोल में रखती है।
- यह परत हमें कैंसर जैसी घातक बीमारी होने से भी बचाती है।

9.4.3 ओजोन गैस किस मंडल में पाई जाती है?

यह जानना हमारे लिए बहुत आवश्यक है कि ओजोन परत कहां पाई जाती है? क्योंकि इसी मंडल से ओजोन परत हमारी रक्षा करती है। ओजोन परत पृथ्वी के समताप मंडल के नीचे के भाग में और धरती की सतह के ऊपर 15 से 25 कि.मी. की दूरी पर ओजोन परत पाई जाती है। ओजोन लेयर समताप मंडल में नुकसानदायक नहीं होती है परन्तु पृथ्वी पर जो ओजोन परत पाई जाती है वह हानिकारक होती है। ओजोन परत का 90 प्रतिशत भाग समताप मंडल में उपस्थित होता है। हमारे वायुमंडल में ओजोन परत का केवल 10 प्रतिशत भाग ही पाया जाता है।

9.4.4 ओजोन परत कितनी मोटी होती है?

ओजोन परत की मोटाई भोगौलिक दृष्टि और मौसम के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। 1913 में फ्रांस के फिजिस्ट फैबरी चार्ल्स और हेनरी बुसोन ने ओजोन लेयर की खोज की थी।

9.4.5 ओजोन परत कैसे बनती है?

ओजोन परत सूरज से निकलने वाली अल्ट्रावायलेट किरणों के कारण निर्मित होती है और यह हमारे वातावरण में मौजूद रहती है। अल्ट्रावायलेट किरणें जब ऑक्सीजन 02 के अणु पर गिरती है तब यह किरणें ऑक्सीजन के दो परमाणुओं को अलग करती है। जब यह दोनों परमाणु अलग–अलग हो जाते हैं, तो यह ऑक्सीजन के अन्य अणु से मिल जाते हैं और मिलकर ओजोन 03 का निर्माण करते हैं।

9.4.6 ओजोन परत के घटने से हानि

यदि ओजोन परत में कमी आ जाती है तो इससे हमारी पृथ्वी पर बहुत प्रकार का नुकसान हो सकते हैं। जिससे पराबैंगनी किरणें (UV) वायुमंडल में प्रवेश कर जाएगी और यह कई तरह के दुष्प्रभाव का कारण बनेगी। जोनल लेयर हिन्दी विभाग से हमें इसकी हानि के बारे में पता चलेगा।

- ओजोन परत में कमी आने के कारण पैराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर हावी हो जाएगी। इससे मनुष्य और जीव–जन्तुओं को बहुत तरह की बीमारियां हो सकती है।
- जब यह किरणें हमारी आँखों के सम्पर्क में आती है तो इससे हमारी आँखें बहुत सारी समस्या हो सकती है।
- यह किरणें समुद्र में पहुंचकर समुद्री जीव–जन्तुओं को भी हानि पहुंचाती है।
- इन किरणों की वजह से त्वचा कैंसर सम्बन्धी बीमारियां हो जाती हैं।
- यदि गर्भवती महिला इसके सम्पर्क में आजी है तो गर्भ में पल रहे शिशु पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

9.4.7 ओजोन परत संरक्षण के उपाय

ओजोन परत को कम करने में हमारा भी बहुत बड़ा हाथ है क्योंकि कि बहुत से कारणों की वजह से ओजोन परत में कमी होती जा रही है लेकिन ओजोन परत को बचाने के उपाय भी बहुत है जिसके द्वारा हम ओजोन परत को बचा सकते हैं।

वाहनों का कम प्रयोग करें

वाहनों से निकलने वाला धुआं बहुत ही नुकसानदायक होता है। वाहनों के उपयोग को कम से कम करें।

कीटनाशकों के प्रयोग से बचें।

यह ओजोन परत को बहुत ही ज्यादा हानि पहुंचाते हैं। कीटनाशकों की जगह प्राकृतिक तरीकों का प्रयोग करके इस नुकसान से बचा जा सकता है।

वृक्षों की कटाई न करें

वृक्षों की कटाई कम से कम करना चाहिए और ज्यादा से ज्यादा वृक्षों को लगाने का प्रयास करना चाहिए। वृक्षों को बढ़ने में सहयोग करें।

9.4.8 ओजोन परत के कार्य

ओजोन परत हम सभी के जीवन के लिए बहुत जरूरी है। ओजोन परत कई प्रकार से हमारी रक्षा करती है तथा ओजोन परत के बहुत से मुख्य कार्य होते हैं। इसके कार्य इस प्रकार है–

- यह पर्यावरण और हमारी पृथ्वी के लिए एक सुरक्षा कवच के रूप में काम करती है।
- यह पृथ्वी पर आने वाली सूर्य की खतरनाक किरणों को रोकती है।
- यह किरणों से होने वाली हानिकारक बीमारियों से हमें बचाती है।

9.4.9 ओजोन परत क्षरण के कारण

मानव द्वारा निर्मित केमिकल गैसों ने ओजोन परत को नष्ट कर दिया है। ओजोन परत में बहुत कमी आ गई है, जिसमें प्राकृतिक कारण के साथ मानवीय कारण भी जिम्मेदार है।

- क्लोरोफ्लोरो कार्बन भी इसका एक बड़ा कारण है। ओजोन परत में जो कमी हुई है उसके लिए यह उत्तरदायी है।
- सफाई करने में इस्तेमाल किए जाने वाले विलयों में कार्बनटेट्राक्लोराइड पाया जाता है यह ओजोन परत को नुकसान पहुंचाता है।
- सीएफसी क्लोरिन, लोरिन एवं ऑक्सीजन से बनी हुई गैसें यह एक तरह का द्रव पदार्थ होता है। यह भी मानव के जरिए निर्मित होता है। जिसका प्रयोग फ्रिज या ऐसे यंत्रों में होता है जो ठंडक प्रदान करने में प्रयोग किए जाते हैं।

9.4.10 ओजोन क्षरण के प्रभाव

ओजोन क्षरण के होने से बहुत प्रकार के प्रभाव देखे जाते हैं। जो आपको नीचे बताए जा रहे हैं।

- ओजोन के क्षरण होने से तापमान में लगातार बढ़ोतरी होती जा रही है।
- यह पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं को हानि पहुंचाती है।
- इससे फसलों को भी नुकसान होता है।
- ओजोन परत का क्षरण होने पर गर्मी बढ़ने से त्वचा रोग, मोतियाबिंद, कैंसर, अल्सर और भी अन्य भयंकर बिमारियों से मानव जाति शिकार हो जाएगी।

9.5 अम्लीय वर्षा क्या है? अम्लीय वर्षा के हानिकारक प्रभाव

सल्यूरिक और नाइट्रिक एसिड के यौगिकों के साथ वातावरण का प्रदूषण, जिसके बाद वर्षा होती है, कहलाती है अम्लीय बारिश। ईंधन और ऊर्जा परिसर, मोटर परिवहन, साथ ही रासायनिक और धातुकर्म संयंत्रों के उद्यमों द्वारा वातावरण में सल्फर और नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन के परिणामस्वरूप अम्लीय वर्षा होती है। अम्लीय वर्षा की संरचना का विश्लेषण करते समय, हाइड्रोजन केशन की सामग्री पर मुख्य ध्यान दिया जाता है जो इसकी अम्लता (पीएच) निर्धारित करते हैं। शुद्ध पानी के लिए, पीएच = 7, जो एक तटस्थ प्रतिक्रिया से मेल खाती है, 7 से नीचे के पीएच वाले घोल अम्लीय होते हैं, ऊपर– क्षारीय। अम्लता–क्षारीयता की पूरी श्रृंखला पीएच मानों से 0 से 14 तक आच्छादित है।

विभिन्न देशों का उद्योग सालाना 120 मिलियन टन से अधिक सल्फरडाइऑक्साइड वायुमंडल में उत्सर्जित करता है तो वायुमंडलीय नमी के साथ प्रतिक्रिया करके सल्यूरिक एसिड में बदल जाता है। एक बार वातावरण में, इन प्रदूषकों को हवा द्वारा अपने स्रोत से हजारों किलोमीटर दूर ले जाया जा सकता है और बारिश, बर्फ या कोहरे में जमीन पर वापस आ सकता है। वे झीलों, नदियों और तालाबों को 'मृत' जलाशयों में बदल देते हैं। उनमें लगभग सभी जीवित चीजों को नष्ट कर देते हैं– मछली से लेकर सूक्ष्मजीवों और वनस्पतियों तक, जंगलों को नष्ट करना, इमारतों और स्थापत्य स्मारकों को नष्ट करना। कई जानवरों और पौधे उच्च अम्लता की स्थिति में जीवित नहीं रह सकते हैं। अम्लीय वर्षा न केवल सतही जल और ऊपरी मिट्टी के क्षितिज के अम्लीकरण का कारण बनती है, बल्कि अवरोही जल प्रवाह के साथ सम्पूर्ण मृदा प्रोफाइल में फैलती है और भूजल के महत्त्वपूर्ण अम्लीकरण का कारण बनती है। कोयला, तेल, तांबा और लौह अयस्क जैसे खनिजों में सल्फर पाया जाता है जबकि उनमें से कुछ का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। अन्य को रासायनिक और धातुकर्म उद्योग में संसाधित किया जाता है।

सल्फेट्स तरल ईंधन के दहन के दौरान और तेल शोधन, सीमेंट और जिप्सम के उत्पादन और सल्यूरिक एसिड जैसी औद्योगिक प्रक्रियाओं के दौरान बनते हैं। तरल ईंधन को जलाने पर, सल्फेट्स की कुल मात्रा का लगभग 16 प्रतिशत बनता है। जबकि अम्लीय वर्षा ग्लोबल वार्मिंग और ओजोन रिक्तीकरण जैसी वैश्विक समस्याएं पैदा नहीं करती है, इसका प्रभाव स्रोत देश से बहुत आगे तक फैला हुआ है।

अम्लीय वर्षा और जलाशय

एक नियम के रूप में अधिकांश नदियों और झीलों का पीएच 6...8 है लेकिन उनके पानी में खनिज और कार्बनिक अम्लों की उच्च सामग्री के साथ, पीएच बहुत कम है। जल निकायों में अम्लीय वर्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया में कई चरण शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक में उनका पीएच घट और बढ़ सकता है। उदाहरण के लिए कनाडा में लगातार अम्लीय वर्षा के कारण 4000 से अधिक झीलों को मृत घोषित कर दिया गया है और अन्य 12,000 मृत्यु के कगार पर हैं। स्वीडन में 18 हजार झीलों का जैविक संतुलन गड़बड़ा गया है। दक्षिणी नॉर्वे की आधी झीलों में मछलियां गायब हो गई है। फाइटोप्लांटन की मृत्यु के कारण सूर्य का प्रकाश सामान्य से अधिक गहराई तक प्रवेश करता है। इसलिए अम्लीय वर्षा से मरने वाली सभी झीलें आश्चर्यजनक रूप से पारदर्शी और असामान्य रूप से नीली है।

अम्लीय वर्षा और वन

अम्लीय वर्षा वनों, बगीचों और पार्कों को बहुत नुकसान पहुंचाती है। पत्तियां झड़ जाती हैं, नई टहनियां कांच की तरह भंगुर हो जाती है और मर जाती है। पेड़ बीमारियों और कीटों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं, उनकी जड़ प्रणाली का 50 प्रतिशत तक मर जाता है। अम्लीय वर्षा न केवल मैदानी इलाकों में स्थिति जंगलों को नुकसान पहुंचाती है, स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रिया और इटली के ऊँचे पहाड़ी जंगलों में कई नुकसान दर्ज किए गए हैं।

अम्लीय वर्षा और फसल की पैदावार यात्रा

यह स्थापित किया गया है कि कृषि फसलों पर अम्लीय वर्षा का प्रभाव न केवल उनकी अम्लता और धनायनित संरचना से बल्कि अवधि और हवा के तापमान से भी निर्धारित होता है। सामान्य मामले में यह स्थापित किया गया है कि वर्षा की अम्लता पर कृषि फसलों की वृद्धि और परिपक्वता की निर्भरता पौधों के शरीर विज्ञान, सूक्ष्मजीवों के विकास और कई अन्य कारकों के बीच सम्बन्ध को इंगित करती है।

अम्लीय वर्षा और समग्री

संरचनात्मक सामग्री की एक विस्तृत श्रृंखला पर अम्लीय वर्षा का प्रभाव हर साल अधिक से अधिक स्पष्ट होता जा रहा है। इस प्रकार, एसिड वर्षा के प्रभाव में धातुओं का त्वरित क्षरण जैसा कि अमेरिका प्रेस ने उल्लेख किया है, संयुक्त राज्य में विमान और पुलों की मृत्यु की ओर जाता है। मुख्य हानिकारक तत्व हाइड्रोजन केशन, सल्फरडाइऑक्साइड, नाइट्रोजनआक्साइड, साथ ही ओजोन, फार्मलाडेहाइड और हाइड्रोजन पेरोक्साइड हैं। व्यवहार में, सामग्री के तीन समूहों पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है– धातुओं से– स्टेनलेस स्टील और जस्ती लोहा, निर्माण सामग्री से– इमारतों की बाहरी संरचनाओं के लिए सामग्री, सुरक्षात्मक से– सतह कोटिंग्स के लिए पेंट, वार्निश और पॉलिमर।

यूरोपीय संसद के अनुसार, अम्लीय वर्षा से होने वाली आर्थिक क्षति सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 4 प्रतिशत है। लंबी अवधि में एसिड रेन से निपटने के लिए रणनीति चुनते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। वतावरण में सल्फर उत्सर्जन को कम करने के लिए विशिष्ट उपाय दो दिशाओं में लागू किए गए हैं–

- सीएचपीपी में कम सल्फर वाले कोयले का उपयोग
- उत्सर्जन सफाई।

कम सल्फर वाले कोयले में सल्फर की मात्रा 1 प्रतिशत से कम होती है और उच्च सल्फर वाले कोयले में सल्फर की मात्रा 3 प्रतिशत से अधिक होती है। अम्लीय वर्षा बनने की सम्भावना को कम करने के लिए खट्टे कोयले का पूर्व उपचार किया जाता है। कोयले की संरचना में आमतौर पर पाइराइट और कार्बनिक सल्फर शामिल होते हैं। कोयला शोधन के आधुनिक बहुचरणीय तरीकों से सभी पाइराइट सल्फर का 90 प्रतिशत तक निकालना सम्भव हो जाता है अर्थात् कुल का 65 प्रतिशत तक। कार्बनिक सल्फर को हटाने के लिए वर्तमान में रासायनिक और सूक्ष्मजीवविज्ञानी उपचार के तरीके विकसित किए जा रहे हैं। इसी तरह के तरीकों को खट्टा क्रूड पर लागू किया जाना चाहिए। कम सल्फर सामग्री 1 प्रतिशत तक वाले तेल के विश्व भंडार छोटे हैं और 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हैं।

उच्च सल्फर सामग्री वाले ईंधन तेल को जलाने पर उत्सर्जन में सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा को कम करने के लिए विशेष रासायनिक योजक का उपयोग किया जाता है। ईंधन के दहन के दौरान नाइट्रोजन ऑक्साइड की मात्रा को कम करने के सबसे सरल तरीकों में से एक ऑक्सीजन की कमी की स्थिति में प्रक्रिया को अंजाम देना है जो दहन क्षेत्र में हवा की आपूर्ति की दर से सुनिश्चित होता है। जापान में प्राथमिक दहन उत्पादों के 'आटरबर्निंग' की तकनीक विकसित की गई है। इस मामले में, पहले नाइट्रोजन ऑक्साइड के निर्माण के लिए ईंधन को इष्टतम मोड़ में जलाया जाता है और फिर बिना प्रतिक्रिया वाले ईंधन को बाद के क्षेत्र में नष्ट कर दिया जाता है। इसी समय, ऑक्साइड की कमी और उनकी रिहाई के कारण होने वाली प्रतिक्रियाएं 80 प्रतिशत तक कम हो जाती है। इस समस्या को हल करने की अगली दिशा गैसीय उत्सर्जन को फैलाने की प्रथा को छोड़ना है। वातावरण के विशाल पैमाने पर निर्भर करते हुए, उन्हें बिखरा नहीं जाना चाहिए, बल्कि इसके विपरीत, कब्जा और केंद्रित किया जाना चाहिए। हाल ही में, हमारे ग्रह पर पारिस्थितिक स्थिति की सामान्य गिरावट के कारण, अम्लीय वर्षा जैसी अप्रिय पर्यावरणीय घटना अधिक से अधिक बार हो गई है। विभिन्न प्रदूषणों के साथ ऊपरी वायुमंडल में हवा और पानी की परस्पर क्रिया के कारण अम्लीय वर्षा की घटना होती है।

अम्लीय वर्षा का इतिहास

इतिहास में पहली अम्लीय वर्षा 1872 में दर्ज की गई थी। बस औद्योगिकरण के युग में, कारखानों और कारखानों के बड़े पैमाने पर निर्माण के युग में। कहने की जरूरत नहीं है कि 20वीं शताब्दी तक, यह घटना कई गुना अधिक हो गई थी और निश्चित रूप से हमें 21वीं सदी के निवासियों को विरासत में मिला था।

9.5.1 अम्लीय वर्षा के कारण

अम्लीय वर्षा के कारण क्या हैं? पारिस्थितिक विज्ञानी उन्हें मानजनित और प्राकृतिक में विभाजित करते हैं। मानव क्रिया से जुड़े अम्ल वर्षा के मानवजनित कारण, इनमें शामिल हैं–

- नाइट्रोजन और सल्फर के विभिन्न ऑक्साइड के पौधों और कारखानों से उत्सर्जन। एक बार वातावरण में, वे जल वाष्प के साथ बातचीत करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सल्यूरिक एसिड का निर्माण होता है, जो इस तरह की अम्लीय वर्षा में गिर जाता है।
- निकास गैसें, वायुमंडलीय प्रदूषण का एक अन्य स्रोत, अम्लीय वर्षा का एक अन्य कारण भी है। अम्लीय वर्षा के प्राकृतिक कारण मानव गतिविधि से संबंधित नहीं है, एक नियम के रूप में, वे ज्वालामुखी विस्फोट के परिणामस्वरूप होते हैं, फिर बड़ी मात्रा में नाइट्रोजन युक्त पदार्थ भी वातावरण में प्रवेश करते हैं, जिसके साथ बातचीत करते समय नाइट्रिक एसिड बनता है, जो अम्लीय वर्षा के साथ अवक्षेपित होता है।

9.5.2 अम्लीय वर्षा की समस्या के समाधान के उपाय

अम्लीय वर्षा की पर्यावरणीय समस्या के साथ–साथ समस्या को हल करने की दिशा में मुख्य कदम हानिकारक औद्योगिक कचरे के वातावरण में उत्सर्जन को कम करना, पौधों और कारखानों में सफाई फिल्टर का उपयोगकरना है। हरे रंग के इलेक्ट्रिक वाहनों की ओर धीरे–धीरे बदलाव भी एसिड रेन की समस्या पर काबू पाने की दिशा में एक कदम होगा। पहली ऐसी टेस्ला कारें पहले से ही धीरे–धीरे लोकप्रियता हासिल कर रही हैं और हम वास्तव में विश्वास करना चाहते हैं कि भविष्य में वे सर्वव्यापी हो जाएंगे और गैसोलीन कारें इतिहास बन जाएंगी, जैसे पुरानी स्टीम ट्रेनों ने किया था।

अम्लीय वर्षा प्रगति की कीमत

वैज्ञानिकों ने लम्बे समय से अलार्म बजाया है पर्यावरण प्रदूषण अविश्वसनीय अनुपात में पहुंच गया है। जल निकायों में तरल अपशिष्ट का निर्वहन, निकास गैसों और वाष्पशील रसायनों का वातावरण में, परमाणु अवशेषों का भूमिगत होना– इन सब ने मानव जाति को पारिस्थितिक आपदा के कगार पर ला दिया है।

हम पहले ही ग्रह के पारिस्थितिकी तंत्र में बदलाव की शुरूआत देख चुके हैं। हर अब और फिर समाचारों में वे मौसम की घटनाओं की रिपोर्ट करते हैं जो एक विशेष क्षेत्र के लिए असामान्य हैं, ग्रीन पीस जानवरों की पूरी प्रजातियों के बड़े पैमाने पर गायब होने के सम्बन्ध में अलार्म बजा रहा है, अम्लीय वर्षा असामान्य नहीं, बल्कि एक नियमितता बन गई है, जो नियमित रूप में औद्योगिक शहरों में जा रही है। एक व्यक्ति को एक अस्पष्ट स्थिति का सामना करना पड़ता है। जीवन स्तर में वृद्धि पर्यावरण में गिरावट के साथ होती है, जो स्वास्थ्य की स्थिति को प्रभावित करती है। यह समस्या लंबे समय से दुनिया भर में पहचानी गई है। मानव जाति को सोचना चाहिए– क्या तकनीकी प्रगति इसके परिणामों के लाय है? इस समस्या को बेहतर ढंग से समझने के लिए, आधुनिक उद्योग की 'उपलब्धियों' में से एक पर विचार करें– अम्लीय वर्षा, जिसे हमारे समय में स्कूल में भी बताया जाता है। क्या वे वाकई इतने खतरनाक हैं?

9.5.3 अम्लीय वर्षा के परिणाम

अम्लीय वर्षा न केवल बारिश हो सकती है, बल्कि बर्फ, ओंस और यहां तक कि कोहरा भी हो सकता है। इसके चेहरे पर सामान्य वर्षा होती है, लेकिन उनका अम्ल मान सामान्य से बहुत अधिक होता है, जो पर्यावरण पर उनके नकारात्मक प्रभाव का कारण है। अम्लीय वर्षा के निर्माण का तंत्र इस प्रकार है– सल्फरऑक्साइड और सोडियम की बड़ी खुराक वाली निकास गैसें और अन्य औद्योगिक अपशिष्ट वातावरण में

प्रवेश करते हैं जहां वे पानी की बूंदों से बंधते हैं, एक कमजोर केंद्रित एसिड घोल बनाते हैं, जो वर्षा के रूप में जमीन पर गिर जाता है, जिससे प्रकृति को अपूरणीय क्षति हो रही है। अम्ल वर्षा न केवल बड़े शहरों और उद्योगों का भाग्य है जोन, जहरीले बादलों को हजारों किलोमीटर तक वायु द्रव्यमान द्वारा ले जाया जा सकता है और जंगलों और झीलों पर गिर सकता है।

9.5.4 अम्लीय वर्षा से कैसे निपटें

अम्लीय वर्षा के परिणाम न केवल पर्यावरण के लिए, बल्कि अर्थव्यवस्था के लिए भी हानिकारक हैं और यह बात सभी जानते हैं, तो स्थिति में सुधार के लिए निर्णायक कदम क्यों नहीं उठाए जा रहे हैं? वातावरण में उत्सर्जन को कम करने के लिए, अरबों डॉलर के निवेश की आवश्यकता हैः उत्पादन तकनीक का आधुनिकीकरण करना आवश्यक है; ऑटोमोबाइल निकास के लिए अधिक आधुनिक प्रकार के ईंधन पर स्विच करना आवश्यक है। परिणाम तभी मूर्त होगा जब इस समस्या के समाधान में पूरा विश्व समुदाय शामिल होगा। दुर्भाग्य से, समृद्धि और सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि की खोज में, कई देशों की सरकारें पर्यावरण की रक्षा की समस्या पर उचित ध्यान नहीं देती है।

अम्लीय वर्षा पहली बार पश्चित यूरोप में विशेष रूप से स्कैंडिनेविया और उत्तरी अमेरिका में 1950 के दशक में दर्ज की गई थी। अब यह समस्या पूरे औद्योगिक जगत में मौजूद है और अल्फर और नाइट्रोजन ऑक्साइड के बढ़ते तकनीकी उत्सर्जन के सम्बन्ध में विशेष महत्त्व प्राप्त कर लिया है। कुछ दशकों के भीतर, इस आपदा का पैमाना इतना व्यापक हो गया और नकारात्मक परिणाम इतने महान् थे कि 1982 में स्टॉकहोम में एसिड रेन पर एक विशेष अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें 20 देशों के प्रतिनिधियों और कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधियों ने भाग लिया। हाल के वर्षों में एशिया, लैटिन, अमेरिका और अफ्रीका के औद्योगिक क्षेत्रों में अम्लीय वर्षा देखी गई है। उदाहरण के लिए पूर्वी ट्रांसवाल में, जहां देश की बिजली का 4/5 प्रति 1 वर्गमीटर बिजली उत्पन्न होती है। किमी अम्लीय वर्षा के रूप में प्रति वर्ष लगभग 60 टन सल्फर गिरता है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में जहां उद्योग व्यावहारिक रूप से अविकसित है, बायोमास के जलने के कारण वातावरण में नाइट्रोजन ऑक्साइड की रिहाई के कारण अम्ल वर्षा होती है।

अदला–बदली एसिड बनाने और अन्य वायु प्रदूषक उत्सर्जन पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका से सभी देशों के लिए विशिष्ट हैं। ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस अपने पड़ोसियों से प्राप्त होने वाले सल्फर से अधिक ऑक्सीकृत सल्फर भेजते हैं। नॉर्वे, स्वीडन, फिनलैंड अपने पड़ोसियों से अधिक ऑक्सीकृत सल्फर प्राप्त करते हैं, जितना कि वे अपनी सीमाओं के माध्यम से छोड़ते हैं। एसिड रेन का ट्रांसबाउंड्री ट्रासपोर्ट अमेरिका और कनाडा के बीच संघर्ष के कारणों में से एक है।

9.5.5 अम्लीय वर्षा पर परिचर्चा

शब्द 'अम्लीय वर्षा' सभी प्रकार की मौसम सम्बन्धी वर्षा को संदर्भित करता है– बारिश, बर्फ, ओला, कोहरा, ओलावृष्टि– जिसका पीएच वर्षा जल के औसत पीएच से कम है। मानव गतिविधि के दौरान जारी सल्फरडाइऑक्साइड (SO_2) और नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_x) पृथ्वी के वायुमंडल में एसिड बनाने वाले कणों में बदल जाते हैं। ये कण वायुमंडलीय पानी के साथ प्रतिक्रिया करते हैं, इसे एसिड के घोल में बदल देते हैं, जिससे वर्षा जल का पीएच कम हो जाता है। 'अम्लीय वर्षा' शब्द पहली बार 1972 में अंग्रेजी खोजकर्ता एंगस स्मिथ द्वारा पेश किया गया था। उनका ध्यान मैनचेस्टर में विक्टोरियन स्मॉग की ओर खींच गया और यद्यपि उस समय के वैज्ञानिकों ने अम्लीय वर्षा के अस्तित्व के सिद्धान्त को खारिज कर गया था।

सामान्य वर्षा जल भी थोड़ा अम्लीय विलयन होता है। यह इस तथ्य के कारण है कि वातावरण में प्राकृतिक पदार्थ, जैसे कार्बनडाइऑक्साइड (CO2), वर्षा जल के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। यह कमजोर कार्बोनिक एसिड (CO2 + H2O = H2CO3) पैदा करता है। जबकि आदर्श रूप से वर्षा जल का पीएच 5. 6–5.7 है, वास्तविक जीवन में एक क्षेत्र में वर्षा जल की अम्लता दूसरे क्षेत्र में वर्षा जल की अम्लता से भिन्न हो सकती है। यह मुख्य रूप से एक विशेष क्षेत्र के वातावरण में निहित गैसों की संरचना पर निर्भर करता है, जैसे सल्फर ऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड। अम्ल अवक्षेपण का रासायनिक विश्लेषण सल्यूरिक (H2SO4) और नाइट्रिक (HNO3) अम्लों की उपस्थिति दर्शाता है। इन सूत्रों में सल्फर और नाइट्रोजन की उपस्थिति इंगित करती है कि समस्या इन तत्त्वों के वातारण में मुक्त होने से सम्बन्धित है। जब ईंधन जलाया जाता है, तो सल्फर डाइऑक्साइड हवा में प्रवेश करती है वायुमंडलीय नाईट्रोजन भी वायुमंडलीय ऑक्सीजन के साथ प्रतिक्रिया करती है और नाइट्रोजन ऑक्साइड बनते हैं।

आधुनिक विशेष रूप से शहरी जीवन में एसिड वाक्यांश आम हो गए हैं। गर्मियों के निवासी अक्सर शिकायत करते हैं कि इस तरह की अप्रिय वर्षा के बाद, पौधे मुरझाने लगते हैं और पोखर में एक सफेद या पीले रंग की कोटिंग दिखाई देती है।

कारण – अम्लीय वर्षा बार–बार होती है। कारण औद्योगिक सुविधाओं से जहरीले उत्सर्जन, कार निकास गैसों और बहुत कम हद तक– प्राकृतिक तत्त्वों के क्षय में निहित हैं। वातावरण सल्फर और नाइट्रिक ऑक्साइड, हाइड्रोजन क्लोराइड और अन्य यौगिकों से भरा होता है जो एसिड बनाते हैं। परिणाम अम्लीय वर्षा है। वर्षा और क्षारीय सामग्री हैं। इनमें कैल्शियम या अमोनिया आयन होते हैं। अम्लीय वर्षा की आवधारणा भी उन पर फिर बैठती है। यह इस तथ्य से समझाया गया है कि किसी जलाशय या मिट्टी में मिलने से, इस तरह की वर्षा जल–क्षारीय संतुलन में परिवर्तन को प्रभावित करती है।

अम्ल वर्षा का कारण क्या है?

बेशक, आसपास की प्रकृति का ऑक्सीकरण कुछ भी अच्छा नहीं करता है। अम्लीय वर्षा अत्यंत हानिकारक होती है। इस तरह की वर्षा के गिरने के बाद वनस्पतियों की मृत्यु का कारण यह है कि कई उपयोगी तत्त्व एसिड द्वारा पृथ्वी से रिसते हैं, इसके अलावा, खतरनाक धातुओं द्वारा प्रदूषण भी देखा जाता है– एल्यूमीनियम, सीसा और अन्य। प्रदूषित तलछट जल निकायों में उत्परिवर्तन और मछलियों की मृत्यु, नदियों और झीलों में वनस्पति के अनुचित विकास का कारण बनते हैं। उनका सामान्य वातावरण पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है– वे प्राकृतिक सामना करने वाली सामग्रियों के विनाश में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं और धातु संरचनाओं के त्वरित क्षरण का कारण बनते हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधान

प्रकृति के रासायनिक प्रदूषक की योजना पर अधिक विस्तार से ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है। अम्लीय वर्षा कई पर्यावरणीय गड़बड़ी का कारण है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वर्षा की ऐसी विशेषता दिखाई दी, जब एक ब्रिटिश रसायनज्ञ आर. स्मिथ ने वाष्प और धुएं में खतरनाक पदार्थों की सामग्री की पहचान की जो वर्षा की रासायनिक तस्वीर को बहुत बदल देते हैं। इसके अलावा, अम्लीय वर्षा एक ऐसी घटना है जो प्रदूषक के स्रोत की परवाह किए विशाल क्षेत्रों में फैलती है। वैज्ञानिक ने उस विनाश को भी नोट किया जो दूषित तलछट में शामिल थाः पौधों की बीमारियां, ऊतकों में रंग का नुकसान, जंग का त्वरित प्रसार और अन्य।

प्रकृति पर

झीलें मर रही हैं मछलियों की संख्या कम हो रही है, जंगल गायब हो रहे हैं– ये सब प्रकृति के ऑक्सीकरण के भयानक परिणाम है। जंगलों में मिट्टी जल निकायों के रूप में अम्लीकरण के प्रति संवेदनशील नहीं है लेकिन पौधे अम्लता में सभी परिवर्तनों को बहुत नकारात्मक रूप से देखते हैं। एक एरोसोल की तरह, हानिकारक वर्षा पत्ते और सुइयों को ढंक देती है, टिड्डी लगाती है और मिट्टी में प्रवेश करती है। वनस्पति रासायनिक जलन प्राप्त करती है, धीरे–धीरे कमजोर होती है और जीवित रहने की क्षमता खो देती है। मिट्टी अपनी उर्वरता खो देती है और बढ़ती फसलों को जहरीले यौगिकों से संतृप्त करती है।

जैविक संसाधन

जब जर्मनी में झीलों का अध्ययन किया गया तो यह पाया गया कि जलाशयों में जहां जल सूचकांक आदर्श से काफी विचलित होता है, मछली गायब हो जाती है। केवल कुछ झीलों में एकल नमूने पकड़े गए।

ऐतिहासिक विरासत

प्रतीत होता है कि अभेद्य मानव रचनाएं भी अम्लीय वर्षा से पीड़ित हैं। ग्रीस में स्थित प्राचीन एक्रोपोलिस अपनी शक्तिशाली संगमरमर की मूर्तियों की रूपरेखा के लिए दुनिया भर में जाना जाता है। युग प्राकृतिक सामग्री को नहीं छोड़ते हैं– महान् चट्टा हवाओं और बारिश से नष्ट हो जाती है, अम्लीय वर्षा का गठन इस प्रक्रिया को और सक्रिय करता है। ऐतिहासिक कृतियों को बहाल करते हुए, आधुनिक स्वामी ने धातु के जोड़ों को जंग से बचाने के लिए कोई उपाय नहीं किया। परिणाम यह होता है कि अम्ल वर्षा लोहो को ऑक्सीकृत करके मूर्तियों में बड़ी–बड़ी दरारें पैदा कर देती है, जंग के दबाव से संगमरमर में दरारें पड़ जाती हैं।

सांस्कृतिक स्मारक

संयुक्त राष्ट्र ने सांस्कृतिक विरासत स्थलों पर अम्ल वर्षा के प्रभावों पर अध्ययन शुरू किया है। उनके दौरान, पश्चिमी यूरोप के शहरों की सबसे खुबसूरत सना हुआ ग्लास खिड़कियों पर बारिश की कार्यवाही के नकारात्मक परिणाम साबित हुए। हजारों रंगीन चश्में के गुमनामी में डूबने का खतरा है। 20वीं शताब्दी तक उन्होंने अपनी ताकत और मौलिकता से लोगों को प्रसन्न किया, लेकिन पिछले दशकों में, अम्लीय वर्षा से ढले हुए, शानदार सना हुआ ग्लास चित्रों को नष्ट करने की धमकी दी। सल्फर से भरी धूल प्राचीन चमड़े और कागज की वस्तुओं को नष्ट कर देती है। प्रभाव में प्राचीन उत्पाद वायुमंडलीय घटनाओं का विरोध करने की क्षमता खो देते हैं, भंगुर हो जाते हैं और जल्द ही धूल में गिर सकते हैं।

पारिस्थितिक तबाही

अम्लीय वर्षा मानव जाति के अस्तित्व के लिए एक गंभीर समस्या है। दुर्भाग्य से आधुनिक जीवन की वास्तविकताओं के लिए औद्योगिक उत्पादन के लगातार बढ़ते विस्तार की आवश्यकता होती है जिससे जहरीले लोगों की मात्रा बढ़ जाती है। ग्रह की आबादी बढ़ रही है, जीवन स्तर बढ़ रहा है, अधिक से अधिक कारें हैं, ऊर्जा की खपत हो रही छत। इसी समय, अकेले रूसी संघ के थर्मल पावर प्लांट हर साल लाखों टन एनहाइड्राइड युक्त सल्फर से पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

अम्ल वर्षा और ओजोन छिद्र

ओजोन छिद्र कम आम नहीं हैं और अधिक गंभीर चिंता का कारण बनते हैं। इस घटना के सार की व्याख्या करते हुए, यह कहा जाना चाहिए कि यह वायुमंडलीय खोल का वास्तविक टूटना नहीं है, बल्कि ओजोन परत की मोटाई में उल्लंघन है, जो पृथ्वी से लगभग 8–15 कि.मी. दूर स्थित है और समताप मंडल में फैली हुई है। 50 कि.मी. तक। ओजोत का संचय बड़े पैमाने पर हानिकारक सौर पराबैंगनी विकिरण को अवशोषित करता है, जो ग्रह को सबसे मजबूत विकिरण से बचाता है। यही कारण है कि ओजोन छिद्र और अम्लीय वर्षा ग्रह के सामान्य जीवन के लिए खतरा है, जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

ओजोन परत की अखंडता

20वीं सदी की शुरूआत में मानव अधिकारों की सूची में क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFCs) को जोड़ा गया। उनकी विशेषता असाधारण स्थिरता, कोई गंध, अतुलनीयता, कोई जहरीला प्रभाव नहीं थी। सीएफसी को धीरे–धीरे हर जगह विभिन्न शीतलन इकाइयों, अग्निशामक यंत्रों और घरेलू एरोसोल के उत्पादन में पेश किया जाने लगा।

केवल बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अंत तक, रसायनज्ञ शेरवुड रोलैंड और मारियों मोलिना ने सुझाव दिया कि ये चमत्कारिक पदार्थ, जिन्हें अन्यथा फ्रीऑन कहा जाता है, ओजोन परत को दृढ़ता से प्रभावित करते हैं साथ ही, सीएफसी दशकों तक हवा में 'होवर' कर सकते हैं। धीरे–धीरे जमीन से उठकर, वे समताप मंडल में पहुंच जाते हैं, जहां पराबैंगनी विकिरण क्लोरीन परमाणुओं को मुक्त करते हुए फ्रीऑन यौगिकों को नष्ट कर देता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप, ओजोन सामान्य प्राकृतिक परिस्थितियों की तुलना में बहुत तेजी से ऑक्सीजन में परिवर्तित होता है। भयावह बात यह है कि सैंकड़ों हजारों ओजोन अणुओं को संशोधित करने के लिए केवल कुछ क्लोरीन परमाणुओं की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, क्लोरोफ्लोरोकार्बन को ग्रीनहाउस गैसें माना जाता है जो ग्लोबल वार्मिंग में योगदान करती हैं। निष्पक्षता में यह जोड़ा जाना चाहिए कि प्रकृति स्वयं भी ओजोन परत के विनाश में योगदान करती है। इस प्रकार ज्वालामुखी गैसों में कार्बन सहित सौ से अधिक यौगिक होते हैं। प्राकृतिक फ्रीऑन हमारे ग्रह के ध्रुवों के ऊपर ओजोन परत के सक्रिय पतलेपन में योगदान करते हैं।

क्या किया जा सकता है?

यह पता लगाना कि अम्लीय वर्षा का खतरा क्या है, अब प्रासंगिक नहीं है। अब हर राज्य के एजेंडे में, हर औद्योगिक उद्यम में, सबसे पहले आसपास की हवा की शुद्धता सुनिश्चित करने के उपाय होने चाहिए। रूस में रूसल जैसे विशाल पौधों ने हाल के वर्षों में इस मुद्दे पर बहुत जिम्मेदारी से सम्पर्क करना शुरू कर दिया है। वे आधुनिक विश्वसनीय फिल्टर और शुद्धिकरण सुविधाओं को स्थापित करने के लिए कोई खर्च नहीं छोड़ते हैं जो ऑक्साइड और भारी धातुओं को वातावरण में प्रवेश करने से रोकते हैं।

तेजी से, ऊर्जा प्राप्त करने के वैकल्पिक तरीकों का उपयोग किया जा रहा है जो खतरनाक परिणाम नहीं देते हैं। पवन और सौर ऊर्जा अब एक कल्पना नहीं है, बल्कि एक सफल अभ्यास है जो हानिकारक उत्सर्जन की मात्रा को कम करने में मदद करता है।

वन वृक्षारोपण का विस्तार, नदियों और झीलों की सफाई, कचरे का उचित प्रसंस्करण– ये सभी पर्यावरण प्रदूषण के खिलाफ लड़ाई में प्रभावी तरीके हैं।

9.6 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) जलवायु परिवर्तन के क्या–क्या कारण हैं?

2) अम्लीय वर्षा क्या है?

9.7 सारांश (Summary)

जीवन और आजीविका बचाने के लिए महामारी और जलवायु आपातकाल दोनों को संबोधित करने के लिए तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता है। पृथ्वी ग्रह का बुखार (तापमान) लगातार बढ़ रहा है। सरकारों को इसमें नागरिकों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त कदम उठाने होंगे। जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए सरकारों को सतत विकास के उपायों में निवेश करने, ग्रीन जॉब, हरित अर्थव्यवस्था के निर्माण की ओर आगे बढ़ने की जरूरत है। पृथ्वी पर जीवन को बचाए रखने, इसे स्वस्थ रखने और ग्लोबल

वार्मिंग के खतरों से निपटने के लिए सभी देशों को मिलकर ईमानदारी से काम करना होगा। कोई देश अकेले ग्लोबल वार्मिंग के खतरे से नहीं निपट सकता है। जलवायु में होने वाले बदलावों के कारण पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। शोधकर्ताओं के मुताबिक पिछले कुछ दशकों के दौरान मानवीय गतिविधियों ने इस बदलाव में तेजी लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने और धरती पर स्वस्थ वातावरण बनाए रखने के लिए धरती पर मानवीय गतिविधियों द्वारा होने वाले प्रभावां को नियंत्रित किए जाने की आवश्यकता है।

9.8 शब्दावली (Glossary)

- ग्लोबल वार्मिंग–धरती के वातावरण में तापमान के लगातार हो रहे विश्वव्यापी बढ़ोत्तरी को ग्लोबल वार्मिंग कहते हैं।
- जैविक संसाधन–वह संसाधन या पदार्थ जो जीव मंडल से प्राप्त होते हैं। जैसे जीवित चीजें और जंगल उनसे प्राप्त सामग्री। इसमें मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन जैसे कोयला, गैस, पेट्रोलियम आदि शामिल हैं।

9.9 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 9.1 देखें।

2) सन्दर्भ 9.5 देखें।

9.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

9.11 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) जलवायु परिवर्तन क्या है? इसके कारणों तथा प्रभावों का वर्णन करें।

2) ओजोन परत पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

*****

अध्याय – 10
पर्यावरण नीतियां तथा कानून
(Environmental Laws and Act)

संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.3 स्वतंत्र भारत में पर्यावरण नीतियां तथा कानून

10.3.1 जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 तथा 1977

10.3.2 वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981

10.3.3 वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम, 1972

10.3.4 वन संरक्षण अधिनियम, 1980

10.3.5 ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण कानून

10.3.6 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

10.3.7 जैव विविधता संरक्षण अधिनियम, 2002

10.3.8 राष्ट्रीय जलनीति, 2002

10.3.9 राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2004

10.3.10 वन अधिकार अधिनियम, 2006

10.3.11 देहरादून की चूना खान का मामला, 1987

10.3.12 श्रीराम गैस रसाव मामला, 1987

10.3.13 गंगा प्रदूषण मामला, 1988

10.3.14 पत्थर पीसने वालों का मामला, 1992

10.3.15 पर्यावरण जागरूकता मामला, 1994

10.3.16 दिल्ली वाहन प्रदूषण मामला, 1994

10.3.17 ताजमहल का मामला, 1997

10.3.18 दिल्ली को प्रदूषित औद्योगिक इकाइयों की बंदी तथा स्थानांतरण का आदेश 1996

10.4 स्वयं जांच प्रश्न

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 स्वयं जांच उत्तर

10.8 सन्दर्भ–ग्रन्थ

10.9 अभ्यासात्मक–प्रश्न

10.0 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में पर्यावरण संरक्षण का इतिहास बहुत पुराना है। हड़प्पा संस्कृति पर्यावरण से ओत–प्रोत थी, तो वैदिक संस्कृति पर्यावरण–संरक्षण हेतु पर्याय बनी रही। भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति ही क्या, सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना। ऊर्जा के स्रोत सूर्य को देवता माना तथा उसको 'सूर्य देवो भवः' कहकर पुकारा। भारतीय संस्कृति में जल को भी देवता माना गया है। सरिताओं को जीवन दायिनी कहा गया है। इसीलिए प्राचीन संस्कृतियां सरिताओं के किनारे उपजी और पनपी। भारतीय संस्कृति में केला, पीपल, तुलसी, बरगद, आम आदि पेड़–पौधों की पूजा की जाती रही है। मध्यकालीन एवं मुगलकालीन भारत में भी पर्यावरण प्रेम बना रहा। अंग्रेजों ने भारत में अपने आर्थिक लाभ के कारण पर्यावरण को नष्ट करने का कार्य प्रारम्भ किया। विनाशकारी दोहन नीति के कारण पारिस्थितिकीय असंतुलन भारतीय पर्यावरण में ब्रिटिश काल में ही दिखने लगा था। स्वतन्त्र भारत के लोगों में पश्चिमी प्रभाव, औद्योगीकरण तथा जनसंख्या विस्फोट के परिणामस्वरूप तृष्णा जाग गई जिसने देश में विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों को जन्म दिया।

10.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- स्वतंत्र भारत में पर्यावरण नीतियां और कानून का वर्णन।

10.2 स्वतन्त्र भारत में पर्यावरण नीतियां तथा कानून (Environmental Policies and Laws in Independent India)

भारतीय संविधान जिसे 1950 में लागू किया गया था परन्तु सीधे तौर पर पर्यावरण संरक्षण के प्रावधानों से नहीं जुड़ा था। सन् 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन ने भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर खिंचा। सरकार ने 1976 में संविधान में संशोधन कर दो महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद 48ए तथा 51ए जोड़ें। अनुच्छेद 48ए राज्य सरकार को निर्देश देता है कि वह पर्यावरण की सुरक्षा और उसमें सुधार सुनिश्चित करें तथा देश के वनों तथा वन्यजीवन की रक्षा करें। अनुच्छेद 51ए जी नागरिकों को कर्त्तव्य प्रदान करता है कि वे प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें तथा उसका संवर्धन करे और सभी जीवधारियों के प्रति दयालु रहे। स्वतंत्रता के पश्चात् बढ़ते औद्योगिकरण, शहरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण की गुणवत्ता में निरंतर कमी आती गई। पर्यावरण की गुणवत्ता की इस कमी में प्रभावी नियंत्रण व प्रदूषण के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने समय–समय पर अनेक कानून व नियम बनाए। इनमें से अधिकांश का मुख्य आधार प्रदूषण नियंत्रण व निवारण था।

10.3 पर्यावरणीय कानून व नियम (Environmental Laws and Regulations)

- जल प्रदूषण सम्बन्धी कानून
- रीवर बोडर्स एक्ट, 1956
- जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974
- जल उपकर (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1977
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
- वायु प्रदूषण सम्बन्धी कानून
- फैक्ट्रीज एक्ट, 1948
- इनलेमेबल्स सबस्टा– वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981
- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

- भूमि प्रदूषण सम्बन्धी कानून
- फैक्ट्रीज एक्ट, 1948
- इण्डस्ट्रीज (डेवलपमेंट एंड रेगुलेशन) अधिनियम, 1951
- इनसेक्टीसाइडस एक्ट, 1968
- अर्बन लैण्ड (सींलिंग एण्ड रेगयुलेशन) एक्ट, 1976
- वन तथा वन्यजीव सम्बन्धी कानून
- फोरेस्टस कंजरवेशन एक्ट, 1960
- वाइल्ड लाईफ प्रोटेक्शन एक्ट, 1972
- फोरेस्ट (कनजरवेशन) एक्ट, 1980
- वाइल्ड लाईफ (प्रोटेक्शन) एक्ट, 1995
- जैव विविधता अधिनियम, 2002

भारत में पर्यावरण सम्बन्धी उपरोक्त कानूनों का निर्माण उस समय किया गया था जब पर्यावरण प्रदूषण देश में इतना व्यापक नहीं था। अतः इनमें से अधिकांश कानून अपनी उपयोगिता खो चुके हैं परन्तु अभी भी कुछ कानून व नियम पर्यावरण संरक्षण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नलिखित हैं–

10.3.1 जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 तथा 1977

निरंतर बढ़ते जल प्रदूषण के प्रति सरकार का ध्यान 1960 के दशक में गया और वर्ष 1963 में गठित समिति ने जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण के लिए एक केन्द्रीय कानून बनाने की सिफारिश की। वर्ष 1969 में केन्द्र सरकार द्वारा एक विधेयक तैयार किया गया जिसे संसद में पेश करने से पहले इसके उद्देश्यों व कारणों को सरकार द्वारा इस प्रकार बताया गया, ''उद्योगों की वृद्धि तथा शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के फलस्वरूप हाल में वर्षा में नदी तथा दरियाओं के प्रदूषण की समस्या काफी आवश्यक व महत्त्वपूर्ण बन गयी है। अतः यह आश्वस्त किया जाना आवश्यक हो गया है कि घरेलू तथा औद्योगिक बहिस्राव उस जल में नहीं मिलने दिया जाए जो पीने के पानी के स्रोत, कृषि उपयोग तथा मत्स्य जीवन के पोषण के योग्य हो, नदी व दरियाओं का प्रदूषण भी देश की अर्थव्यवस्था को निरंतर हानि पहुँचाने का कारण बनता है।''

यह विधेयक 30 नवम्बर, 1972 को संसाद में प्रस्तुत किया गया। दोनों सदनों से पारित होकर इस विधेयक को 23 मार्च, 1974 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली जो जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 कहलाया। यह अधिनियम 26 मार्च, 1974 को पूरे देश में लागू माना गया। यह अधिनियम भारतीय पर्यावरण विधि के क्षेत्र में प्रथम व्यापक प्रयास है जिसमें प्रदूषण की विस्तृत व्याख्या की गई है। इस अधिनियम ने एक संस्थागत संरचना की स्थापना की ताकि वह जल प्रदूषण रोकने के उपाय करके स्वच्छ जल आपूर्ति सुनिश्चित कर सके। इस कानून ने एक केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापना की। इस कानून के अनुसार, कोई व्यक्ति जो जानबूझकर जहरीले अथवा प्रदूषण फैलाने वाले तत्त्वों को पानी में प्रवेश करने देता है, जो कि निर्धारित मानकों की अवहेलना करते हैं, तब वह व्यक्ति अपराधी होगा तथा उसे कानून में निर्धारित दंड दिया जाएगा। इस कानून में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अधिकारों को समुचित शक्तियां दी गई हैं ताकि वे अधिनियम के प्रावधानों को ठीक से कार्यान्वित कर सकें। इस प्रकार जल प्रदूषण को रोकने की दिशा में यह कानून सरकार द्वारा उठाया गया महत्त्वपूर्ण कदम था।

जल प्रदूषण को रोकने में जल (प्रदूषण और नियंत्रण) अधिनियम, 1977 भी एक अन्य महत्त्वपूर्ण कानून है जिसे राष्ट्रपति ने दिसम्बर, 1977 को मंजूरी प्रदान की। जहां एक ओर यह जल प्रदूषण को रोकने के लिए केन्द्र तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को व्यापक अधिकार देता है वहीं जल प्रदूषित करने पर दंड का प्रावधान भी करता है। यह अधिनियम केंद्रीय तथा राज्य प्रदूषण बोर्डों को निम्न शक्तियां प्रदान करता है–

- किसी भी औद्योगिक परिसर में प्रवेश का अधिकार
- किसी भी जल में छोड़े जाने वाले तरल कचरे के नमूने लेने का अधिकार
- औद्योगिक ईकाइयां तरल कचरा तथा सीवेज के तरीकों के लिए बोर्ड से सहमति लें, बोर्ड किसी भी औद्योगिक इकाई को बंद करने के लिए कह सकता है। वह दोषी इकाई को पानी व बिजली आपूर्ति भी रोक सकता है।

इस प्रकार जल (प्रदूषण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 तथा 1977 जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। ये न केवल विशैले, नुकसानदेह और प्रदूषण फैलाने वाले कचरे को नदियों और प्रवाहों में फैंकने पर रोक लगाने की व्याख्या करते हैं बल्कि प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को अधिकार देते हैं कि वे प्रदूषण फैलाने वालों के खिलाफ कार्यवाही करें। बोर्ड इन नियमों का उल्लंघन करने वालों व प्रदूषण फैलाने वालों के विरूद्ध मुकद्दमा भी चला सकता है। जल कर अधिनियम 1977 में यह प्रावधान भी है कि कुछ उद्योगों द्वारा उपयोग किए गए जल पर कर देय होगा। इन संसाधनों का उपयोग जल प्रदूषण को रोकने के लिए किया जाता है।

10.3.2 वायु (प्रदूषण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981

बढ़ते औद्योगिकरण के कारण पर्यावरण में निरंतर हो रहे वायु प्रदूषण तथा इसकी रोकथाम के लिए यह अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के पारित होने के पीछे जून, 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्टॉकहोम (स्वीडन) में मानव पर्यावरण सम्मेलन की भूमिका रही है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि इसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु समुचित कदम उठाना है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में वायु की गुणवत्ता और वायु प्रदूषण का नियंत्रण सम्मिलित है। यह 29 मार्च, 1981 को पारित हुआ तथा 16 मई, 1981 से लागू किया गया। इस अधिनियम में मुख्यतः मोटर–गाड़ियों और अन्य कारखानों से निकलने वाले धुएं और गंदगी का स्तर निर्धारित करने तथा उसे नियंत्रित करने का प्रावधान है। 1987 में इस अधिनियम में शोर प्रदूषण को भी शामिल किया गया। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को ही वायु प्रदूषण अधिनियम लागू करने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 19 के तहत, केंद्रीय बोर्ड को मुख्यतः राज्य बोर्डों के काम में तालमेल बैठाने के अधिकार दिए गए हैं। राज्यों के बोर्डों से परामर्श करके सम्बन्धित राज्य सरकारें किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण क्षेत्र घोषित कर सकता है और वहां स्वीकृत ईंधन के अतिरिक्त, अन्य किसी भी प्रकार के प्रदूषण फैलाने वाले ईंधन का प्रयोग ना रोक लगा सकती है। इस लेखन अधिनियम में यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति राज्य बोर्ड की पूर्व अनुमति के बिना वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में ऐसी कोई भी औद्योगिक इकाई नहीं खोल सकता, जिसका वायु प्रदूषण अनुसूचि में उल्लेख नहीं है। इस अधिनियम के अनुसार केंद्र व राज्य सरकार दोनों को वायु प्रदूषण से होने वाले प्रभावों का सामना करने के लिए निम्नलिखित शक्तियां प्रदान की गई हैं–

- राज्य के किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण क्षेत्र घोषित करना
- प्रदूषण नियंत्रित क्षेत्रों में औद्योगिक क्रियाओं को रोकना
- औद्योगिक इकाई स्थापित करने से पहले बोर्ड से अनापत्ति प्रमाण–पत्र लेना
- वायु प्रदूषकों के सैंपल इकट्ठा करना

- अधिनियम में दिए गए प्रावधानों के अनुपालन की जांच के लिए किसी भी औद्योगिक इकाई में प्रवेश का अधिकार
- अधिनियम के प्रावधनों को उलंघन करने वालों के विरूद्ध मुकदमा चलाने का अधिकार
- प्रदूषित इकाइयों को बंद करने का अधिकार

इस प्रकार वायु (प्रदूषण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 वायु प्रदूषण को रोकने का एक महत्त्वपूर्ण कानून है जो प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को न केवल औद्योगिक इकाइयों की निगरीनी की शक्ति देता है, बल्कि प्रदूषित इकाइयों को बंद करने का भी अधिकार प्रदान करता है।

10.3.3 वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम, 1972

कृषि, उद्योगों और शहरीकरण से वनों का काफी कटाव हुआ है। वनों के अधिक कटाव से अनेक वन्यजीव–जन्तुओं की कई प्रजातियां या तो लुप्त हो गई हैं या लुप्त होने के कगार पर हैं। वन्यजीवन के महत्त्व को ध्यान में रखकर व लुप्त होती प्रजातियों को बचाने के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं। सन् 1952 में भारतीय वन्य जीवन बोर्ड का गठन किया गया। इस बोर्ड के अंतर्गत वन्यजीवन पार्क और अभयारणय बनाए गए। 1972 में भारतीय वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम पारित किया गया। भारत जीव–जंतुओं और वनस्पतियों की समाप्त होने के खतरे में पड़ी पजातियों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी समझौते (1976) का सदस्य बना। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन (युनेस्को) का 'मानव और जैव मण्डल' कार्यक्रम भी भारत में चलाया गया और विलुप्त होती विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण के लिए परियोजनाएं चलाई गई। सिंह के संरक्षण के लिए 1972 में बाघ के लिए 1973 में, मगरमच्छ के लिए 1984 में तथा भूरे रंग के हिरण के लिए ऐसी परियोजनाएं चलाई गई।

वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम, 1972 में लुप्त होती प्रजातियों के संरक्षण की व्यवस्था है तथा इन जातियों के व्यापार की मनाही है। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं–

- संकटग्रस्त वन्यप्राणियों की सूची बनाना तथा उनके शिकार पर प्रतिबन्ध लगाना।
- संकटग्रस्त पौधों को संरक्षण प्रदान करना।
- राष्ट्रीय चिड़ियाघरों तथा अभयारणयों में मूलभूत सुविधाओं को बनाए रखना तथा प्रबन्ध व्यवस्था को बेहतर बनाना।
- लुप्त होती प्रजातियों को संरक्षण देना तथा उनके अवैध व्यापार को रोकना।
- चिड़ियाघरों व अभयारण्यों में वंश वृद्धि कराना।
- वन्यजीवन के लाभी को जानकारी का शिक्षा के माध्यम से प्रचार करना।
- केंद्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण का गठन करना।
- वन्यजीवन परामर्श बोर्ड का गठन, उसके कार्य तथा अधिकार सुनिश्चित करना।

वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम, 1972 को अधिक व्यावहारिक व प्रभावी बनाने के लिए इसमें वर्ष 1986 तथा 1991 में संशोधन किए गए।

10.3.4 वन संरक्षण अधिनियम, 1980

भारत सरकार ने वनों के संरक्षण तथा वनों के विकास के लिए वन संरक्षण अधिनियम, 1980 पारित किया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वनों का विनाश और वन भूमि को गैर–वानिकी कार्यों में उपयोग से रोकना था। इस अधिनियम के प्रभावी होने के पश्चात् कोई भी वन भूमि केंद्रीय सरकार की अनुमति के बिना

गैर वन भूमि या किसी भी अन्य कार्य के लिए प्रयोग में नहीं लाई जा सकती तथा न ही अनारक्षित की जा सकती है। आबादी के बढ़ने तथा मानव जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों का कटना स्वाभाविक है। अतः ऐसे कार्यों की योजनाएं बनाते समय तथा वनों को काटने हेतु मार्गदर्शिकाएं तैयार की गई हैं जिससे वनों को कम से कम नुकसान हो। इन मार्गदर्शिकाओं में निम्न बिन्दुओं पर अधिक ध्यान दिया गया है–

- वन सम्बन्धी योजनाएं इस प्रकार हो ताकि वन संरक्षण को बढ़ावा मिले।
- वनों की कटाई जहां तक सम्भव हो रोका जाना चाहिए।
- पशुओं के लिए चारागाहों को ध्यान रखना चाहिए व चारे के उत्पादन हेतु विशेष प्रावधान किया जाना चाहिए।
- कुछ समय के लिए वनों की कटाई पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए ताकि इन हलाकों में पुनः पेड़–पौधे उग सकें। पहाड़ों, जल क्षेत्रों, ढलान वाली भूमियों पर वनों को पूरी तरह से संरक्षित किया जाना चाहिए।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्रीय वन नीति (1952) घोषित की गई लेकिन वनों के विकास पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। 1970 के दौरान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण के प्रति चेतना की जागृति का विकास होने से वन संरक्षण को भी बल मिला। वन संरक्षण अधिनियम, 1980 का इस दिशा में विशेष योगदान रहा। सन् 1951 से 1980 के बीच वन भूमियों का अपरदन 1.5 लाख हैक्टेयर प्रति वर्ष था जबकि इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् भूमि का अपरदन 55 हजार हेक्टेयर रह गया है। इस अधिनियम को अधिक प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करने के लिए इसमें वर्ष 1988 में संशोधन किया गया।

10.3.5 ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण कानून

भारत के ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिए पृथक अधिनियम का प्रावधान नहीं है। भारत में ध्वनि प्रदूषण को वायु प्रदूषण में ही शामिल किया गया है। वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 में सन् 1987 में संशोधन करते हुए इसमें ध्वनि प्रदूषकों को भी वायु प्रदूषकों की परिभाषा के अंतर्गत शामिल किया गया है। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 6 के अधिन भी ध्वनि प्रदूषकों सहित वायु तथा जल प्रदूषकों की अधिकता को रोकने के लिए कानून बनाने का प्रावधान है। इसका प्रयोग करते हुए ध्वनि प्रदूषण (विनियमन एवं नियंत्रण) अधिनियम, 2000 पारित किया गया है। इसके तहत विभिन्न क्षेत्रों के लिए ध्वनि के सम्बन्ध में वायु गुणवत्ता मानक निर्धारित किए गए हैं। विद्यमान राष्ट्रीय कानूनों के अंतर्गत भी ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण का प्रावधान है। ध्वनि प्रदूषकों को आपराधिक श्रेणी में मानते हुए इसके नियंत्रण के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 268 तथा 290 का प्रयोग किया जा सकता है। पुलिस अधिनियिम, 1861 के अंतर्गत पुलिस अधीक्षक को अधिकृत किया गया है कि वह त्यौहारों और उत्सवों पर गालियों में संगीत नियंत्रित कर सकता है।

10.3.6 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

संयुक्त राष्ट्र का प्रथम मानव पर्यावरण सम्मेलन 5 जून, 1972 में स्टॉकहोम में सम्पन्न हुआ। इसी से प्रभावित होकर भारत ने पर्यावरण के संरक्षण लिए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 पास किया। यह एक विशाल अधिनियम है जो पर्यावरण के समस्त विषयों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वातावरण में घातक रसायनों की अधिकता को नियंत्रित करना व पारिस्थितिकी तंत्र को प्रदूषण मुक्त रखने का प्रयत्न करना है। इस अधिनियम में 26 धाराएं हैं जिन्हें 4 अध्यायों में बांटा गया है। यह कानून पूरे देश में 19 नवम्बर, 1986 से लागू किया गया। अधिनियम की पृष्ठभूमि व उद्देश्यों के अंतर्गत शामिल बिन्दुओं के आधार पर सारांश में अधिनियम के निम्न उद्देश्य हैं–

- पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार करना
- मानव पर्यावरण के स्टॉकहोम सम्मेलन के नियमों को कार्यान्वित करना
- मानव, प्राणियों, जीवों, पादकों को संकट से बचाना
- पर्यावरण संरक्षण हेतु सामान्य एवं व्यापक विधि निर्मित करना
- विद्यमान कानूनों के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण प्राधिकरणों का गठन करना तथा उनके क्रियाकलापों के बीच समन्वय करना

मानवीय पर्यावरण सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था करना। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 एक व्यापक कानून है। इसके द्वारा केन्द्र सरकार के पास ऐसी शक्तियां आ गई हैं जिनके द्वारा वह पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण व सुधार हेतु उचित कदम उठा सकती है। इसके अंतर्गत केंद्रीय सरकार को पर्यावरण गुणवत्ता मानक निर्धारित करने, औद्योगिक क्षेत्रों को प्रतिबंध करने, दुर्घटना से बचने के लिए सुरक्षात्मक उपाय निर्धारित करने तथा हानिकारक तत्त्वों का निपटान करने, प्रदूषण के मामलों की जांच एवं शोध कार्य करने, प्रभावित क्षेत्रों का तत्काल निरीक्षण करने, प्रयोगशालाओं का निर्माण तथा जानकारी एकत्रित करने के कार्य सौंपे गए हैं। इस कानून की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पहली बार व्यक्तिगत रूप से नागरिकों को इस कानून का पालन न करने वाली फैक्ट्रियों के खिलाफ केस दर्ज करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

10.3.7 जैव विविधता संरक्षण अधिनियम, 2002

भारत विश्व में जैव विविधता के स्तर पर 12वें स्थान पर आता है। अकेले भारत में लगभग 45000 पेड़–पौधों व 81000 जानवरों की प्रजातियां पाई जाती हैं जो विश्व की लगभग 7.1 प्रतिशत वनस्पतियों तथा 6.5 प्रतिशत जानवरों की प्रजातियों में से हैं। जैव विविधता संरक्षण हेतु केन्द्र सरकार ने 2000 में एक राष्ट्रीय जैव विविधता संरक्षण क्रियानवयन योजना शुरू की जिसमें गैर सरकारी संगठनों, वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों तथा आम जनता को भी शामिल किया गया। इसी प्रक्रिया में सरकार ने जैव विविधता संरक्षण कानून 2002 पास किया जो इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

जैव विविधता कानून 2002 केन्द्रीय सरकार को निम्न दायित्व भी सौंपता है–

- उन परियोजनाओं का पर्यावरणीय प्रभाव जांचना जिनसे जैव विविधता को हानि पहुंचाने की आशंका हो।
- जैवतकनीकी से उत्पन्न प्रजातियों के जैव विविधता तथा मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों के लिए नियंत्रण तथा उपाय सुनिश्चित करना।
- स्थानीय लोगों की जैव विविधता संरक्षण की परम्परागत विधियों की रक्षा करना।
- जैव विविधता अधिनियम 2002 जैव विविधता संरक्षण सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

यह सरकार के साथ–साथ आम लोगों की भागिदारिता भी सुनिश्चित करता है। यह सरकार को नीतिगत, संस्थागत तथा वित्तीय अधिकार प्रदान करता है। साथ ही यह सरकार को जैव विविधता की परम्परागत तकनीकों का सम्मान तथा उनका संरक्षण करने का दायित्व भी सौंपता है।

10.3.8 राष्ट्रीय जलनीति, 2002

21वीं सदी में जल के महत्त्व को स्वीकारते हुए जल संसाधों के नियोजन, विकास और प्रबंधन के साथ ही इसके सदुपयोग का मार्ग प्रशस्त करने के लिए 'राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद' ने 1 अप्रैल, 2002 को राष्ट्रीय जल नीति पारित की, इसमें जल के प्रति स्पष्ट व व्यावहारिक सोच अपनाने की बात कही गई है। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित है–

- इसमें आजादी के बाद पहली बार नदियों के जल संग्रहण क्षेत्र संगठन बनाने पर आम सहमति व्यस्त की गई है।
- जल बंटवारे की प्रक्रिया में प्रथम प्राथमिकता पेयजल को दी गई है। इसके बाद सिंचाई, पनबिजली आदि को स्थान दिया गया है
- इसमें पहली बार जल संसाधनों के विकास और प्रबंध पर सरकार के साथ–साथ सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करने की बात कही गई है।
- इसमें पहली बार किसी भी जल परियोजना के निर्माण काल से लेकर परियोजना पूरी होने के बाद भी उसके मानव जीवन पर पड़ने वाले असर का मूल्यांकन करने को कहा गया है।
- जल के बेहतर उपयोग व बचत के लिए जनता में जागरूकता बढ़ाने एवं उसके उपयोग में सुधार लाने के लिए पाठयक्रम, पुरस्कार आदि के माध्यम से जल संरक्षण चेतना उत्पन्न करने की बात कही गई है।

मानव जीवन के लिए जल के अति महत्त्व को देखने हुए, पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और सभी प्रकार की आर्थिक एवं विकासशील गतिविधियों के लिए और इसकी बढ़ती कमी को ध्यान में रखते हुए इसका उचित प्रबंधन तथा न्यायसंगत उपयोग करना अनिवार्य हो गया है। राष्ट्रीय जल नीति की सफलता पूर्णतः इसमें निहित सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों पर राष्ट्रीय सर्वसम्मित तथा वचनबद्धता बनाए रखने पर निर्भर करेगी।

10.3.9 राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2004

पर्यावरण तथा वन मंत्रालय ने दिसम्बर 2004 को राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2004 का ड्राफ्ट जारी किया है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि समस्याओं को देखते हुए एक व्यापक पर्यावरण नीति की आवश्यकता है। साथ ही वर्तमान पर्यावरणीय नियमों तथा कानूनों को वर्तमान समस्याओं के सन्दर्भ में संशोधन की आवश्यकता को भी दर्शाया गया है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के निम्न मुख्य उद्देश्य रखे गए हैं–

- संकटग्रस्त पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना
- पर्यावरणीय संसाधनों पर सभी के विशेषकर गरीबों के समान अधिकारों को सुनिश्चित करना।
- संसाधनों का न्यायोचित उपयोग सुनिश्चित करना ताकि वे वर्तमान के साथ–साथ भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर सके।
- आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के निमार्ण में पर्यावरणीय सन्दर्भ को ध्यान में रखना।
- संसाधनों के प्रबंधन में खुलेपन, उत्तरदायित्व तथा भागीदारिता के मूल्यों को शामिल करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति विभिन्न संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर विभिन्न तकनीकों को अपनाकर करने का प्रावधान किया गया है। इनकी प्राप्ति के लिए सरकार, स्थानीय समुदाय तथा गैर सरकारी संगठनों की साझी भागीदारी भी सुनिश्चित की गई है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ड्राट नीति में कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत भी दिए गए हैं, जैसेः–

- प्रत्येक मानव को एक स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार है
- सतत विकास का केन्द्र बिंदु मानव है
- विकास के अधिकार की प्राप्ति पर्यावरणीय जरूरतों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए
- प्रदूषणकर्ता को पर्यावरण हानि की क्षतिपूर्ति के नियम का पालन करना
- स्थानीय संस्थाओं को पर्यावरण संरक्षण के लिए शक्तिशाली बनाना

10.3.10 वन अधिकार अधिनियम, 2006

वन अधिकार अधिनियम, 2006 वन सम्बन्धी नियमों का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जो 18 दिसम्बर, 2006 को पास हुआ। यह कानून जंगलों में रह रहे लोगों के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से जुड़ा हुआ है जिनसे औपनिवेशिक काल से ही उन्हें वंचित हुआ था। इसका उद्देश्य जहां एक ओर वन संरक्षण है वहां दूसरी ओर यह जंगलों में रहने वाले लोगों को उनके साथ सदियों तक हुए अन्याय की भरपाई का भी प्रयास है। इस कानून के मुख्य प्रावधान निम्न हैं–

– यह जंगलों में निवास करने वाले या वनों पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों की रक्षा करता है।

यह उन्हें चार प्रकार के अधिकार प्रदान करता है–

– जंगलों में रहने वाले लोगों तथा जनजातियों को उनके द्वारा उपयोग की जा रही भूमि पर उनको अधिकार प्रदान करता है
– उन्हें पशु चराने तथा जल संसाधनों के प्रयोग का अधिकार देता है
– विस्थापन की स्थिति में उनके पुर्नस्थापन का प्रावधान करता है
– जंगल प्रबंधन में स्थानीय भागिदारी सुनिश्चित करता है

जंगल में रह रहे लोगों का विस्थापन केवल वन्यजीवन संरक्षण के उद्देश्य के लिए ही किया जा सकता है। यह भी स्थानीय समुदाय की सहमति पर आधारित होना चाहिए।

वन संरक्षण अधिनियम, 2006 स्थानीय लोगों का भूमि पर अधिकार प्रदान कर वन संरक्षण को बढ़ावा देता है। यह वन भूमि पर गैर कानूनी कब्जों को रोकता है तथा वन संरक्षण के लिए स्थानीय लोगों के विस्थापना को अंतिम विकल्प मानता है। विस्थापन की स्थिति में यह लोगों का पुर्नस्थापन का अधिकार भी प्रदान करता है। पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका की भूमिका, भारत में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में न्यायपालिका द्वारा महत्त्वपूर्ण पहल की गई है। जीवन का अधिकार जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 21 में है कि सकारात्मक व्याख्या करके, न्यायपालिका ने इस अधिकार में ही 'स्वस्थ्य पर्यावरण के अधिकार' को निहित घोषित किया है। सामाजिक हित, विशेषकर पर्यावरण के संरक्षण के प्रति, न्यायपालिका की वचनबद्धता के कारण ही 'जनहित मुकद्दमों' का विकास हुआ। भारतीय न्यायपालिका ने 1980 से ही पर्यावरण–हितेषी दृष्टिकोण अपनाया है। न्यायपालिका ने विविध मामलों में निर्णय देते हुए यह स्पष्ट किया है कि गुणवतापूर्ण जीवन की यह मूल आवश्यकता है कि मानव स्वच्छ पर्यावरण में जीवन व्यतीत करे।

पर्यावरण के अधिकार को न्यायिक मान्यता देहरादून की चूने की खान के मामले (ग्रामीण मुकदमेबाजी बनाम उत्तर प्रदेश) में 1987 में दी गई तथा 1987 में ही श्रीराम गैस रिसाव के मामले (एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ) में इस बात पर पुनः बल दिया गया। न्यायपालिका ने अनेक ऐसे मामलों की सुनवाई भी की है जिनमें पर्यावरण के लक्ष्यों तथा विकास की आवश्यकताओं में तालमेल बैठाया गया। अधिकांश मामलों में न्यायपालिका का विचार रहा है कि हालांकि विकास के महत्त्व को गौण स्थान नहीं दिया जा सकता, फिर भी पर्यावरण की कीमत पर विकास को तवज्जों नहीं दी जा सकती, भले ही इस प्रक्रिया में अल्पकालीन हानि हो जैसे कुछ नौकरियों या राजस्व ही हानि आदि। पर्यावरण संरक्षण पर न्यायपालिका के कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय निम्नलिखित है–

10.3.11 देहरादून की चूना खान का मामला, 1987

इस मामले का सम्बन्ध दून घाटी में चूने की खानों द्वारा पर्यावरण को हो रहे गम्भीर खतरे से था। सर्वोच्च न्यायलय ने आदेश दिया कि उन सभी खानों में कार्य बंद कर दिया जाए जहां वे खतरनाक स्थिति में थी, फिर चाहे ऐसा करने से खान मालिकों और खानकर्मियों को आर्थिक हानि ही क्यों न हो। ऐसा करना जनसाधारण को स्वस्थ पर्यावरण में रहने के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक था चाहे इसके लिए कोई भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।

10.3.12 श्रीराम गैस रिसाव मामला, 1987

श्रीराम गैस रिसाव मामले में न्यायालय ने आदेश दिया कि उस जोखिम भरे कारखाने को तुरंत बंद किया जाए जिसमें गैस रिसाव के कारण एक कर्मी की मौत हो गई तथा अन्य लोगों का जीवन संकट में पड़ा। न्यायालय ने कहा कि राज्य के पास अधिकार है कि जोखिम भरी औद्योगिक गतिविधियों पर रोक लगा सके, ताकि जनसाधारण के स्वच्छ पर्यावरण में रहने के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सके। इस मामले में न्यायालय ने पूर्ण दायित्व के सिद्धांत का विकास किया ताकि अनुच्छेद 21 की व्याख्या के अनुसार मुआवजा दिया जा सके। इसके अतिरिक्त, न्यायलय ने यह भी कहा कि जीवन के अधिकार में प्रदूषण के जोखिम से पीड़ित व्यक्तियों को मुआवजा मांगने का अधिकार भी निहित है।

10.3.13 गंगा प्रदूषण मामला, 1988

गंगा प्रदूषण मामले में सर्वोच्च न्यायलय ने अनेक चमड़े के उद्योगों को जो गंगा के तट पर प्रदूषण फैला रहे थे। यह आदेश दिया कि वे या तो प्रदूषण नियंत्रण संयंत्र स्थापित करें या फिर अपने कारखाने बंद कर दें। न्यायलय ने गंगा के किनारे स्थित लगभग 5000 उद्यमों को आदेश दिया कि वे बहने वाले मल को स्वच्छ करने वाले संयंत्र लगाएं तथा प्रदूषण को रोकने वाले उपक्रमों की व्यवस्था भी करें।

10.3.14 पत्थर पीसने वालों का मामला, 1992

इस केस में सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली में पत्थर पीसने वाली इकाइयों को बताया है।

10.3.15 पर्यावरण जागरूकता मामला, 1992

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने देश में पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता का प्रसार करने के निर्देश दिए। इन उपायों में स्कूलों में कक्षा एक से बाहरवीं तक पर्यावरण को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था, विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में पर्यावरण शिक्षा का प्रावधान, सिनेमाघरों में पर्यावरण विषय पर संदशों का प्रसार–प्रचार तथा दूरदर्शन एवं रेडियों पर पर्यावरण कार्यक्रमों के प्रसारण शामिल हैं।

10.3.16 दिल्ली वाहन प्रदूषण मामला, 1994

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दूरगामी निर्देश देकर केन्द्र सरकार से कहा है कि वह वाहनों द्वारा फैलाए जाने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए प्रभावी उपाय करें। इन उपायों में शामिल थे सीसा–मुक्त पर्यावरण–हितैषी पैट्रोल का प्रावधान सार्वजनिक परिवहन के वाहनों के अनिवार्य रूप से सी.एन.जी. ईंधन पर चलाया जाना और दिल्ली की सड़कों पर 15 वर्ष से अधिक पुराने वाहनों के चलाने पर प्रतिबंध।

10.3.17 ताजमहल का मामला, 1997

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि ताजमहल के आस–पास 10,400 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में किसी कोयला आधारित उद्योग की अनुमति नहीं होगी। प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों से कहा गया कि वे या जो स्वच्छ ईधन का प्रयोग करें या फिर सुरक्षित क्षेत्र से बाहर अपने कारखाने हस्तांतरित करें। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार को निर्देश दिया गया कि ताजमहल के आस–पास हरित पट्टी की व्यवस्था करें और बिना रूकावट के बिजली की आपूर्ति की जाए ताकि डीजल से चलाए जाने वाले जनरेटरों की आवश्यकता न पड़े।

10.3.18 दिल्ली की प्रदूषित औद्योगिक इकाईयों की बंदी तथा स्थानांतरण का आदेश, 1996

यह केस एम.सी. मेहता की एक याचिका से 1985 में शुरू हुआ जिसमें कहा गया था कि दिल्ली में 1 लाख से अधिक औद्योगिक इकाइयां वातावरण को प्रदूषित कर रही है जो नागरिकों के स्वास्थ्य को गंभीर खतरा पहुंचा रहे हैं सर्वोच्च न्यायालय ने याचिका की सुनवाई करते हुए 8 जुलाई, 1996 को अपना निर्णय सुनाते हुए औद्योगिक ईकाइयों को दिल्ली के पर्यावरण के साथ–साथ आम नागरिकों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक ठहराते हुए 168 बड़ी प्रदूषणकारी इकाइयों को दिल्ली से स्थानांतरित या बंद करने का आदेश दिया।

उपरोक्त मामलों के अलावा जिन अन्य विषयों पर जनहित याचिकाओं के द्वारा न्यायपालिका ने निर्णय किए उनमें शामिल हैं: नगरों के ठोस मलबे का प्रबंधन, दिल्ली के भूमिगत पानी में होती कमी, कोलकत्ता में हुगली नदी के साथ स्थापित प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को बंद करने, पशुओं के प्रति दया, जनजातीय लोगों तथा मछुआरों के विशेषाधिकार, हिमालय तथा वनों की पारिस्थितिकी व्यवस्था, पारिस्थितिकी पर्यटन, भूमि के प्रयोग के प्रतिमान तथा विकास योजनाएं इत्यादि।

पर्यावरण संरक्षण की प्रक्रिया में न्यायालय द्वारा दिए गए कुछ महत्त्वपूर्ण मौलिक नियम निम्नलिखित है–

1. प्रत्येक नागरिक को स्वच्छ पर्यावरण में जीने का मौलिक अधिकार है जो संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए गए जीवन जीने के अधिकार में निहित है।
2. सरकारी एजेंसियां पर्यावरणीय कानूनों के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा न करने के लिए वित्तिय या कर्मचारियों की कमी का बहाना नहीं दे सकती।
3. प्रदूषणकर्ता द्वारा आदयगी का सिद्धान्त पर्यावरणीय कानून का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है जिसका तात्पर्य है कि प्रदूषणकर्ता न केवल पर्यावरण की क्षतिपूर्ति के लिए बल्कि प्रदूषण से प्रभावित लोगों को हुई हानि की भी भरपाई करेगा।
4. पूर्ण दायित्व के नियम के अनुसार यदि कोई उद्योग किसी ऐसे खतरनाक व्यवसाय में रत है जिससे लोगों के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा को खतरा है तब उसका यह पूर्ण दायित्व बन जाता है कि यह सुनिश्चित करें कि उस कार्य से किसी को किसी प्रकार का संकट न हो। यदि उस कार्य से किसी को हानि पहुंचती है तो वह उद्योग उस हानि की पूर्ति के लिए पूर्णतया उत्तरदायी होगा।
5. पूर्व सर्तकता या पूर्व चेतावनी सिद्धांत के अनुसार सरकारी अधिकारियों का यह कर्त्तव्य है कि वे पर्यावरणीय प्रदूषण के कारणों की पूर्व कल्पना करें उनसे पर्यावरण की सुरक्षा करें। यह सिद्धान्त उद्योगपतियों पर यह उत्तरदायित्व डालता है कि वे स्पष्ट करें कि उनके कार्य पर्यावरणीय दृष्टिकोण से हानिकारक नहीं हैं। आर्थिक गतिविधियां लोगों के स्वास्थ्य तथा जीवन की कीमत पर नहीं चल सकती। पर्यावरणीय और मानव स्वास्थ्य से किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया जा सकता।

1980 तथा 1990 के दशकों में भारत में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में जनहित याचिकाओं का आधिकाधिक प्रयोग हुआ। इस प्रक्रिया में पर्यावरण–समर्थन वकिलों जैसे एम.सी.मेहता तथा न्यायाधीशों कुलदीप सिंह तथा कृष्णा अययर का विशेष योगदान रहा। पर्यावरण सुरक्षित रखने के कार्य में सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के आरंभिक क्षेत्राधिकार के संविधान के अनुच्छेद 32 और 326 को आधार बनाकर महत्त्वपूर्ण उपाय किए गए। इसके अतिरिक्त न्यायालयों ने स्वास्थ्य और स्वच्छ पर्यावरण के मूल अधिकार के क्षेत्र का भी विस्तार किया है।

10.4 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) राष्ट्रीय जलनीति क्या है?

2) ध्वनि प्रदूषण नियम कब बना है?

10.5 सारांश (Summary)

भारत संसार के उन थोड़े से देशों में से एक है जिनके संविधानों में पर्यावरण का विशेष उल्लेख है। भारत में पर्यावरणीय कानूनों का व्यापक निर्माण किया है तथा हमारी नीतियां पर्यावरण संरक्षण में भारत की पहल दर्शाती है। पर्यावरण सम्बन्धी विधेयक होने पर भी भारत में पर्यावरण की स्थिति काफी गंभीर बनी हुई है। नाले, नदियां तथा झीलों औद्योगिक कचरे से भरी हुई हैं। दिल्ली में यमुना नदी एक नाला बनकर रह गई है। वन क्षेत्र में कटाव लगातार बढ़ता जा रहा है जिसके परिणाम हमें हाल ही में बिहार में आई भीषण बाढ़ के रूप में स्पष्ट देखने को मिलता है। भारत में जिस प्रकार से पर्यावरण कानूनों को लागू किया जा रहा है उसे देखते हुए लगता है कि इन कानूनों के महत्त्व को समझा ही नहीं गया है। इस दिशा में पर्यावरण नीति, 2004 को गंभीरता से लागू करने की आवश्यकता है। पर्यावरण को सुरक्षित करने के प्रयासों में आम जनता की भागीदारी भी सुनिश्चित करने की जरूरत है।

पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका ने भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके प्रयासों से स्वच्छ पर्यावरण मौलिक अधिकार का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। दिल्ली में प्रदूषित इकाइयों की बंदी तथा स्थानांतरण, सी.एन.जी. का प्रयोग, ताजमहल को प्रदूषण से बचाना, पर्यावरण को शैषणिक पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाना तथा संचार माध्यमों के द्वारा पर्यावरण के महत्त्व का प्रचार–प्रसार आदि न्यायपालिका के सराहनीय प्रयासों की एक झलक है। जनहित याचिकाओं ने पर्यावरण संरक्षण की दिशा में गैर–सरकारी संगठनों, नागरिक समाज तथा आम आदमी की भागीदारों को प्रात्साहित किया है। यह इसके प्रयासों का ही फल है कि आज सरकार तथा नीति निर्माताओं की सूची में पर्यावरण प्रथम मुद्दा है तथा वे पर्यावरण संरक्षण के प्रति गंभीर हो गए हैं।

10.6 शब्दावली (Glossary)

- संरक्षण –रक्षा करने की क्रिया या भाव।
- अभ्यारण्य–ऐसा अरण्य या वन जहां जानवर बिना किसी भय के रहते हैं।

10.7 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 3.8 देखें।

2) सन्दर्भ 3.5 देखें।

10.8 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001

7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

10.9 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम क्या है? विस्तार में चर्चा करें।

2) वायु (प्रदूषण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

*****

अध्याय – 11
मानवीय जनसंख्या वृद्धि
(Human Population Growth)

संरचना

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 जनसंख्या वृद्धि

11.2.1 जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा देने वाले कारक

11.2.2 जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर पड़ता प्रभाव

11.3 मानव स्वास्थ्य और कल्याण

11.3.1 स्वास्थ्य के आयाम

11.3.2 स्वास्थ्य सम्बन्धी नीतियां

11.4 परियोजना प्रभावित व्यक्ति का पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना

11.4.1 राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति

11.5 केस अध्ययन

11.6 स्वयं जांच प्रश्न

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 स्वयं जांच उत्तर

11.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ

11.11 अभ्यासात्मक–प्रश्न

11.0 प्रस्तावना (Introduction)

किसी स्थान की जनसंख्या का निर्धारण जन्म, मृत्यु तथा आप्रवासन से होता है। जनसंख्या वृद्धि को कई तरह से व्यक्त किया जाता है। इसको व्यक्त करना सबसे आसान है। प्राकृतिक वृद्धि जो जन्म दर और मृत्यु दर के बीच अंतर होता है। वास्तविक वृद्धि में आप्रवासन को सम्मिलित किया जाता है। जनसंख्या वृद्धि किसी भी क्षेत्र में लोगों की संख्या बढ़ने को कहा जाता है। 18वीं सदी के दौरान जब औद्योगिक क्रान्ति शुरू हुई तो पश्चिमी देशी में बहुत ही तेजी से जनसंख्या वृद्धि शुरू हो गई थी। जन्म दर में लगातार वृद्धि हो रही है जिसके परिणामस्वरूप संसाधनों की कमी है क्योंकि मांग में वृद्धि हुई है। जनसंख्या किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या की गिनती है। अधिक जनसंख्या अशिक्षा, परिवार, नियोजन के अनुचित ज्ञान, विभिन्न स्थानों से प्रवास जैसे कई कारकों के कारण हो सकते हैं।

11.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर पड़ते प्रभाव की विस्तृत चर्चा करेंगे।

- स्वास्थ्य सम्बन्धी नितियों का पता चलेगा।
- राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति की चर्चा करेंगे।

11.2 जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

साधारण शब्दों में कहें तो जब किसी देश की जनसंख्या की मृत्यु दर में कमी होती है तो इन सबके संयुक्त प्रभाव के कारण जनसंख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होती है जिसे जनसंख्या विस्फोट भी कहा जाता है। स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि तथा महामारियों की रोकथाम, उन्नत साधनों की खोज और उनके प्रयोग में मृत्यु दर में भारी गिरावट देखी गयी है। यद्यपि कि जनसंख्या वृद्धि का यह पक्ष मुख्यतः जन्म व मृत्यु दर से सम्बन्धित है।

11.2.1 जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा देने वाले कारक

जनसंख्या की अतिशय वृद्धि में बहुत सारे कारक अपना योगदान करते हैं। ये कारण नीचे सूचीबद्ध किए गए हैं–

1. कृषि सम्बन्धी उन्नत पद्धतियों के कारण खाद्य पदार्थों के उत्पादन को बढ़ाने में मदद मिली, इस कारण पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध हुआ।
2. चिकित्सा के क्षेत्र में प्रगति होने से चोटों और महामारियों के कारण होने वाली मृत्यु की रोकथाम हो गयी है।
3. जब से हृदय, फेफड़ों, वृक्क की विकृतियों के साथ–साथ अन्य रोगों की पहचान हो जाने और आधुनिक चिकित्सा तकनीकों से इलाज हो जाने के कारण मनुष्य का औसत आयुकाल बढ़ गया है।

11.2.2 जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर पड़ता प्रभाव

बढ़ती जनसंख्या के लिए स्थान, आश्रय और उपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता के कारण पर्यावरण पर एक अत्यधिक दबाव पड़ता है। इन सभी वस्तुओं को उपलब्ध कराने के लिए नाटकीय तरीके से भूमि का प्रयोग बदल गया है। यह पहले से ही ज्ञात है कि अनाज और फल वाली फसलों को उगाने के लिए जंगलों/वनों की कटाई की जाती रही है।

1. अत्यधिक मात्रा में खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए वनों का काटना

वन और प्राकृतिक चारागाह (घास के मैदान) को कृषि योग्य भूमि में बदल दिया गया है। आर्द्र भूमि को खाली और मरुभूमि को सींचा गया है। इन परिवर्तनों के कारण अत्यधिक मात्रा में खाद्यान्न और अत्यधिक मात्रा में कच्चे माल का उत्पादन हुआ। लेकिन ऐसा करने के कारण प्राकृतिक संसाधन समाप्त हो गए और प्राकृति सुन्दरता में एक भयावह बदलाव आ गया है। उदाहरण के लिए जंगलों को काटकर बहुत बड़े क्षेत्र में कृषि योग्य फसलों को उगाया जा रहा है। बहुत से मैंग्रोव वन अपरदन को कम करने और तट रेखा को स्थायीत्व प्रदान करने के लिए जाने जाते थे, उन्हें काटकर खाद्य फसलें उगाकर बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता को पूरी करने की कोशिश की जा रही है।

2. जल की कमी

जल हमें वर्षा के रूप में मिलता है, नदियों, झीलों और अन्य जल स्रोतों में बहता है। इस जल का कुछ भाग जमीन सोख लेती है जो भूमिगत जल तक पहुंच जाता है। मिट्टी की एक निश्चित गहराई तक मृदा के कणों के मध्य सभी स्थानों में जल भरा होता है। इस गहराई को जल तालिका कहते हैं। जल तालिका स्थायी हो सकती है। यदि भूमिगत जल से निकले जल की पुनःपूर्ति वर्षा जल के अवशोषण द्वारा की जाये। लेकिन

यदि जल भराव की दर जल निकासी की दर से कम हो तो परिणामतः कुएं सूख जायेंगे। बहुत से क्षेत्रों में पानी के अत्यधिक निकास के कारण भूमिगत जल संसाधन में कमी हो जाने के कारण पानी की मात्रा में अत्यन्त कमी हो गयी है।

3. मानव बस्तियों की आवश्यकता

अधिकांशतः भूमि का उपयोग खाद्य पदार्थ उगाने के अलावा एक बड़ी जनसंख्या का अर्थ उनके लिए बड़ी संख्या में आश्रय प्रदान करने का होना है। इतने लोगों के लिए घर बनाने के लिए पत्थर और अन्य भवन निर्माण सामग्रियों की आवश्यकता पूर्ति के लिए बहुत सारी चट्टानों को खोदकर निकालना पड़ेगा, उन्हें तोड़ना पड़ेगा और इस काम के लिए भी बहुत सारा जल का प्रयोग करना पड़ेगा।

4. परिवहन की आवश्यकता

बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ती हुई जरूरतों की पूर्ति के लिए परिवहन के एक विस्तृत नेटवर्क की आवश्यकता होती है। परिवहन के विभिन्न साधन विकसित किए गए हैं जिससे जीवाश्म ईंधनों जैसे कोयला, गैस और पट्रोलियम पदार्थों का उपयोग बढ़ता जा रहा है और वायुमंडल प्रदूषित हो रहा है।

5. विभिन्न प्रकार की उपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता

प्रतिदिन के उपयोग में आने वाली वस्तुएं जैसे प्लास्टिक के बर्तन, बाल्टी इत्यादि; कृषि–उपकरण, मशीनरी, रसायन, कॉस्मेटिक्स इत्यादि फैक्टरियों में बनाए जाते हैं। इन उद्योगों को चलाने और इन उत्पादों को बनाने के लिए कच्चे माल, जीवाश्म ईंधन और पानी की आवश्यकता होती है जिसके कारण इनके समाप्त होने के खतरे बढ़ते जाते हैं। तीव्र गति से होने वाले औद्योगिकीकरण से निकलने वाले औद्योगिक बहिःस्रावों से नदियों और दूसरे जल स्रोतों का प्रदूषण बढ़ा है। तीव्रता से होते हुए औद्योगिकरण के कारण पर्यावरण पर बहुत अधिक दुष्प्रभाव पड़ रहा है। खनन प्रक्रियाओं के कारण भी खनित संसाधनों विशेषकर जीवाश्म ईंधनों का भंडार समाप्त होता जा रहा है। आज औद्योगिक सभ्यता प्रकृति के ऊपर एक बोझ बनती जा रही है और यही समय है कि हम प्रकृति के साथ सौहार्दपूर्वक व्यवहार की आवश्यकता को जान लें।

6. झुग्गी–झोपड़ियों का विकास

सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में सड़कों पर भीड़–भाड़ हो जाती है और झुग्गी–झोपड़ियां बन जाती हैं। इसके कारण मूलभूत सुविधाओं जैसे पेयजल, जल–निकास, अपशिष्ट का निपटान, स्वस्थ परिस्थितियों की कमी हो जाती है। पर्यावरण में गंदगी होने के कारण स्वस्थ पारिस्थितिक समस्याओं जैसे कोई महामारी सभी जगहों पर फैल सकती हैं।

7. अतिजनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप प्रदूषण का होना

पवित्र नदियां जैसे गंगा, यमुना और दूसरे जल स्रोत उद्योगों द्वारा निकले हुए अपशिष्टों (बहिःस्रावों), मानव बस्तियों, नहाने, कपड़े धोने और नदियों में कूड़ा करकट फेंकने के कारण प्रदूषित होते जा रहे हैं।

11.3 मानव स्वास्थ्य और कल्याण (Human Health and Welfare)

स्वास्थ्य एक व्यापक शब्द है। इसे केवल शरीर से जोड़कर नहीं देखना चाहिए। स्वास्थ्य वह अवस्था है जो मनुष्य को अपना जीवन सार्थक ढंग से जीने के लिए प्रेरित करती है। स्वास्थ्य केवल रोग मुक्त जीवन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह शरीर की सार्थकता व सार्थक जीवन की अनुभूति है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक तौर पर अच्छा महसूस करने की अवस्था है।

11.3.1 स्वास्थ्य के आयाम (Dimensions of Health)

1. शारीरिक आयाम
2. मानसिक आयाम
3. सामाजिक आयाम
4. पौष्टिक आयाम
5. शैक्षणिक आयाम
6. आध्यात्मिक आयाम
7. उपचारात्मक एवं रोकथाम के आयाम
8. पर्यावरण आयाम

9. व्यवसायिक आयाम

भारत के संविधान के सातवीं अनुसूची के अंतर्गत स्वास्थ्य सुविधाएं प्रयास करना राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व है। सरकार द्वारा बीमारियों के रोकथाम हेतु स्वास्थ्य के प्रमुख करकों सफाई, स्वच्छता, पोषण और सुरक्षित पेयजल पर विशेष ध्यान दिया गया। देश की जनसंख्या की स्वास्थ्य स्थिति में 1990 से महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ है। पुरुषों की औसत आयु 59.7 वर्ष से बढ़कर 66.1 वर्ष तथा महिलाओं की औसत आयु 60.9 से बढ़कर 64.1 वर्ष हो गयी है। बाल–मृत्यु, अपरिपक्व जन्मदर और मृत्युदर में भी गिरावट आयी है। कुष्ट और टी. बी. जैसे संचारी रोगों के लिए बनाई गई रणनीति पूरी तरह सफल रही है।

11.3.2 स्वास्थ्य सम्बन्धी नीतियां

भारत में स्वास्थ्य सम्बन्धी अलग–अलग चुनौतियां हैं। क्षयराग, मलेरिया, मधुमेह, हाइपरटेंशन तथा कैंसर आदि आज भी अपनी गहरी जड़े जमाए हुए हैं। मातृ और नवजान शिशु मृत्यु दर की ऊंची दरें आज भी देश के लिए चुनौती बनी हुई है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम बनाए गए हैं जिनमें से प्रमुख कार्यक्रम निम्न है–

– राष्ट्रीय संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम
– गैर संचारी रोग (NCD)
– राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM)
– जननी सुरक्षा योजना
– राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना
– परिवार नियोजन कार्यक्रम
– राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन
– राष्ट्रीय जनसंख्या नीति
– राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग एवं जनसंख्या स्थिरता कोष
– प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना (PMSSY)
– आयुर्वेद, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्धि एवं समचिकित्सा (आयुष)
– समेकित बाल विकास सेवा योजना
– राजीव गांधी किशोरी सशक्तीकरण योजना
– इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना
– कुपोषण के विरूद्ध राष्ट्रव्यापी अभियान

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है। इस विशाल जनसंख्या को स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा प्रशिक्षण आदि उपलब्ध करवाना अपने आप में एक चुनौती भरा काम है, इस चुनौती को स्वीकार करते हुए सरकार ने

1983 में सभी के लिए स्वास्थ्य की घोषणा की। 2005 में प्रारम्भ राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन एक मील का पत्थर साबित हुई तथा राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन, प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा सेवाएं आदि कार्यक्रमों ने स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ता प्रदान की है। राष्ट्रीय संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम में मलेरिया, डेंगू, चिकुनगुनिया, जापानी एसेफलाइटिस और कालाजार की रोकथाम और नियंत्रण कार्यकलापों के लिए सहायता दी जाती है। गैर संचारी रोगों में तंबाकू–सेवन, अल्कोहल का अनुचित प्रयोग, अनुपयुक्त आहार तथा व्यायाम का अभाव शामिल है। भारत सरकार ने वृद्ध व्यक्तियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर ध्यान देने के लिए 'राष्ट्रीय वृद्धावस्था स्वास्थ्य पश्चिमी कार्यक्रम' शुरू किया है। जननी सुरक्षा योजना के अंतर्गत आशा निर्धन परिवारों की गर्भवती महिलाओं को न्यूनतम आवश्यक स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवाती है तथा बच्चा मरने हेतु उस महिला को निकटवर्ती अस्पताल में भी ले जाती है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत स्वास्थ्य बीमा योजना 2007 के लागू की है। इस योजना के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले असंगणित क्षेत्र के श्रमिकों तथा उनके परिवार के सदस्यों को स्वास्थ्य बीमा के जरिए बीमारियों के उपचार की गुणवतापूर्ण चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाना है। 2012 में लंदन में आयोजित विश्व पोषण समारोह का उद्देश्य अगले चार वर्षों 2016 तक 170 मिलियन बच्चों हेतु भुखमरी एवं कुपोषण को मिटाने हेतु कार्यक्रम निर्धारित किए गए। 2012 में ही दिल्ली में शिशुओं तथा छोटे बच्चों के आहारों को बढ़ावा देने के लिए विश्व स्तनपान सम्मेलन का आयोजन किया गया। पोषण के विश्व में जागरूकता पैदा करने के लिए राष्ट्रीय पोषण सप्ताह मनाया जाता है। कुपोषण को जड़ से मिटाने हेतु सरकार प्रयत्नशील है। आशा के द्वारा घर–घर पाकर किशोरियों को आयरन की गोलियां खिलाना कुपोषण के खिलाफ एक नयी जंग की शुरूआत की गयी है। समेकित बाल विकास सेवा स्कीम 1975 में प्रारम्भ हुआ था। भारत सरकार ने 2008 में इस स्कीम को राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के माध्यम से विश्व स्वास्थ्य संगठन के नए विकास मानक लाये है। इस स्कीम का उद्देश्य 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों का समग्र विकास किशोरी, बालिकाओं और गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान करने वाली माताओं के लिए उचित पोषण और स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

11.4 परियोजन प्रभावित व्यक्ति का पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना (Resettlement and Rehabilitation of Project Affected Person)

परियोजना निर्माण हेतु सरकारी भूमि के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर निजी भूमि को भी अधिग्रहित किया जाता है। इसी कारण काफी परिवार व हमारा पर्यावरण प्रभावित होता है। परियोजना कार्य में भूमिगत कार्य, भारी मात्रा में सामग्री की दुलाई तथा बांध निर्माण से अनेक गांवों का जलविलय और दूसरी अनेक गतिविधियां होती हैं। इन सबका प्रभाव क्षेत्र में बसने वाले लोगों पर भी पड़ता है। परियोजना प्रभावित तथा भूमिविहीन परिवारों का हित रक्षण करने हेतु पुनर्वास तथा पुनर्स्थापना सम्बन्धी योजना बनाई गई है। बड़े–बड़े बांधों, सड़कों का निर्माण, बिजली निर्माण इत्यादि के लिए बहुत बड़ी–बड़ी परियोजनाएं चलाई जा रही है। जिसके कारण मानव के साथ–साथ पर्यावरण पर भी प्रभाव रहा है। परियोजनाओं के निर्माण के कारण लोगों को अपनी जगह से विस्थापित होना पड़ता है। उन्हें अपना स्थान छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। यद्यपि मानव की जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है तथा मानव विस्थापन के बाद अन्य स्थान पर जब अपने रहने के लिए निवास का निर्माण करते हैं तो अत्यधिक मात्रा में पेड़–पौधों को काटा जाता है। घटते वन जो कि विभिन्न पौधों और जंतुओं के प्राकृतिक आवास है, नष्ट हो गए हैं और बहुत से मूल्यवान पेड़ और जानवर हमेशा के लिए खत्म हो गए हैं। कुछ जीव विलुप्त होने के कगार पर हैं जबकि दूसरे विलुप्त होने के बिल्कुल करीब हैं। औद्योगीकरण के कारण बड़ी मात्रा में कार्बनडाईआक्साइड जीवाशमीय ईंधनों के जलने से वायुमंडल में मिलती जा रही हैं। बढ़ते वायुमंडलीय CO_2 सांद्रण के कारण औसत तापमान में वृद्धि होने से भूमंडलीय तापन होता है। बांधों का

सबसे महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय प्रभाव मानव आबाद के विस्थिापन के परिणामस्वरूप होता है। क्योंकि लोग आमतौर पर नदियों के किनारे बस जाते हैं, जहां पीने, सिंचाई, बिजली और परिवहन के लिए पानी आसानी से उपलब्ध होता है, जलाशयों में बाढ़ बड़ी आबादी को विस्थापित कर सकती है। भारत की नर्मदा नदी पर बांधों की श्रृंखला 600,000 एकड़ (150,000 हैक्टेयर) कृषि भूमि के साथ 1.5 मिलियन लोगों के घरों को जलमग्न कर देगी। जिसके कारण लोगों को रहने के लिए नए स्थान खोजने होंगे और भोजन उगाने के लिए नई भूमि खाली करनी होगी।

मनुष्य ने विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में काफी उन्नति कर ली हैं आज मनुष्य ने औद्योगिकरण के क्षेत्र में काफी प्रगति कर ली है। विभिन्न औद्योगिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप पर्यावरण में सर्वथा नवीन तत्त्व समावेशित हो जाते हैं जो पर्यावरण के भौतिक एवं रसायनिक संघटकों को भी परिवर्तित कर देते हैं। कारखानों द्वारा उत्पन्न अवांटित उत्पादन यथा ठोस अपशिष्ट, प्रदूषित जल, विषैली गैसें, धूल, राख, धुआ इत्यादि जल, थल तथा वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण है। औद्योगिकीकरण का पर्यावरण पर सामान्य रूप से निम्न प्रकार का प्रभाव है– कार्बन मोनोआक्साइड की मात्रा में वृद्धि, अम्लीय वर्षा, वायुमण्डल में ओजोन परत को पार करना, जीव समूहों के संतुलन में बाधा उत्पन्न करना, जल स्रोतों को प्रदूषित करना, भूमि प्रदूषण में वृद्धि करना, वनों के क्षेत्र में कमी आदि। इसके अलावा औद्योगीकरण का मानव जीवन पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। उद्योगों की स्थापना के लिए लोग को अपने स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में जाकर निवास करना पड़ता है। इसके कारण विस्थापन की स्थिति पैदा हो जाती है। इस कारण हम कह सकते हैं कि परियोजनाओं के कारण लोगों को पुनर्वास तथा पुनर्स्थापना सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। हालांकि भूमि अधिग्रहण न्यूनतम स्तर पर किया जाएगा तथा बहुत अधिक लोग विस्थापित नहीं होंगे तथापि अनेक अवसरों पर यह अपरिहार्य होता है। परंतु इस प्रकार की परिस्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि प्रभावित परिवारों की तरफ ध्यान दिया जाए और देख–रेख की जाए। इस प्रकार पुनर्वास तथा पुनर्स्थापना योजना इस उद्देश्य से बनाई जाती है कि भूमि विहीन हो गए परिवारों या जिनकी भूमि, घर, दुकान अधिग्रहित की गई है उनका पुनर्स्थापना तथा पुनर्वास किए जाए, यह पुनर्स्थापना तथा पुनर्वास इस प्रकार हो कि वे कम से कम अपने पूर्व जीवन स्तर, आय क्षमता तथा उत्पादन स्तर में सुधार करे या उसे बनाए रखें।

11.4.1 राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति

भारत सरकार ने अक्तुबर 2007 में पुनर्वास और पुनर्स्थापन के संबंध में नई राष्ट्रीय नीति अनुमोदित की। नई नीति तथा सम्बन्ध विधायी उपायों का उद्देश्य विकास कार्यकलापों के लिए भूमि की जरूरत और इसके साथ ही भूस्वामित्वों व अन्यों, जैसे की कारतकारों, भूमिहीनों, श्रमिकों, शिल्पकारों आदि के हितों को संरक्षण प्रदान करने के बीच, जिनकी आजीविका अंतर्निहित भूमि पर निर्भर करती है, एक संतुलन कायम करना है।

नई नीति के अंतर्गत प्रभावित परिवारों के लिये प्रस्तावित लामों में सम्मिलित है, जमीन के लिये जमीन, उस सीमा तक जिस सीमा तक पुनर्स्थापन क्षेत्रों में उपलब्ध होगी, प्रभावित परिवार की परिभाषा के अंदर प्रत्येक परिवार से कम से कम एक व्यक्ति के लिये परियोजना में रोजगार के लिये प्राथमिकता, रिक्तियों की उपलब्धता और प्रभावित व्यक्तियों की उपयुक्तता की शर्त पर उपयुक्त रोजगार और स्व रोजगार प्राप्त करने के लिये प्रशिक्षण तथा क्षमता निर्माण प्रभावित परिवारों से पात्र व्यक्तियों की शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियां, ठेकों के आवंटन तथा परियोजना स्थल में अथवा इसके ईद–गिर्द अन्य आर्थिक अवसरों में सहकारिताओं के समुहों की प्राथमिकता, परियोजना में निर्माण कार्य में इच्छुक प्रभावित परिवारों को ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में मकान सहित व अन्य लाभ।

नीति में यह भी व्यवस्था है कि सार्वजनिक प्रयोजनार्थ अधिगृहित भूमि की, किसी सार्वजनिक प्रयोजन को छोड़कर और वह भी केवल सरकार के पूर्व अनुमोदन के साथ, हस्तांतरित नहीं की जा सकती यदि सार्वजनिक प्रयोजनार्थ प्राप्त की गई भूमि, कब्जा लेने की तारिख से पांच वर्ष की अवधि तक इस प्रयोजनार्थ अप्रयुक्त रहती है तो वह सम्बन्धित सरकार को वापस हो जाएगी।

11.5 केस अध्ययन

किसी भी योजना के स्थान विशेष के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के मूल्यांकन का सही अन्दाज तभी लगाया जा सकता है जबकि कुछ योजनाओं के ऐतिहासिक विवरण का गहन अध्ययन किया जाय। इस सन्दर्भ में निम्न योजनाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है– 1. नील नदी पर आस्वान बांध, 2. ट्रान्स अलास्का पाइप लाइन (संयुक्त राज्य अमेरिका), 3. टेहरी बांध परियोजना (उत्तर प्रदेश, भारत) तथा 4. सरदार सरोवर परियोजना (गुजरात, भारत)।

1. आस्वान बांध योजना (मिश्र)

मिश्र में नील नदी पर 1964 में निर्मित उच्च आस्वान बांध विश्व के वृहत्तम बांधों में से एक है। इस बांध के साथ विस्तृत जलाशय का भी निर्माण किया गया है। इसका नाम नासिर झील है। निर्माण काल से ही आस्वान बांध के कारण कई प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। जबकि इस बांध के निर्माण के पहले इस बांध की प्रस्तावित परियोजना के क्षेत्रीय पर्यावरण की दशाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन नहीं किया गया था। ज्ञातव्य है कि सन् 1902 में एक छोटे बांध का निर्माण किया गया था परंतु इससे न तो नील नदी के बाढ़ प्रकोप पर नियंत्रण किया जा सका और न ही सिंचाई के लिए पर्याप्त जल सुलभ हो सका। अतः निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 1964 में उच्च आस्वान बांध का निर्माण किया गया– (1) बाढ़ के समय नील नदी की अपार जल राशि को नासिर झील में रोकना तथा बार–बार आने वाली बाढ़ का नियंत्रण करना, (2) कृषि क्षेत्रों की सिंचाई के लिए पर्याप्त जल सुलभ कराना, (3) अतिरिक्त रेगिस्तानी भूमि का सुधार करना, (4) जल विद्युत उत्पन्न करना, (5) लोगों की सूखे एवं भुखमरी तथा अकाल से रक्षा करना आदि।

आस्वान बांध परियोजना के कार्यान्वयन के समय निम्न गलतियां हुई थी– 1. नासिर झील में जल के वाष्पीकरण द्वारा क्षय का समुचित परिकलन नहीं किया गया था। वास्तव में इस क्षेत्र में तेज गति से चलने वाली वायु पर ध्यान नहीं दिया गया था। उल्लेखनीय है कि कम गति से चलने वाली वायु की तुलना में तेज गति से चलने वाली वायु के कारण वाष्पीकरण अधिक होता है। इस कारक को ध्यान में न रखने के कारण परियोजना के प्रारम्भ में वाष्पीकरण द्वारा क्षय होने वाली जल की मात्रा के परिकलन में 50 प्रतिशत तक गलती हो गयी थी। इस कारण जलभण्डार में वाष्पीकरण द्वारा प्रति वर्ष 5 बिलियन धन मीटर जल का क्षय प्रारम्भ हो गया तथा 2. जलभण्डार की तली में रिसाव द्वारा जल के क्षय को भी ध्यान में नहीं रखा गया था।

आस्वान बांध के निर्माण से निम्न प्रमुख पर्यावरणसीय समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं–

1. नील नदी प्रति वर्ष 134 मिलियन टन अवसाद का जलभण्डार (नासिर झील) में निक्षेपण करती है। चूंकि जलभण्डार से बाहर निकलने के लिए कोई जलद्वार नहीं है, अतः जलभण्डार से अवसाद बाहर नहीं निकल पाता है तथा उसका जलभण्डार में निरन्तर जमाव होता रहता है। परिणामस्वरूप नील नदी के अनुप्रवाह क्षेत्र में जलाढ़ के जमाव न होने से मिट्टियों की उर्वरता का नवीनीकरण नहीं हो पाता है।
2. आस्वान जलभण्डार (नासिर झील) में अवसादों तथा पोषक तत्त्वों के जमाव हो जाने के कारण नील नदी के मुहाने के पास पूर्वी रूप सागरीय भाग में पोषक तत्त्वों में भारी कमी हो गयी है। इस कारण प्लैकटन की मात्रा में एक तिहाई गिरावट हो जाने से सारडाइन, मैकेरेल, लाबस्टर आदि मछलियों की संख्या में कमी हो गयी है।

3. आस्वान जलभण्डार तथा नहरों का जल रोग फैलाने वाले घोघों (Snails) के कारण दूषित हो रहा है जिस कारण लोगों में 'स्नेल बुखार' फैल रहा है।
4. बांध परियोजना के कमाण्ड क्षेत्र में मलेरिया के रोग में वृद्धि होती जा रही है।
5. मिट्टियों की लवणता तेजी से बढ़ रही है जिस कारण कृषि भूमि की उत्पादकता घट रही है।

2. ट्रान्स–अलास्का पाइप लाइन योजना

संयुक्त राज्य अमेरिका के अलास्का प्राप्त में ट्रान्स–अलास्का तेल पाइप लाईन का निर्माण कार्य 1975 में प्रारम्भ होकर 1977 में पूर्ण हो गया। ज्ञातव्य है कि इस परियोजना को पर्यावरणीय अधिप्रभाव के कथन तथा मूल्यांकन (Environmental Impact Statement and Assessment) के बाद ही पारित किया गया था परंतु आज भी कई ऐसी पर्यावरणीय समस्याएं शेष हैं जिनका समाधान नहीं हो सका है।

परियोजना के उद्देश्य – अलास्का के उत्तरी तट पर प्रुधोई खाड़ी के पास खनिज तेल के भण्डार का पता होने पर इस क्षेत्र के खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस को 1270 किलोमीटर लम्बी भूमिगम पाइप लाइन द्वारा अलास्का के दक्षिणी तट पर स्थित वाल्डेज बन्दरगाह तक लाने की योजना बनायी गयी।

भौतिक दशायें– प्रस्तावित क्षेत्र नाजुक आर्कटिक पर्यावरण से प्रभावित है तथा अधिकांश भाग परमाफ्रास्ट से आवृत्त है। धरातलीय बनावट की प्रमुख विशेषताएं हैं– ऊबड़–खाबड़ धरातलीय सतह, बड़ी नदियां, पहाड़ियां तथा पर्वत, भ्रंश मण्डल, भूकम्प की दृष्टि से सक्रिय क्षेत्र तथा विस्तृत परमाफ्रास्ट क्षेत्र (सतत हिमीकृत भूमि)।

पर्यावरणीय अधिप्रभाव मूल्यांकन – ट्रान्स अलास्का तेल पाइप लाइन परियोजना के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के विश्लेषण से सम्बन्धित तथ्यों को D.A.Brew (1971) ने निम्न रूपों में व्यक्त किया है–

(1) प्रस्तावित पाइप लाइन को तीन प्रमुख पर्वत श्रेणियों को पार करना होगा– बुक्स रैंज, अलास्का रैंज तथा चुगान पर्वत। यह क्षेत्र विवर्तनिक दृष्टि से सक्रिय है। इसके अलावा इस पाइप लाइन को कई छोटी–बड़ी नदियों को भी पार करना पड़ेगा। विशेषज्ञों ने यह सन्देश व्यक्त किया था कि नदियों के तटवर्तीय भाग के अपरदन तथा भूकम्पीय घटनाओं के कारण पाइप लाइन को भारी क्षति होगी।

(2) पाइप लाइन से होकर प्रवाहित होने वाले गर्म तेल के कारण परमाफ्रास्ट की हिम पिघल सकती है जिस कारण प्रचण्ड पर्यावरणीय प्रकोप उत्पन्न हो सकते हैं परंतु समुचित इंजीनियरिंग कार्यों द्वारा इस समस्या को कम किया जा सकता है।

(3) इस परियोजना से सम्बन्धित निम्न कार्यों से प्रभावित क्षेत्रों की भौतिक, जैविक तथा सामाजिक–आर्थिक दशाओं पर प्रभाव पड़ सकते हैं– (अ) पाइप लाइन, लिंक रोड़, राजमार्ग आदि के निर्माण, संचालन तथा रख–रखाव से; (ब) खनिज तेल के क्षेत्रों में विकास एवं सम्बर्द्धन से तथा (स) तेल के ऑयल टैंकरों में भरने तथा निकालने से तथा वाल्डेज बन्दरगाह पर सागरीय तेल वाहक जहाजों के संचालन से।

(4) इस परियोजना के निम्न अपरिहार्य प्रभाव होंगे– (अ) धरातलीय दशाओं, मछलियों के आवासों (सागर में खनिज तेल के रिसाव के कारण), वन्य जीवों के आवासों (पाइप लाइन बिछाने के लिए वनों की सफाई के कारण) तथा मनुष्य द्वारा भूमि उपयोग, यथा– कृषि आदि में व्यवस्था (ब) वाल्डेज बन्दरगाह के सागरीय जल में नगरीय मल जल तथा खनिज तेल का विसर्जन तथा (स) इस परियोजना के कारण तेल के निष्कासन क्षेत्रों एवं तेल के निर्यातक क्षेत्रों में मानव जनसंख्या तथा अधिवास में वृद्धि।

(5) प्रमुख खतरनाक प्रभाव– तेल के कुंओं से असावधानी के कारण तेल के बहने की दुर्घटना, भूमि स्खलन, परमाफ्रास्ट के पिघलने, नदियों के तटीय भागों के अपरदन, सागरीय तरंगों आदि के कारण तेल की पाइपों में मोड़ तथा तोड़–फोड़ होने से तेल का बाहर प्रवाह; तेल वाहक जहाजों में तेल भरते समय तथा जहाजों के क्षतिग्रस्त होने से तेल का सागरीय जल में रिसाव आदि। यह अनुमान किया गया कि वाल्डेज बन्दरगाह में धरातलीय तेल भण्डारों से तेल वाहक टैंकरों में तेल के भरते समय प्रति दिन 1.6 से 6 बैरेल खनिज तेल का क्षय तथा टैंकरों की दुर्घटना से 384 बैरेल खनिज तेल का प्रतिदिन क्षय हो सकता है।

(6) तेल पाइप लाइन के वैकल्पिक मार्ग – अलास्का के उत्तरी तट पर प्रुधोई खाड़ी स्थित तेल क्षेत्र से खनिज तेल के दक्षिणी तट पर स्थित वाल्डेज बन्दरगाह तक परिवहन के लिए कई वैकल्पिक तेल पाइप लाइनों का सुझाव दिया गया तथा उनका मूल्यांकन किया गया। यथा– (अ) सागरीय परिवहन पाइप लाइन मार्ग, (ब) अलास्का रेलरोड–मार्ग, (स) ट्रांस–कनाडा संसाधन रेलरोड मार्ग, (द) ट्रांस–कनाडा कॉरिडार मार्ग, (य) पश्चिमी अलास्का के तट पर स्थित बन्दरगाहों के लिए अपतट पाइप लाइन मार्ग (र) पश्चिमी अलास्का के तटीय बन्दरगाहों के लिए धरातलीय पाइप लाइन मार्ग तथा (ल) दक्षिणी अलास्का के बन्दरगाहों तक ट्रान्स–अलास्का पाइप लाइन मार्ग।

(7) वैकल्पिक तेल पाइप लाइनों के तुलनात्मक विश्लेषण से निम्न परिणाम सामने आए– (अ) अलास्का से होकर गुजरने वाले सभी पाइप लाइन मार्गों का अलास्का–कनाडा से गुजरने वाले पाइप लाइन मार्गों की तुलना में पर्यावरण के भौतिक संघटक पर अपेक्षाकृत कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा; (ब) बेरिंग सागर तक ट्रान्स–अलास्का मार्ग का स्थलीय जीवों तथा मनुष्य के सामाजिक–आर्थिक ढांचे पर न्यूनतम प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तथा (स) ट्रान्स–अलास्का–कनाडा तेल पाइप लाइन मार्ग का सागरीय पर्यावरण पर न्यूनतम प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा क्योंकि समस्त खनिज तेल का परिवहन मात्र स्थलीय मार्ग से ही होगा।

(8) निष्कर्ष – यद्यपि ट्रांस–अलास्का कनाडा पाइप लाइन मार्ग पर्यावरण की दृष्टि से अधिक उपयुक्त था क्योंकि यह मार्ग अलास्का के भूकम्पीय दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों से अलग होकर गुजरता तथा इससे सागरीय पर्यावरण प्रभावित नहीं होता परन्तु अन्ततः मौलिक प्रस्तावित ट्रान्स–अलास्का पाइप लाइन परियोजना को ही स्वीकृति प्रदान की गयी। वास्तव में इस निर्णय में सुरक्षा तथा सामगरिक पक्षों को भी ध्यान में रखा गया था क्योंकि यदि ट्रान्स–अलास्का कनाडा पाइप लाइन मार्ग को पारित किया जाता तो कनाडा को भी सम्मिलित करना पड़ता।

टेहरी उच्च बांध परियोजना

विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के बीच द्वन्द्व का उदाहरण

टेहरी बांध परियोजना, जिसका निर्माण कार्य चल रहा है (1991), जहां तक पर्यावरणवादियों तथा स्थानीय लोगों एवं सरकारी तथा परियोजना के अधिकारियों के बीच वैज्ञानिक, तकनीकी, पर्यावरणीय एवं सामाजिक विषयों के सन्दर्भ में द्वन्द्व तथा विवाद का प्रश्न है, विश्व की सर्वाधिक विवादग्रस्त नदी परियोजनाओं में से एक है। इस तरह यह अपेक्षित है कि इस परियोजना के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सरकारी एवं पर्यावरणवादियों के दृष्टिकोणों का तार्किक विवेचन किया जाय।

परियोजना के प्रमुख उपलक्षक तथा उद्देश्य टेहरी बांध का निर्माण उत्तरांचल के टेहरी जिला में भागीरथी तथा भिलांगना नदियों के संगम के नीचे गंगा नदी पर किया जा रहा है। भौमिकीय दृष्टि से यह क्षेत्र कमजोर क्षेत्र में आता है क्योंकि भूकम्पीय घटनाओं की अधिक सम्भावना है। इस परियोजना के प्रमुख लक्ष्य इस

प्रकार हैं– टेहरी बांध के पीछे निर्मित विस्तृत जलाशय में गंगा नदी की दो शीर्षवर्ती सहायक नदियों– भागीरथी तथा भिलांगना के जल का संग्रह करना, जलविद्युत का उत्पादन तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सिंचाई के लिए जल उपलब्ध कराना।

इस परियोजना को भारत सरकार के प्लानिंग कमीशन ने 1972 में स्वीकृति प्रदान कर दी थी तथा उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग ने 5 अप्रैल, 1978 को इसका निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया परंतु निर्माण कार्य की प्रगति संतोषजनक नहीं रही। परिणामस्वरूप सन् 1989 में टेहरी हाइड्रो–डैम कारपोरेशन का गठन किया गया। इस परियोजना के कार्यान्वयन का भार भारत सरकार ने स्वयं अपने कंधों पर ले लिया तथा THDC को इस परियोजना को पूर्ण करने के लिए अधिकृत कर दिया गया। वर्तमान समय में इस परियोजना का कार्यान्वयन सोवियत तकनीकी एवं आर्थिक सहायता के साथ किया जा रहा है।

इस बांध की ऊँचाई 260.5 मीटर होगी। इस तरह टेहरी बांध भारत का सर्वोच्च राक–फिल बांध होगा। इस परियोजना के अन्तर्गत बिजली उत्पादन की क्षमता 2400 मेगावाट है। इससे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 2,70,000 हैक्टेयर कृषि भूमि की सिंचाई हो सकेगी। टेहरी जलभण्डार में 345 मिलियन घन मीटर जल का संग्रह किया जायेगा। जिस कारण आस–पास का 467 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र जनमग्न हो जायेगा। इस परियोजना के अन्तर्गत दिल्ली महानगर को 300 क्यूमेक्स (घन मीटर प्रति सेकण्ड) जल प्रदान करने की भी व्यवस्था है। इस परियोजना के कार्यान्वयन में देरी के कारण लागत खर्च में भारी वृद्धि हो गयी है। उदाहरण के लिए इस परियोजना को तैयार करते समय 1967 में 126.8 करोड़ रुपये के लागत खर्च का अनुमान किया गया था। इस लागत खर्च को 1977 में बढ़ा कर 197.9 करोड़ रुपये करना पड़ा। सन् 1989 में इस परियोजना का लागत खर्च 3000 करोड़ रुपये आंका गया। इस परियोजना के पूर्व होने पर 112 गाँव तथा पुराना टेहरी शहर जलमग्न हो जायेगा जिस कारण 1,25,000 लोग विस्थापित हो जायेंगे। टेहरी बांध का जीवनकाल 100 आर्थिक वर्ष आंका गया है।

परियोजना का विरोध : पर्यावरणवादियों के दृष्टिकोण –टेहरी बांध परियोजना की रूप–रेखा की तैयारी के समय से ही इसका विरोध प्रारम्भ हो गया था। जैसे ही इस परियोजना की भनक स्थानीय लोगों को लगी, लोगों में यह आशंका व्याप्त हो गयी कि भागीरथी नदी की घाटी में बसे गांव जलमग्न हो जायेंगे तथा वहाँ के निवासी विस्थापित हो जायेंगे। परिणामस्वरूप आनन–फानन में टेहरी बांध से प्रभावित होने वाले लोगों की एक समिति का गठन कर दिया गया। आगे चलकर जब लोगों को इस बात का गुप्त रूप से पता चला कि प्रस्तावित बांध उस स्थान पर बनाया जा रहा है जिसके नीचे 7.5 किलोमीटर का गहराई पर महान टीयर फाल्ट की स्थिति है तथा यहाँ भूकम्प आने की भरपूर सम्भावना है तो टेहरी बांध विरोध समिति का झटपट गठन का लिया गया। आगे चल कर इस परियोजना से प्रभावित व्यक्तियों ने पार्लियामेण्ट में एक प्रतिवेदन पेश किया परन्तु इस पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। परिणामस्वरूप टेहरी बांध विरोध समिति ने भारतीय संविधान की धारा 21 के अन्तर्गत जीने के अधिकार की सुरक्षा के लिए नवम्बर सन् 1985 में सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर कर दी। परंतु इस बांध का निर्माण कार्य एवं विरोध 25 दिसम्बर सन् 1989 तक चलता रहा। इसके बाद सुन्दर लाल बहुगुना द्वारा आमरण अनशन करने के कारण निर्माण कार्य को स्थगित कर दिया गया परंतु निर्माण कार्य पुनः प्रारम्भ कर दिया गया। ज्ञातव्य है कि वर्तमान समय (मार्च 1991) तक बांध का निर्माण कार्य एवं उसका विरोध दोनों साथ–साथ चल रहे हैं। इस परियोजना के विरोध में पर्यावरणवादी तथा विरोधी लोग निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं–

(1) सुरक्षा आधार

टेहरी बांध परियोजना तीन प्रमुख कारणों के फलस्वरूप विवादों के भंवर में फंसी है– (अ) इस क्षेत्र की भूकम्पीय दृष्टि से संवेदनशीलता तथा बांध की सुरक्षा की समस्या; (ब) पर्यावरण अवनयन तथा परिस्थितिकीय असंतुलन एवं (स) स्थानीय लोगों का विस्थापन एवं प्राचीन संस्कृति का विनाश।

पर्यावरणवादियों एवं सुन्दर लाल बहुगुणा के नेतृत्व में स्थानीय लोगों का यह तर्क है कि भूकम्पीय दृष्टि से इतने संवेदनशील क्षेत्र में इतने बड़े बांध (206.5 मीटर ऊँचा) का निर्माण निर्माण नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि तीव्र परिमाण वाले भूकम्प के आने पर बांध फट जायेगा जिस कारण टेहरी जलाशय के जल का 100 किलोमीटर प्रति घण्टे की दर से प्रवाह होने लगेगा। परिणामस्वरूप ऋषिकेश एवं हरिद्वार नगरक्रमशः 57 एवं 69 मिनट में पूर्णतया विनष्ट हो जाएंगे।

पर्यावरणवादियों तथा टेहरी बांध के विरोधियों ने अपने पक्ष में कई भूविज्ञानियों के समर्थन भी प्राप्त कर लिए हैं। यथा– त्रिवेन्द्रम स्थित भूविज्ञान संस्थान के प्रोफेसर हर्ष गुप्त, हिमालय की भौमिकी के विशेषज्ञ प्रोफेसर खड्ग सिंह वाल्दिया, यन.जी.आर.आई. के भूतपूर्व निदेशक डॉ. विनोद कुमार गौड़ आदि। इन विज्ञानियों का कहना है कि टेहरी बांध क्षेत्र भूकम्पीय दृष्टि से सुरक्षित नहीं है। डॉ. विनोद कुमार के अनुसार 1897 के प्रचण्ड आसाम भूकम्प के बाद से हिमालय क्षेत्र में 7.5 परिमाण (रित्तर मापक) वाले 8 भूकम्पों की घटनायं हो चुकी हैं। किसी समय भी भारी भूकम्पीय घटना घट सकती है तथा टेहरी बांध फट सकता है। परियोजना के अधिकारियों ने इस बांध के समर्थन में यह दावा पेश किया है कि सोवियत रूस ने नुरेक बांध भी भूकम्पीय दृष्टि से अति संवेदनशील क्षेत्र में बनाया गया है परन्तु प्रोफेसर हर्षगुप्त का मत है (इन्होंने नुरेक बांध का स्वयं पर्यवेक्षण किया है) कि 'भूविज्ञान में कोई तुलना नहीं की जा सकती है। कोई बांध 8–9 परिमाण वाले भूकम्प को सहन कर सकता है। 1803 में गढ़वाल क्षेत्र में 8–9 परिमाण वाला भूकम्प आया था, जिस कारण श्रीनगर गढ़वाल में 80 प्रतिशत मकान नष्ट हो गये थे। इस बात की कौन गारंटी दे सकता है कि भूकम्प आने पर समीपी पहाड़ियां टूट कर जलभण्डार में नहीं गिर जायेगी तथा इटली की Viontck बांध दुर्घटना की पुनरावृति (टेहरी बांध दुर्घटना के रूप में) नहीं होगी?

(2) पर्यावरणीय आधार

टेहरी बांध परियोजना से निम्न पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो जायेंगी– (अ) टेहरी जलभण्डार का अवसादन (ब) पर्वतीय घाटी पारिस्थितिक तंत्र के टेहरी जलभण्डार के कारण जलमग्न हो जाने के कारण पारिस्थितिकीय विनाश (स) पर्वतीय हिमनदों का निर्वतन आदि। पर्यावरणवादियों तथा विरोधियों का कहना है कि इस परियोजना के कार्यान्वयन के पहले इस परियोजना के पर्यावरणीय अंधिप्रभाव का मूल्यांकन नहीं किया गया था। वास्तव में इस क्षेत्र में मृदा–अपरदन, मलवा तथा सिल्ट के जनन की दरों का दीर्घकालिक अध्ययन किया जाना चाहिए था परन्तु ऐसा नहीं किया गया है। जलभण्डार का जीवनकाल उसमें अवसादन की दर पर निर्भर करता है। इनका कहना है कि भागीरथी एवं भिलांगना नदियों के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों से उत्पन्न अवसाद एवं मलवा के भारी मात्रा में टेहरी जलभण्डार में जमाव के कारण इसका अनुमानित 100 वर्षीय जीवनकाल घट कर 60 वर्ष ही रह जायेगा। 'जिओलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' के भूतपूर्व निदेशक एस.पी. नौटियाल के अनुसार टेहरी जलभण्डार का जीवनकाल मात्र 30–40 वर्ष ही होगा न कि 100 वर्ष।

खड्ग सिंह वाल्दिया के अनुसार टेहरी बांध परियोजना के अन्तर्गत पहाड़ी ढालों के सहारे एक किलोमीटर सड़क के निर्माण के लिए 40,000 से 80,000 घन मीटर (औसतन 60,000 घन मीटर) मलवा को हटाना होगा। इस प्रकार सड़क निर्माण के समय 550 घन मीटर प्रति किलोमीटर प्रति वर्ष की दर से मलवा उत्पन्न होगा। इस मलवा का टेहरी जलभण्डार में निक्षेप होने से जलभण्डार का भराव होगा और उसका जीवन काल घट जायेगा।

भागीरथी घाटी में टेहरी जलभण्डार के कारण 467 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के जलमग्न हो जाने के कारण पारिस्थितिकीय प्रकोप तथा सर्वनाश हो जायेगा क्योंकि पौधों तथा जन्तुओं की कई जातियाँ उनके प्राकृतिक आवासों के विनष्ट हो जाने के कारण विलुप्त हो जायेगी।

यह भी आशंका व्यक्त की गयी है बांध के कारण पर्वतीय हिमनद के पिघलने तथा पीछे हटने की दर बढ़ जायेगी जिस कारण हिमोढ़ जमावों का तेजी से अपरदन होगा तथा उत्पन्न अवसादों का दोहरी जलभण्डार में निक्षेप होने से जलभण्डार में निक्षेप होने से जलभण्डार के भराव की प्रक्रिया तेज हो जायेगी।

(3) पुनर्वास की समस्या

टेहरी जलभण्डार के कारण 112 गांवों तथा टेहरी शहर के जलमग्न हो जाने से 1,25,000 लोग विस्थापित (बेघर) हो जायेंगे। इस परियोजना के अन्तर्गत प्रत्यक्ष रूप से विस्थापित लोगों के पुनर्वास के लिए समुचित व्यवस्था की गयी है परन्तु बांध के समीपवर्ती पहाड़ी ढालों पर रहने वाले 9,800 ग्रामीण तथा 3500 शहरी लोगों के पुनर्वास की कोई व्यवस्था नहीं है। इस बात का डर है कि जब टेहरी जलभण्डार को जल से भरा जायेग तो इन पहाड़ी ढालों पर व्यापक भूमिस्खलन होगा तथा इन ढालों पर रहने वाले लोगों को अन्यत्र बसाना पड़ेगा।

11.6 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर पड़ते प्रभाव की व्याख्या करें।

2) स्वास्थ्य सम्बन्धी नीतियों का वर्णन करें।

3) राष्ट्रीय पुनर्वास व पुनर्स्थापन नीति का उल्लेख करें।

11.7 सारांश (Summary)

हम कह सकते हैं कि जनसंख्या वृद्धि जन्म दर व मृत्यु दर से सम्बन्धि है। वास्तविक वृद्धि में आप्रवासन को सम्मिलित किया जाता है। यद्यपि मानव की जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है तथा मानव विस्थापन के बाद अन्य स्थान पर जब अपने रहने के लिए निवास का निर्माण करते हैं तो अत्यधिक मात्रा में पेड़–पौधों को काटा जाता है।

11.8 शब्दावली (Glossary)

- **परिवार** – परिवार साधारणतया पति, पत्नी और बच्चों के समूह को कहते हैं।
- **कृषि**– खेती और वानिकी के माध्यम से खाद्य और अन्य समान के उत्पादन से सम्बन्धित है।
- **वन**– भू क्षेत्र जहां वृक्षों का घनत्व सामान्य से अधिक है, उसे वन कहते हैं।

11.9 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 11.2.2 देखें।

2) सन्दर्भ 11.3.2 देखें।

3) सन्दर्भ 11.4.1 देखें।

11.10 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006

3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

11.11 अभ्यासात्मक–प्रश्न ;ज्मतउपदंस फनमेजपवदेद्ध

1) जनसंख्या वृद्धि से आप क्या समझते हैं?

2) स्वास्थ्य सम्बन्धी नीतियों की व्याख्या कीजिए।

*****

अध्याय – 12
प्राकृतिक संकट तथा आपदाएं

संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 आपदा

12.2.1 प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण

12.2.2 प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण का अंतर्राष्ट्रीय दशक माकोहामा रणनीति तथा सुरक्षित संसार के लिए कार्य योजना

12.3 भारत में प्राकृतिक आपदाएं

12.3.1 भूकम्प

12.3.2 भूकम्प के सामाजिक पर्यावरणीय परिणाम

12.3.3 भूकम्प के प्रभाव

12.3.4 भूकम्प न्यूनीकरण

12.3.5 सुनामी

12.3.6 उष्ण कटिबंधीय चक्रवात

12.3.7 उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की संरचना

12.4 भारत में चक्रवातों का क्षेत्रीय और समयानुसार वितरण

12.4.1 उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के परिणाम

12.5 बाढ़

12.5.1 बाढ़ का परिणाम और नियंत्रण

12.6 सूखा

12.6.1 सूखे के प्रकार

12.6.2 भारत में सूखा ग्रस्त क्षेत्र

12.6.3 अत्यधिक सूखा प्रभावित क्षेत्र

12.6.4 सूखे के परिणाम

12.7 भूस्खलन

12.7.1 भूस्खलनों के परिणाम

12.7.2 भूस्खलन का निवारण

12.8 आपदा प्रबंधन

12.8.1 आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005

12.9 स्वयं जांच प्रश्न
12.10 सारांश
12.11 शब्दावली
12.12 स्वयं जांच उत्तर
12.13 सन्दर्भ–ग्रन्थ
12.14 अभ्यासात्मक–प्रश्न

12.0 प्रस्तावना (Introduction)

आपने सुनामी के बारे में पढ़ा होगा या उसके प्रकोप की तस्वीरें टेलीविजन पर देखी होंगी। आपको कश्मीर में नियंत्रण रेखा के दोनों तरफ आए भयावह भूकंप की जानकारी भी होगी। इन आपदाओं से होने वाले जान और माल के नुकसान ने हमें हिला कर रख दिया था। ये परिघटनाओं के रूप में क्या हैं और कैसे घटती हैं? हम इनसे अपने आपको कैसे बचा सकते हैं? ये कुछ सवाल हैं, जो हमारे दिमाग में आते हैं। इस अध्ययन में हम इन्हीं सवालों को विश्लेषण करने की कोशिश करेंगे।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है, जो विभिन्न तत्त्वों में, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, पदार्थ हो या अपदार्थ, अनवरत चलती रहती है तथा हमारे प्राकृतिक और सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण को प्रभावित करती है। यह प्रक्रिया हर जगह व्याप्त है परन्तु इसके परिणाम, सघनता और पैमाने में अन्तर होता है। ये बदलाव धीमी गति से भी आ सकते हैं, जैसे– स्थलाकृतियों और जीवों में। ये बदलाव तेज गति से भी आ सकते हैं, जैसे– ज्वालामुखी विस्फोट, सुनामी, भूकंप और तूफान इत्यादि। इसी प्रकार इसका प्रभाव छोटे क्षेत्र तक सीमित हो सकता है, जैसे– आँधी, करकापात और टॉरनेडो और इतना व्यापक हो सकता है, जैसे– भूमंडलीय उष्णीकरण और ओजोन परत का ह्रास।

इसके अतिरिक्त परिवर्तन का विभिन्न लोगों के लिए भिन्न–भिन्न अर्थ होता है। यह इनको समझने की कोशिश करने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। प्रकृति के दृष्टिकोण से परिवर्तन मूल्य–तटस्थ होता है (न अच्छा होता है और न बुरा)। परन्तु मानव दृष्टिकोण से परिवर्तन मूल्य बोझिल होता है। कुछ परिवर्तन अपेक्षित और अच्छे होते हैं, जैसे– ऋतुओं में परिवर्तन, फलों का पकाना आदि जबकि कुछ परिवर्तन अनपेछित और बुरे होते हैं, जैसे– भूकंप, बाढ़ और युद्ध।

इस अध्याय में हम कुछ ऐसे परिवर्तनों को समझने की कोशिश करेंगे जो बुरे माने जाते हैं और जो बहुत लम्बे समय से मानव को भयभीत किए हुए हैं। सामान्यतः आपदा और विशेष रूप से प्राकृतिक आपदाओं से मानव हमेशा भयभीत रहा है।

आप अपने पर्यावरण का प्रेक्षण करें और उन परिवर्तनों की सूची तैयार करें तो दीर्घकालीन हैं और उनकी भी जो अल्पकालीन हैं। क्या आप जानते हैं कि क्यों कुछ बदलाव अच्छे समझे जाते हैं और दूसरे बुरे? उन बदलावों की सूची बनाएं, जो आप हर रोज अनुभव करते हैं? कारण बताएं कि क्यों इनमें से कुछ अच्छे और दूसरे बुरे माने जाते हैं।

12.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- आपदा के बारे में पता चलेगा।
- भारत में प्राकृतिक आपदा की विस्तृत चर्चा करेंगे।
- सूखा के बारे में जानेंगे।

12.2 आपदा क्या है?

आपदा प्रायः एक अनपेक्षित घटना होती है, जो ऐसी ताकतों द्वारा घटित होती है, जो मानव के नियंत्रण में नहीं है। यह थोड़े समय में और बिना चेतावनी के घटित होती है जिसकी वजह से मानव जीवन के क्रियाकलाप अवरूद्ध होते हैं तथा बड़े पैमाने पर जानमाल का नुकसान होता है। अतः इससे निपटने के लिए हमें सामान्यतः दी जाने वाली वैधानिक आपातकालीन सेवाओं की अपेक्षा अधिक प्रयत्न करने पड़ते हैं।

लम्बे समय एक भौगोलिक साहित्य में आपदाओं को प्राकृतिक बलों का परिणाम माना जाता रहा और मानव को इनका अबोध एवं असहाय शिकार, परन्तु प्राकृतिक बल ही आपदाओं के एकमात्र कारक नहीं हैं। आपदाओं की उत्पत्ति का सम्बन्ध मानव क्रियाकलापों से भी है। कुछ मानवीय गतिविधियाँ तो सीधे रूप से इन आपदाओं के लिए उत्तरदायी हैं। भोपाल गैस त्रासदी, चेरनोबिल नाभिकीय आपदा, युद्ध, सी एक सी (क्लोरोफलोरो कार्बन) गैसे वायुमंडल में छोड़ना तथा ग्रीन हाउस गैसें, ध्वनि, वायु, जल तथा मिट्टी सम्बन्धी पर्यावरण प्रदूषण आदि आपदाएं इसके उदाहरण हैं। कुछ मानवीय गतिविधियाँ परोक्ष रूप से भी आपदाओं को बढ़ावा देती हैं। वनों को काटने की वजह से भू–स्खलन और बाढ़, भंगुर जमीन पर निर्माण कार्य और अवैज्ञानिक भूमि उपयोग कुछ उदाहरण हैं जिनकी वजह से आपदा परोक्ष रूप में प्रभावित होता है। क्या आप अपने पड़ोस या विद्यालय के आस–पास चल रही गतिविधियों की पहचान कर सकते हैं जिनकी वजह से भविष्य में आपदाएं आ सकती हैं? क्या आप इनसे बचाव के लिए सुझाव दे सकते हैं? यह सर्वमान्य है कि पिछले कुछ सालों से मानवकृत आपदाओं की संख्या और परिणाम, दोनों में ही वृद्धि हुई है और कई स्तर पर ऐसी घटनाओं से बचने के भरसक प्रयत्न किए जा रहे हैं। यद्यपि इस सन्दर्भ में अब तक सफलता नाम मात्र ही हाथ लगी है, परन्तु इन मानवकृत आपदाओं में से कुछ का निवारण सम्भव है। इसके विपरीत प्राकृतिक आपदाओं पर रोक लगाने की सम्भावना बहुत कम है इसलिए सबसे अच्छा तरीका है इनके असर को कम करना और इनका प्रबन्ध करना। इस दिशा में विभिन्न स्तरों पर कई प्रकार के ठोस कदम उठाए गए हैं जिनमें भारतीय राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान की स्थापना, 1993 में रियो डि जनेरो, ब्राजील में भू–शिखर सम्मेलन (Earth Summit) और मई 1994 में यॉकोहामा, जापान में आपदा प्रबन्ध पर विश्व संगोष्ठी आदि, विभिन्न स्तरों पर इस दिशा में उठाए जाने वाले ठोस कदम हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि विद्वान आपदा और प्राकृतिक संकट शब्दों का इस्तेमाल एक–दूसरे की जगह कर लेते हैं। ये दोनों एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं परन्तु फिर भी इनमें अन्तर हैं। इसलिए इन दोनों में भेद करना आवश्यक है।

प्राकृतिक संकट, प्राकृतिक पर्यावरण में हालात के वे तत्त्व हैं जिनसे धन–जन या दोनों को नुकसान पहुंचने की सम्भाव्यता होती है। ये बहुत तीव्र हो सकते हैं या पर्यावरण विशेष के स्थायी पक्ष भी हो सकते हैं, जैसे– महासागरीय धाराएं, हिमालय में तीव्र ढाल तथा अस्थिर संरचनात्मक आकृतियाँ अथवा रेगिस्तानों तथा हिमाच्छादित क्षेत्रों में विषम जलवायु दशाएं आदि।

प्राकृतिक संकट की तुलना में प्राकृतिक आपदाएं अपेक्षाकृत तीव्रता से घटित होती हैं तथा बड़े पैमाने पर जन–धन की हानि तथा सामाजिक तंत्र एवं जीवन को छिन्न–भिन्न कर देती हैं तथा उन पर लोगों का बहुत कम या कुछ भी नियंत्रण नहीं होता।

सामान्यतः प्राकृतिक आपदाएं संसार भर के लोगों के व्यापकीकृत (Generalised) अनुभव होते हैं और दो आपदाएं न तो समान होती हैं और न उनमें आपस में तुलना की जा सकती है। प्रत्येक आपदा, अपने नियंत्रणकारी सामाजिक–पर्यावरणीय घटकों, सामाजिक अनुक्रिया, जो यह उत्पन्न करते हैं तथा जिस ढंग से प्रत्येक सामाजिक वर्ग इससे निपटता है, अद्वितीय होती है। ऊपर व्यक्त विचार तीन महत्त्वपूर्ण चीजों को इंगित करता है। पहला, प्राकृतिक आपदा के परिणाम, गहनता एवं बारंबारता तथा इसके द्वारा किए गए नुकसान

समयांतर पर बढ़ते जा रहे हैं। दूसरे, संसार के लोगों में इन आपदाओं द्वारा पैदा किए हुए भय के प्रति चिंता बढ़ रही है तथा इनसे जान–माल की क्षति को कम करने का रास्ता ढूंढने का प्रयत्न कर रहे हैं और अंततः प्राकृतिक आपदा के प्रारूप में समयांतर पर महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है।

प्राकृतिक आपदाओं एवं संकटों के अवगम में परिवर्तन भी आया है। पहले प्राकृतिक आपदाएं एवं संकट, दो परस्पर अंतर्संबंधी परिघटनाएं समझी जाती थी, अर्थात् जिन क्षेत्रों में प्राकृतिक संकट आते थे, वे आपदाओं के द्वारा भी सुभेद्य थे। अतः उस समय मानव पारिस्थितिक तंत्र के साथ ज्यादा छेड़छाड़ नहीं करता था। इसलिए इन आपदाओं से नुकसान कम होता था। तकनीकी विकास ने मानव को, पर्यावरण को प्रभावित करने की बहुत क्षमता प्रदान कर दी है। परिणामतः मनुष्य ने आपदा के खतरे वाले क्षेत्रों में गहन क्रियाकलाप शुरू कर दिया है और इस प्रकार आपदाओं की सुभेद्यता को बढ़ा दिया है। अधिकांश नदियों के बाढ़–मैदानों में भू–उपयोग तथा भूमि की कीमतों के कारण तथा तटों पर बड़े नगरों एवं बंदरगाहों, जैसे– मुंबई तथा चेन्नई आदि के विकास ने इन क्षेत्रों को चक्रवातों, प्रभंजनों तथा सुनामी आदि के लिए सुभेद्य बना दिया है। इन प्रेक्षणों की पुष्टि सारणी 12.1 में दिए गए आंकड़ों से भी हो सकती है, जो पिछले 60 वर्षों में 12 गंभीर प्राकृतिक आपदाओं से विभिन्न देशों में मरने वालों के परिमाण दर्शाता है।

यह सारणी से स्पष्ट है कि प्राकृतिक आपदाओं ने विस्तृत रूप से जन एवं धन की हानि की है। इस स्थिति से निपटने के लिए भरसक प्रयत्न किए जा रहे हैं। यह भी महसूस किया जा रहा है प्राकृतिक आपदा द्वारा पहुंचाई गई क्षति के परिणाम भू–मण्डलीय प्रतिघात है और अकेले किसी राष्ट्र में इतनी क्षमता नहीं है कि वह इन्हें सहन कर पाए। अतः 1989 में संयुक्त राष्ट्र सामान्य असेंबली में इस मुद्दे को उठाया गया था और मई 1994 में जापान के यॉकोहामा नगर में आपदा प्रबंधन की विश्व कान्फ्रेंस में इसे औपचारिकता प्रदान कर दी गई और यही बाद में 'यॉकोहामा रणनीति तथा अधिक सुरक्षित संसार के लिए कार्य योजना' कहा गया।

सारणी 12.1

1948 से अब तक की प्रमुख प्राकृतिक आपदाएं

वर्ष	स्थान	प्रकार	मृत्यु
1948	सोवियत संघ (अब रूस)	भूकंप	110,000
1949	चीन	बाढ़	57,000
1954	चीन	बाढ़	30,000
1965	पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश)	उष्ण कटिबंधीय चक्रवात	36,000
1968	ईरान	भूकंप	30,000
1970	पेरू	भूकंप	66,794
1970	पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश)	उष्ण कटिबंधीय चक्रवात	500,000
1971	भारत	उष्ण कटिबंधीय चक्रवात	30,000
1976	चीन	भूकंप	700,000
1990	ईरान	भूकंप	50,000
2004	इंडोनेशिया, श्रीलंका, भारत आदि	सुनामी	500.000*
2005	पाकिस्तान, भारत	भूकंप	70,000*
2011	जापान	सुनामी	15,842*

स्त्रोत : यूनाईटेड नेशन्स : ..... प्रोग्राम (यू.एन.इ.प्रो.), 1991

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान की न्यूज रिपोर्ट, भारत सरकार, नई दिल्ली।

12.2.1 प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण

विश्वभर में लोग विभिन्न प्रकार की आपदाओं को अनुभव करते हैं और उनका सामना करते हुए इन्हें सहन करते हैं। अब लोग इसके बारे में जागरूक हैं और इससे होने वाले नुकसान को कम करने की चेष्टा में कार्यरत हैं। इनके प्रभाव को कम करने के लिए विभिन्न स्तरों पर विभिन्न कदम उठाए जा रहे हैं। प्राकृतिक आपदाओं से, दक्षता से निपटने के लिए उनकी पहचान एवं वर्गीकरण को एक प्रभावशाली तथा वैज्ञानिक कदम समझा जा रहा है। प्राकृतिक आपदा को मोटे तौर पर चार प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है (सारणी 12.2)। भारत उन देशों में है, जहां सारणी 7.2 में दी गई सभी प्राकृतिक आपदाएं घटित हो चुकी हैं। इन आपदाओं की वजह से भारत में हर वर्ष हज़ारों लोगों की जान जाती है और करोड़ों रुपये का माली नुकसान होता है। आगे भारत में सबसे नुकसानदायक प्राकृतिक आपदाओं का वर्णन किया गया है।

सारणी 12.2

प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण

वायुमंडलीय	भौमिक	जलीय	जैविक
बर्फानी तूफान तड़ितझंझा तड़ित टॉरनेडो उष्ण कटिबंधीय चक्रवात सूखा करकापात पाला, लू, शीतलहर	भूकंप ज्वालामुखी भू–स्खलन हिमघाव अवतलन मृदा अपरदन	बाढ़ ज्वार महासागरीय धाराएं तूफान महोर्मि सुनामी	पौधे व जानवर उपनिवेशक के रूप में (टिड्डीयाँ इत्यादि)। कीट ग्रसन– फफूंद, वैक्टीरिया और वायरल संक्रमण बर्ड लू, डेंगू इत्यादि।

12.2.2 प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण का अंतर्राष्ट्रीय दशक यॉकोहामा रणनीति तथा सुरक्षित संसार के लिए कार्य योजना

संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देश तथा अन्य देशों की एक बैठक 'प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण' विश्व कांफ्रेंस 23 से 27 मई 1994 को यॉकोहामा नगर में हुई। इस बैठक में यह स्वीकार किया गया कि पिछले कुछ वर्षों में प्राकृतिक आपदाओं के कारण मानव जीवन तथा आर्थिक क्षति अधिक हुई है तथा समाज, सामान्यत प्राकृतिक आपदाओं के लिए सुभेद्य हो गया है। यह भी स्वीकार किया गया कि ये आपदाएं विशेषतः विकासशील देशों के गरीबों एवं साधनहीन समुदायों को अधिक प्रभावित करती हैं क्योंकि ये देश इनका मुकाबला करने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए इस बैठक में एक दशक तथा उसके बाद भी इन आपदाओं से होने वाली क्षति को कम करने की रणनीति यॉकोहामा रणनीति के नाम से अपनाई गई।

विश्व बैठक में प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण के लिए पारित प्रस्ताव निम्नलिखित हैं–

(1) यह दर्ज होगा कि हर देश की प्रमुख जिम्मेदारी है कि वे प्राकृतिक आपदा से अपने नागरिकों की रक्षा करें।

(2) यह विकासशील देशों, विशेष रूप से, सबसे कम विकसित एवं चारों ओर से भू–बृद्ध देशों तथा छोटे द्वीपीय विकासशील देशों पर आग्रतापूर्वक ध्यान देगा।

(3) जहां भी ठीक समझा जाएगा, वहां आपदा से बचाव, निवारण एवं तैयारी के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कानून बना कर क्षमता एवं सामर्थ्य का विकास करेगा तथा इस कार्य में स्वैच्छिक संगठनों तथा स्थानीय समुदायों को संगठित किया जाना चाहिए।

(4) यह उप–क्षेत्रीय, क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा उन कार्यों को बढ़ावा तथा मजबूती देगा जिनसे प्राकृतिक तथा दूसरी आपदाओं को रोका अथवा कम किया जा सके या उसका निवारण किया जा सके। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित पर विशेष बल दिया जाएगा–

(क) मानव तथा संस्थागत क्षमता निर्माण तथा सशक्तिकरण;

(ख) तकनीकों में भागीदारीः सूचना का एकत्रण, प्रकीर्णन ;क्पेमउपदंजपवदद्ध तथा उपयोग और;

(ग) संसाधनों का संग्रह करना।

1999–2000 को आपदा न्यूनीकरण का अंतर्राष्ट्रीय दशक भी घोषित किया गया।

12.3 भारत में प्राकृतिक आपदाएं

भारत एक प्राकृतिक और सामाजिक–सांस्कृतिक विविधताओं वाला देश है। बृहत भौगोलिक आकार, पर्यावरणीय विविधताओं और सांस्कृतिक बहुलता के कारण भारत को 'भारतीय उपमहाद्वीप' और अनेकता में एकता वाली धरती' के नाम से जाना जाता है। बृहत आकार, प्राकृतिक परिस्थितियों में विभिन्नता, लंबे समय तक उपनिवेशन, अभी भी जारी सामाजिक भेदमूलन तथा बहुत अधिक जनसंख्या के कारण भारत की प्राकृतिक आपदाओं द्वारा सुभेद्यता (Vulnerability) को बढ़ा दिया है। इन प्रेक्षणों को भारत की कुछ मुख्य प्राकृतिक आपदाओं के वर्णन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

12.3.1 भूकंप

भूकंप सबसे ज्यादा अपूर्वसूचनीय और विध्वसंक प्राकृतिक आपदा है। आपने पहले ही अपनी पुस्तक 'प्राकृतिक भूगोल के सिद्धान्त, रा.शै.अ.प्र.प., 2006' में भूकंपों के कारणे के बारे में पढ़ा है। भूकंपों की उत्पत्ति विवर्तनिकी से सम्बन्धित है। ये विध्वंसक है और विस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। भूकंप पृथ्वी की ऊपरी सतह में विवर्तनिक गतिविधियों से निकली ऊर्जा से पैदा होते हैं। इसकी तुलना में ज्वालामुखी विस्फोट, चट्टान, गिरने, भू–स्खलन, जमीन के अवतलन (धंसने) (विशेषकर खदानों वाले क्षेत्र में), बांध व जलाशयों के बैठने इत्यादि से आने वाला भूकंप कम क्षेत्र को प्रभावित करता है और नुकसान भी कम पहुंचाता है।

इंडियन प्लेट प्रति वर्ष उत्तर व उत्तर–पूर्व दिशा में एक सेंटीमीटर खिसक रही है, परंतु उत्तर में स्थित यूरेशियन प्लेट इसके लिए अवरोध पैदा करती है। परिणामस्वरूप इन प्लेटों के किनारे लॉक हो जाते हैं और कई स्थानों पर लगातार ऊर्जा संग्रह होता रहता है। अधिक मात्रा में ऊर्जा संग्रह से तनाव बढ़ाता रहता है और दोनों प्लेटों के बीच लॉक टूट जाता है और एकाएक ऊर्जा मोचन से हिमालय के चाप के साथ भूकंप आ जाता है। इससे प्रभावित मुख्य केन्द्र शासित प्रदेशों और राज्यों में जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल का दार्जिलिंग उपमंडल तथा उत्तर–पूर्व के सात राज्य शामिल हैं।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त, मध्य–पश्चिमी क्षेत्र, विशेषकर गुजरात (1918, 1956 और 2001) और महाराष्ट्र (1967 और 1993) में कुछ प्रचंड भूकंप आए हैं। लंबे समय तक भूवैज्ञानिक प्रायद्वीपीय पठार, जो कि सबसे पुराना, स्थिर और प्रौढ़ भूभाग है, पर आए इन भूकंपों की व्याख्या करने में कठिनाई महसूस करते हैं। कुछ समय पहले भूवैज्ञानिकों ने एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जिसके अनुसार लातूर और ओसमानाबाद (महाराष्ट्र) के नजदीक भीमा (कृष्णा) नदी के साथ–साथ एक भ्रंश रेखा विकसित हुई है। इसके साथ ऊर्जा संग्रह होता है तथा इसकी विमुक्ति भूकंप का कारण बनती है। इस सिद्धांत के अनुसार संभवतः इंडियन प्लेट टूट रही है।

राष्ट्रीय भूभौतिकी प्रयोगशाला, भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण, मौसम विज्ञान विभाग, भारत सरकार और इनके साथ कुछ समय पूर्व बने राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान ने भारत में आए 1200 भूकंपों का गहन विश्लेषण किया और भारत को निम्नलिखित पाँच भूकंपीय क्षेत्रों (Zones) में बांटा है।

1) अति अधिक क्षति जोखिम क्षेत्र

2) अधिक क्षति जोखिम क्षेत्र

3) मध्यम क्षति जोखिम क्षेत्र

4) निम्न क्षति जोखिम क्षेत्र

5) अति निम्न क्षति जोखिम क्षेत्र

इनमें से पहले दो क्षेत्रों में भारत के सबसे प्रचंड भूकंप अनुभव किए गए हैं। भूकंप सुभेद्य क्षेत्रों में उत्तरी–पूर्वी प्रांत, दरभंगा से उत्तर में स्थित क्षेत्र तथा अरेरिया (बिहार में भारत–नेपाल सीमा के साथ), उत्तराखण्ड, पश्चिमी हिमाचल प्रदेश (धर्मशाला के चारों ओर), कश्मीर घाटी और कच्छ (गुजरात) शामिल हैं। ये अति अधिक क्षति जोखिक क्षेत्र का हिस्सा है। जम्मू और कश्मीर, लद्दाख और हिमाचल प्रदेश के बचे हुए भाग, उत्तरी पंजाब, हरियाणा का पूर्वी भाग, दिल्ली, पश्चिम उत्तर प्रदेश और उत्तर बिहार अधिक क्षति जोखिम क्षेत्र में आते हैं। देश के बचे हुए भाग मध्य तथा निम्न क्षति जोखिम में है। भूकंप से सुरक्षित समझे जाने वाले क्षेत्रों का एक बड़ा हिस्सा दक्कन पठार के स्थिर भूभाग में पड़ता है।

12.3.2 भूकंप के सामाजिक–पर्यावरणीय परिणाम

भूकंप के साथ भय जुड़ा है क्योंकि इससे बड़े पैमाने पर और बहुत तीव्रता के साथ भूतल पर विनाश होता है। अधिक जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्रों में तो यह आपदा कहर बरसाती है। ये न सिर्फ बस्तियों, बुनियादी ढाँचे, परिवहन व संचार व्यवस्था, उद्योग और अन्य विकासशील क्रियाओं को ध्वस्त करता है, अपितु लोगों को पीढ़ियों से संचित पदार्थ और सामाजिक–सांस्कृतिक विरासत भी नष्ट कर देता है। यह लोगों को बेघर कर देता है और इससे विकासशील देशों की कमज़ोर अर्थव्यवस्था पर गहरी चोट पहुंचाती है।

12.3.3 भूकंप के प्रभाव

भूकंप जिन क्षेत्रों में आते हैं उनमें सम्मिलित विनाशकारी प्रभाव पाए जाते हैं। इसके कुछ मुख्य प्रभाव तालिका 12.3 में दिए गए हैं–

तालिका 12.3

भूकंप के प्रभाव

भूतल पर	मानवकृत ढाँचों पर	जल पर
दरारें	दरारें पड़ना	लहरें
बस्तियां	खिसकना	जल–गतिशीलता दबाव
भू–स्खलन	उलटना	सुनामी
द्रवीकरण	आकुंचन	
भू–दबाव	निपात	
संभावित श्रृंखला प्रतिक्रिया	संभावित श्रृंखला प्रतिक्रिया	संभावित श्रृंखला प्रतिक्रिया

इसके अतिरिक्त भूकंप के कुछ गंभीर और दूरगामी पर्यावरणीय परिणाम हो सकते हैं। पृथ्वी की पर्पटी पर धरातलीय भूकंपी तरंगे दरारें डाल देती हैं जिसमें से पानी और दूसरा ज्वलनशील पदार्थ बाहर निकल आता है और आस–पड़ोस को डुबो देता है। भूकंप के कारण भू–स्खलन भी होता है, जो नदी वाहिकाओं को अवरूद्ध कर जलाशयों में बदल देता है। कई बार नदियां अपना रास्ता बदल लेती हैं जिससे प्रभावि क्षेत्र में बाढ़ और दूसरी आपदाएं आ जाती हैं।

12.3.4 भूकंप न्यूनीकरण

दूसरी आपदाओं की तुलना में भूकंप अधिक विध्वंसकारी हैं। चूंकि यह परिवहन और संचार व्यवस्था भी नष्ट कर देते हैं इसलिए लोगों तक राहत पहुंचाना कठिन होता है। भूकंप को रोका नहीं जा सकता। अतः इसके लिए विकल्प यह है कि इस आपदा से निपटने की तैयारी रखी जाए और इससे होने वाले नुकसान को कम किया जाए। इसके निम्नलिखित तरीके हैं:

1) भूकंप नियंत्रण केन्द्रों की स्थापना, जिससे भूकंप संभावित क्षेत्रों में लोगों को सूचना पहुंचाई जा सके। जी.पी.एस. (Geographical Positioning System) की मदद से प्लेट हलचल का पता लगाया जा सकता है।
2) देश में भूकंप संभावित क्षेत्रों का सुभेद्यता मानचित्र तैयार करना और संभावित जोखिम की सूचना लोगों तक पहुंचाना तथा उन्हें इसके प्रभाव को कम करने के बारे में शिक्षित करना।
3) भूकंप प्रभावित क्षेत्रों में घरों के प्रकार और भवन डिज़ाइन में सुधार लाना। ऐसे क्षेत्रों में ऊँची इमारतें, बड़े औद्योगिक संस्थान और शहरीकरण को बढ़ावा न देना।
4) अंततः भूकंप प्रभावित क्षेत्रों में भूकंप प्रतिरोधी (Resistant) इमारतें बनाना और सुभेद्य क्षेत्रों में हल्के निर्माण सामग्री का इस्तेमाल करना।

12.3.5 सुनामी

भूकंप और ज्वालामुखी से महासागरीय धरातल में अचानक हलचल पैदा होती है और महासागरीय जल का अचानक विस्थापन होता है। परिणामस्वरूप ऊर्ध्वाधर ऊँची तरंगे पैदा होती हैं जिन्हें सुनामी (बंदरगाह लहरें) या भूकंपीय समुद्री लहरें कहा जाता है। सामान्यतः शुरू में सिर्फ एक ऊर्ध्वाधर तरंग ही पैदा होती है, परंतु कालांतर में जल तरंगों की एक श्रृंखला बन जाती है क्योंकि प्रारंभिक तरंग की ऊँची शिखर और नीची गर्त के बीच जल अपना स्तर बनाए रखने की कोशिश करता है।

महासागर में जल तरंग की गति जल की गहराई पर निर्भर करती है। इसकी गति उथले समुद्र में ज्यादा और गहरे समुद्र में कम होती है। परिणामस्वरूप महासागरों के अंदरूनी भाग इससे कम प्रभावित होते हैं। तटीय क्षेत्रों में ये तरंगे ज्यादा प्रभावी होती हैं और व्यापक नुकसान पहुंचाती है। इसलिए समुद्र में जलपोत पर, सुनामी का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। समुद्र के आंतरिक गहरे भाग में तो सुनामी महसूस भी नहीं होती। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि गहरे समुद्र में सुनामी की लहरों की लंबाई अधिक होती है और ऊँचाई कम होती है। इसलिए, समुद्र के इस भाग में सुनामी जलपोत को एक या दो मीटर तक ही ऊपर उठा सकती है और वह भी कई मिनट में। इसके विपरीत, जब सुनामी उथले समुद्र में प्रवेश करती है, इसकी तरंग लंबाई कम होती चली जाती है, समय वही रहता है और तरंग की ऊँचाई बढ़ती जाती है। कई बार तो इसकी ऊँचाई 16 मीटर या इससे भी अधिक हो सकती है जिससे तटीय क्षेत्र में भीषण विध्वंस होता है। इसलिए इन्हें उथले जल की तरंगे भी कहते हैं। सुनामी आमतौर पर प्रशांत महासागरीय तट पर, जिसमें अलास्का, जापान, फिलिपाइन, दक्षिण–पूर्व एशिया के दूसरे द्वीप, इंडोनेशिया और मलेशिया तथा हिन्द महासागर में म्यांमार, श्रीलंका और भारत के तटीय भागों में आती है।

तट पर पहुंचने पर सुनामी तरंगे बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा निर्मुक्त करती हैं और समुद्र का जल तेजी से तटीय क्षेत्रों में घुस जाता है और बंदरगाह शहरों, कस्बों, अनेक प्रकार के ढांचों, इमारतों और बस्तियों को तबाह करता है। चूंकि विश्वभर में तटीय क्षेत्रों में जनसंख्या सघन होती है और ये क्षेत्र बहुत–सी मानव गतिविधियों के केंद्र होते हैं। अतः यहां दूसरी प्राकृतिक आपदाओं की तुलना में सुनामी अधिक जान–माल का नुकसान पहुंचाती है। सुनामी से हुई बर्बादी का अनुमान आपकी पुस्तक 'भूगोल में प्रायोगिक कार्य भाग–1, रा.शै.अ.प्र.प., 2006' में दिए हुए बांदा (इंडोनेशिया) के चित्र से लगाया जा सकता है। दूसरी प्राकृतिक आपदाओं की तुलना में सुनामी के प्रभाव को कम करना कठिन है क्योंकि इससे होने वाले नुकसान का पैमाना बहुत बृहत् है। किसी अकेले देश या सरकार के लिए सुनामी जैसी आपदा से निपटना संभव नहीं है। अतः इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रयास आवश्यक हैं जैसा कि 26 दिसम्बर, 2004 को आयी सुनामी के समय किया गया था। जिसके कारण 3 लाख से अधिक लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा था। इस सुनामी आपदा के बाद भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय सुनामी चेतावनी तंत्र में शामिल होने का फैसला किया है।

12.3.6 उष्ण कटिबंधीय चक्रवात

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात कम दबाव वाले उग्र मौसम तंत्र हैं और 300 उत्तर तथा 300 दक्षिण अक्षांशों के बीच पाए जाते हैं। ये आमतौर पर 500 से 1000 किलोमीटर क्षेत्र में फैला होता है और इसकी ऊर्ध्वाधर ऊँचाई 12 से 14 किलोमीटर हो सकती है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात या प्रभंजन एक ऊष्मा इंजन की तरह होते है, जिसे ऊर्जा प्राप्ति, समुद्र सतह से प्राप्त जलवाष्प की संघनन प्रक्रिया में छोड़ी गई गुप्त ऊष्मा से होती है।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिकों में मतभेद हैं। इनकी उत्पत्ति के लिए निम्नलिखित प्रारंभिक परिस्थितियों का होना आवश्यक है।

1) लगातार और पर्याप्त मात्रा में उष्ण व आर्द्र वायु की सतत् उपलब्धता जिससे बहुत बड़ी मात्रा में गुप्त ऊष्मा निर्मुक्त हो।
2) तीव्र कोरियोलिस बल जो केंद्र के निम्न वायु दाब को भरने ने दे। (भूमध्य रेखा के आस पास 00 से 50 कोरियोलिस बल कम होता है और परिणामस्वरूप यहां ये चक्रवात उत्पन्न नहीं होते)
3) क्षोभमंडल में अस्थिरता, जिससे स्थानीय स्तर पर निम्न वायु दाब क्षेत्र बन जाते हैं। इन्हीं के चारों ओर चक्रवात भी विकसित हो सकते हैं।
4) मजबूत ऊर्ध्वाधर वायु फान (Wedge) की अनुपस्थिति, जो नम और गुप्त ऊष्मा युक्त वायु के ऊर्ध्वाधर बहाव को अवरूद्ध करे।

12.3.7 उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की संरचना

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात में वायुदाब प्रवणता बहुत अधिक होती है। चक्रवात का केंद्र गर्म वायु तथा निम्न वायुदाब और मेघरहित क्रोड होता है। इसे 'तूफान की आँख' कहा जाता है। सामान्यतः समदाब रेखाएं एक–दूसरे के नजदीक होती हैं जो उच्च वायुदाब प्रवणता का प्रतीक है। वायुदाब प्रवणता 14 से 17 मिलीबार/100 किलोमीटर के आसपास होता है। कई बार यह 60 मिलीबार/100 किलोमीटर तक हो सकती है। केंद्र से पवन पट्टी का विस्तार 10 से 150 किलोमीटर तक होता है।

12.4 भारत में चक्रवातों का क्षेत्रीय और समयानुसार वितरण

भारत की आकृति प्रायद्वीपीय है और इसके पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में अरब सागर है। अतः यहां आने वाले चक्रपात इन्हीं दो जलीय क्षेत्रों में पैदा होते हैं। मानसूनी मौसम के दौरान चक्रवात 100 से 150 उत्तर अक्षांशों के बीच पैदा होते हैं। बंगाल की खाड़ी में चक्रवात ज्यादातर अक्तूबर और नवम्बर में बनते हैं। यहां ये चक्रवात 160 से 210 उत्तर तथा 920 पूर्व देशांतर से पश्चिम में पैदा होते हैं, परन्तु जुलाई में ये सुन्दर वन डेल्टा के करीब 800 उत्तर और 900 पूर्व देशांतर से पश्चिम में उत्पन्न होते हैं।

12.4.1 उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के परिणाम

यह पहले बताया जा चुका है कि उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की ऊर्जा का स्रोत उष्ण आर्द्र वायु से प्राप्त होने वाली गुप्त ऊष्मा है। अतः समुद्र से दूरी बढ़ने पर चक्रवात का बल कमज़ोर हो जाता है। भारत में, चक्रवात जैसे–जैसे बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से दूर जाता है उसका बल कमज़ोर हो जाता है। तटीय क्षेत्रों में अकसर उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों 180 किलोमीटर प्रतिघंटा की गति से टकराते हैं। इससे तूफानी क्षेत्र में समुद्र तल भी असाधारण रूप से ऊपर उठा होता है जिसे 'तूफान महोर्मि' (Storm surge) कहा जाता है। इससे तटीय क्षेत्र में बस्तियां, खेत पानी में डूब जाते हैं तथा फसलों और कई प्रकार के मानवकृत ढांचों का विनाश होता है।

समुद्र तल में महोर्मि वायु, समुद्र और जमीन की अंतःक्रिया से उत्पन्न होता है। तूफान में अत्यधिक वायुदाब प्रवणता और अत्यधिक तेज सतही पवनें उफान को उठाने वाले बल हैं। इससे समुद्री जल तटीय क्षेत्रों में घुस जाता है, वायु की गति तेज होती है और भारी वर्षा होती है।

12.5 बाढ़

आपने बाढ़ के बारे में समाचार पत्रों में पढ़ा होगा और टेलीविजन पर इसके दृश्य देखें होंगे कि किस तरह कुछ क्षेत्र वर्षा ऋतु में बाढ़ ग्रस्त हो जाते हैं। नदी का जल उफान के समय जल वाहिकाओं को तोड़ता हुआ मानव बस्तियों और आस–पास की जमीन पर खड़ा हो जाता है और बाढ़ की स्थिति पैदा कर देता है। दूसरी प्राकृतिक आपदाओं की तुलना में बाढ़ आने के कारण जाने–पहचाने हैं। बाढ़ आमतौर पर अचानक नहीं आती और कुछ विशेष क्षेत्रों और ऋतु में ही आती है। बाढ़ तब आती है जब नदी जल–वाहिकाओं में इनकी क्षमता से अधिक जल बहाव होता है और जल, बाढ़ के रूप में मैदान के निचले हिस्सों में भर जाता है। कई बार तो झीलें और आंतरिक जल क्षेत्रों में भी क्षमता से अधिक जल भर जाता है। बाढ़ आने के और भी कई कारण हो सकते हैं, जैसे– तटीय क्षेत्रों में तूफानी महोर्मि, लंबे समय तक होने वाली तेज बारिश, हिम का पिघलना, जमीन की अंतःस्पंदन (infiltration) दर में कमी आना और अधिक मृदा अपरदन के कारण नदी जल में जलोढ़ की मात्रा में वृद्धि होना। हालांकि बाढ़ विश्व में विस्तृत क्षेत्र में आती है तथा काफी तबाही लाती है, परन्तु दक्षिण, दक्षिण–पूर्व और पूर्व एशिया के देशों, विशेषकर चीन, भारत और बांग्लादेश में इसकी बारंबारता और होने वाले नुकसान अधिक है।

दूसरी प्राकृतिक आपदाओं की तुलना में बाढ़ की उत्पत्ति और इसके क्षेत्रीय फैलाव में मानव एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मानवीय क्रियाकलापों, अंधाधुंध वन कटाव, अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियां, प्राकृतिक अपवाह तंत्रों का अवरूद्ध होना तथा नदी तल और बाढ़कृत मैदानों पर मानव बसाव की वजह से बाढ़ की तीव्रता, परिमाण और विध्वंसता बढ़ जाती है।

भारत के विभिन्न राज्यों में बार–बार आने वाली बाढ़ के कारण जान–माल का भारी नुकसान होता है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने देश में 4 करोड़ हैक्टेयर भूमि को बाढ़ प्रभावित क्षेत्र घोषित किया है। मानचित्र 7.6 भारत के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों को दर्शाता है। असम, पश्चिम बंगाल और बिहार राज्य सबसे अधिक बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में से हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत की ज्यादातर नदियां, विशेषकर पंजाब और उत्तर प्रदेश में बाढ़ लाती रहती है। राजस्थान, गुजरात, हरियाणा और पंजाब, आकस्मिक बाढ़ से पिछले कुछ दशकों में जलमग्न होते रहे हैं। इसका कारण मानसून वर्षा की तीव्रता तथा मानव कार्यकलापों द्वारा प्राकृतिक अपवाह तंत्र का अवरूद्ध होना है। कई बार तमिलनाडु में बाढ़ नवम्बर से जवरी माह के बीच वापिस लौटती मानसून द्वारा आती है।

12.5.1 बाढ़ परिणाम और नियंत्रण

असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश (मैदानी क्षेत्र) और उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और गुजरात के तटीय क्षेत्र तथा पंजाब, राजस्थान, उत्तर गुजरात और हरियाणा में बार–बार बाढ़ आने और कृषि भूमि तथा मानव बस्तियों के डूबने से देश की आर्थिक व्यवस्था तथा समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बाढ़ न सिर्फ फसलों को बर्बाद करती है बल्कि आधारभूत ढांचा, जैसे– सड़कें, रेल पटरी, पुल और मानव बस्तियों को भी नुकसान पहुंचाती है। बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में कई तरह की बीमारियां, जैसे– हैजा, आंत्रशोथ, हेपेटाईटिस और दूसरी दूषित जल जनित बीमारियां फैल जाती हैं। दूसरी ओर बाढ़ से कुछ लाभ भी हैं। हर वर्ष बाढ़ खेतों में उपजाऊ मिट्टी लाकर जमा करती है जो फसलों के लिए बहुत लाभदायक है। बह्मपुत्र नदी में स्थित मजौली (असम) जो सबसे बड़ा नदीय द्वीप है, हर वर्ष बाढ़ ग्रस्त होता है। परन्तु यहां चावल की फसल बहुत अच्छी होती है। लेकिन ये लाभ भीषण नुकसान के सामने गौण मात्र है।

भारत सरकार और राज्य सरकारें हर वर्ष बाढ़ से पैदा होने वाली गंभीर स्थिति से अवगत है। ये सरकारें बाढ़ की स्थिति से कैसे निपटती हैं? इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण कदम इस प्रकार होने चाहिए– बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में तटबंध बनाना, नदियों पर बांध बनाना, वनीकरण और आमतौर पर बाढ़ लाने वाली नदियों के ऊपरी जल ग्रहण क्षेत्र में निर्माण कार्य पर प्रतिबंध लगाना। नदी वाहिकाओं पर बसे लोगों को कहीं और बसाना और बाढ़ के मैदानों में जनसंख्या के जमाव पर नियंत्रण रखना, इस दिशा में कुछ और कदम हो सकते हैं। आकस्मिक बाढ़ प्रभावित देश के पश्चिमी और उत्तरी भागों में यह ज्यादा उपयुक्त कदम होंगे। तटीय क्षेत्रों में चक्रवात सूचना केंद्र तूफान के उफान से होने वाले प्रभाव को कम कर सकते हैं।

12.6 सूखा

सूखा ऐसी स्थिति को कहा जाता है जब लंबे समय तक कम वर्षा, अत्यधिक वाष्पीकरण और जलाशयों तथा भूमिगत जल के अत्यधिक प्रयोग से भूतल पर जल की कमी हो जाए। सूखा एक जटिल परिघटना है जिसमें कई प्रकार के मौसम विज्ञान सम्बन्धी तथा अन्य तत्त्व जैसे– वृष्टि, वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, भौम जल, मृदा में नमी, जल भंडारण व भरण, कृषि पद्धतियां, विशेषतः उगई जाने वाली फसलें, सामाजिक–आर्थिक गतिविधियां और पारिस्थितिकी शामिल हैं।

12.6.1 सूखे के प्रकार

- **मौसमविज्ञान सम्बन्धी सूखा**

यह एक ऐसी स्थिति है, जिसमें लंबे समय तक अपर्याप्त वर्षा होती है और इसका सामयिक और स्थानिक वितरण भी असंतुलित होता है।

- **कृषि सूखा**

इसे भूमि–आर्द्रता सूखा भी कहा जाता है। मिट्टी में आर्द्रता की कमी के कारण फसलें मुरझा जाती हैं। जिन क्षेत्रों में 30 प्रतिशत से अधिक कुल बोये गए क्षेत्र में सिंचाई होती है, उन्हें भी सूखा प्रभावित क्षेत्र नहीं माना जाता।

- **जलविज्ञान सम्बन्धी सूखा**

यह स्थिति तब पैदा होती है जब विभिन्न जल संग्रहण, जलाशय, जलभूत और झीलें इत्यादि का स्तर वृष्टि द्वारा की जाने वाली जलापूर्ति के बाद भी नीचे गिर जाए।

- **पारिस्थितिक सूखा**

जब प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में जल की कमी से उत्पादकता में कमी हो जाती है और परिणामस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र में तनाव आ जाता है तथा यह क्षतिग्रस्त हो जाता है, तो परिस्थितिक सूखा कहलाता है।

भारत में सूखा ग्रस्त क्षेत्र

भारतीय कृषि काफी हद तक मानसून वर्षा पर निर्भर करती रही है। भारतीय जलवायु तंत्र में सूखा और बाढ़ महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। कुछ अनुमानों के अनुसार भारत में कुल भौगोलिक क्षेत्र का 19 प्रतिशत भाग और जनसंख्या का 12 प्रतिशत हिस्सा हर वर्ष सूखे से प्रभावित होता है। देश का लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्र सूखे से प्रभावित हो सकता है जिससे 5 करोड़ लोग इससे प्रभावित होते हैं। यह प्रायः देखा गया है कि जब देश के कुछ भागों में बाढ़ कहर ढा रही होती है, उसी समय दूसरे भाग सूखे से जूझ रहे होते हैं। यह मानसून में परिवर्तनशीलता और इसके व्यवहार में अनिश्चितता का परिणाम है। सूखे का प्रभाव भारत में बहुत व्यापक है, परंतु कुछ क्षेत्र जहां ये बार–बार पड़ते हैं और जहां उनका असर अधिक है सूखे की तीव्रता के आधार पर निम्नलिखित क्षेत्रों में बांटा गया है।

अत्यधिक सूखा प्रभावित क्षेत्र

राजस्थान में ज्यादातर भाग, विशेषकर अरावली के पश्चिम में स्थित मरुस्थली और गुजरात का कच्छ क्षेत्र अत्यधिक सूखा प्रभावित है। इसमें राजस्थान के जैसलमेर और बाड़मेर जिले भी शामिल हैं, जहां 90 मिलीमिटर से कम औसत वार्षिक वर्षा होती है।

अधिक सूखा प्रभावित क्षेत्र

इसमें राजस्थान के पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश के ज्यादातर भाग, महाराष्ट्र के पूर्वी भाग, आंध्र प्रदेश के अंदरूनी भाग, कर्नाटक का पठार, तमिलनाडु के उत्तरी भाग, झारखंड का दक्षिणी भाग और ओडिशा का आंतरिक भाग शामिल है।

मध्यम सूखा प्रभावित क्षेत्र

इस वर्ग में राजस्थान के उत्तरी भाग, हरियाणा, उत्तर प्रदेश के दक्षिणी जिले, गुजरात के बचे हुए जिले, कोंकण को छोड़कर महाराष्ट्र, झारखंड, तमिलनाडु में कोयंबटूर पठार और आंतरिक कर्नाटक शामिल हैं। भारत के बचे हुए भाग बहुत कम या न के बराबर सूखे से प्रभावित हैं।

12.6.2 सूखे के परिणाम

पर्यावरण और समाज पर सूखे का सोपान प्रभाव पड़ता है। फसलें बर्बाद होने से अन्न की कमी हो जाती है, जिसे अकाल कहा जाता है। चारा कम होने की स्थिति को तृण अकाल कहा जाता है। जल आपूर्ति की कमी जल अकाल कहलाती है, तीनों परिस्थितियां मिल जाएं तो त्रि–अकाल कहलाती है जो सबसे अधिक विध्वंसक है। सूखा प्रभावित क्षेत्रों में बृहत् पैमाने पर मवेशियों और अन्य पशुओं की मौत, मानव प्रवास तथा पशु पलायन एक सामान्य परिवेश है। पानी की कमी के कारण लोग दूषित जल पीने को बाध्य होते हैं। इसके परिणामस्वरूप पेयजल सम्बन्धी बीमारियां जैसे आंत्रशोथ, हैजा और हैपेटाईटिस हो जाती है।

सामाजिक और प्राकृतिक पर्यावरण पर सूखे का प्रभाव तत्कालिक एवं दीर्घकालिक होता है। इसलिए सूखे से निपटने के लिए तैयार की जा रही योजनाओं को उन्हें ध्यान में रखकर बनाना चाहिए। सूखे की स्थिति में तात्कालिक सहायता में सुरक्षित पेयजल वितरण, इवाइयां, पशुओं के लिए चारे और जल की उपलब्धता तथा लोगों और पशुओं को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाना शामिल है। सूखे से निपटने के लिए दीर्घकालिक योजनाओं में विभिन्न कदम उठाए जा सकते हैं, जैसे– भूमिगत जल के भंडारण का पता लगाना, जल आधिक्य क्षेत्रों से

अल्पजल क्षेत्रों में पानी पहुंचाना, नदियों को जोड़ना और बांध व जलाशयों का निर्माण इत्यादि। नदियां जोड़ने के लिए द्रोणियों की पहचान तथा भूमिगत जल भंडारण की संभावना का पता लगाने के लिए सुदूर संवेदन और उपग्रहों से प्राप्त चित्रों का प्रयोग करना चाहिए।

सूखा प्रतिरोधी फसलों के बारे में प्रचार–प्रसार सूखे से लड़ने के लिए एक दीर्घकालिक उपाय है। वर्षा जल संलवन (Rain Water Harvesting) सूखे का प्रभाव कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

12.7 भूस्खलन

क्या आपने श्रीनगर को जाने वाली सड़क तथा कोंकण रेल पटरी पर चट्टानें गिरने से रास्ता रुकने के बारे में पढ़ा है। यह भूस्खलन की वजह से होता है, जिसमें चट्टान समूह खिसककर ढाल से नीचे गिरता है। सामान्यतः भूस्खलन भूकंप, ज्वालामुखी फटने, सुनामी और चक्रवात की तुलना में कोई बड़ी घटना नहीं है, परन्तु इसका प्राकृतिक पर्यावरण और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अन्य आपदाओं के विपरीत, जो आकस्मिक, अननुमेय तथा बृहत स्तर पर दीर्घ एवं प्रादेशिक कारकों से नियंत्रित हैं, भूस्खलन मुख्य रूप से स्थानीय कारणों से उत्पन्न होते हैं। इसलिए भूस्खलन के बारे में आंकड़े एकत्र करना और इसकी संभावना का अनुमान लगाना न सिर्फ मुश्किल अपितु काफी महंगा पड़ता है।

भूस्खलन को पारिभाषित करना और इसके व्यवहार को शब्दों में बांधना मुश्किल कार्य है, परन्तु फिर भी पिछले अनुभवों, इसकी बारंबारता और इसके घटने को प्रभावित करने वाले कारकों, जैसे– भूविज्ञान, भूआकृतिक कारक, ढाल, भूमि उपयोग, वनस्पति आवरण और मानव क्रियाकलापों के आधार पर भारत को विभिन्न भूस्खलन क्षेत्रों में बांटा गया है।

अत्यधिक सुभेद्यता क्षेत्र

ज्यादा अस्थिर हिमालय की युवा पर्वप श्रृंखलाएं, अंडमान और निकोबार, पश्चिमी घाट और नीलगिरी में अधिक वर्षा वाले क्षेत्र, उत्तर–पूर्वी क्षेत्र, भूकंप प्रभावी क्षेत्र और अत्यधिक मानव क्रियाकलापों वाले क्षेत्र, जिसमें सड़क और बांध निर्माण इत्यादि आते हैं, अत्यधिक भूस्खलन सुभेद्यता क्षेत्रों में रख जाते हैं।

अधिक सुभेद्यता क्षेत्र

अधिक भूस्खलन सुभेद्यता क्षेत्रों में भी अत्यधिक सुभेद्यता क्षेत्रों से मिलती–जुलती परिस्थितियां हैं। दोनों में अंतर है, भूस्खलन को नियंत्रण करने वाले कारकों के संयोजन, गहनता और बारंबारता का। हिमालय क्षेत्र के सारे राज्य और उत्तर–पूर्वी भाग (असम को छोड़कर) इस क्षेत्र में शामिल हैं।

मध्यम और कम सुभेद्यता क्षेत्र

पार हिमालय के कम वृष्टि वाले क्षेत्र लद्दाख और हिमाचल प्रदेश में स्पीति, अरावली पहाड़ियों मे कम वर्षा वाला क्षेत्र, पश्चिमी व पूर्वी घाट के व दक्कन पठार के वृष्टि छाया क्षेत्र ऐसे इलाके हैं, जहां कभी–कभी भूस्खलन होता है। इसके अलावा झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, गोवा और केरल में खाद्दानों और भूमि धंसने से भूस्खलन होता रहता है।

अन्य क्षेत्र

भारत के अन्य क्षेत्र विशेषकर राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल (दार्जिलिंग जिले को छोड़कर) असम (कार्बी अनलोंग को छोड़कर) और दक्षिण प्रांतों के तटीय क्षेत्र भूस्खलन युक्त हैं।

12.7.1 भूस्खलनों के परिणाम

भूस्खलनों का प्रभाव अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में पाया जाता है तथा स्थानीय होता है, परन्तु सड़क मार्ग में अवरोध, रेलपटरियों का टूटना और जल वाहिकाओं में चट्टानें गिरने से पैदा हुई रुकावटों के गंभीर परिणाम हो सकते हैं। भूस्खलन की वजह से हुए नदी रास्तों में बदलाव बाढ़ ला सकते हैं और जान–माल का नुकसान हो सकता है। इससे इन क्षेत्रों में आवागमन मुश्किल हो जाता है और विकास कार्यों की रफ़्तार धीमी पड़ जाती है।

12.7.2 निवारण

भूस्खलन से निपटने के उपाय अलग–अलग क्षेत्रों के लिए अलग–अलग होने चाहिए। अधिक भूस्खलन संभावी क्षेत्रों में सड़क और बड़े बांध बनाने जैसे निर्माण कार्य तथा विकास कार्य पर प्रतिबंध होना चाहिए। इन क्षेत्रों में कृषि नदी घाटी तथा कम ढाल वाले क्षेत्रों तक सीमित होनी चाहिए तथा बड़ी विकास परियोजनाओं पर नियंत्रण होना चाहिए। सकारात्मक कार्य जैसे– बृहत स्तर पर वनीकरण को बढ़ावा और जल बहाव को कम करने के लिए बांध का निर्माण भूस्खलन के उपायों के पूरक हैं। स्थानांतरी कृषि वाले उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर कृषि की जानी चाहिए।

12.8 आपदा प्रबंधन

भूकंप, सुनामी और ज्वालामुखी की तुलना में चक्रवात के आने के समय एवं स्थान की भविष्यवाणी संभव है। इसके अतिरिक्त आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल करके चक्रवात की गहनता, दिशा और परिमाण आदि को मॉनीटर करके इससे होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। इससे होने वाले नुकसान को कम करने के लिए चक्रवात शेल्टर, तटबंध, डाइक, जलाश्य निर्माण तथा वायुवेग को कम करने के लिए वनीकरण जैसे कदम उठाए जा सकते हैं, फिर भी भारत, बांग्लादेश, म्यांमार इत्यादि देशों के तटीय क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या की सुभेद्यता अधिक है, इसीलिए यहां जान–माल का नुकसान बढ़ रहा है।

12.8.1 आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005

इस अधिनियम में आपदा को किसी क्षेत्र में घटित एक महाविपत्ति, दुर्घटना, संकट या गंभीर घटना के रूप में परिभाषित किया गया है, जो प्राकृतिक या मानवकृत कारणों या दुर्घटना या लापरवाही का परिणाम हो और जिससे बड़े स्तर पर जान की क्षति या मानव पीड़ा, पर्यावरण की हानि एवं विनाश हो और जिसकी प्रकृति या परिणाम प्रभावित क्षेत्र में रहने वाले मानव समुदाय की सहन क्षमता से परे हो।

12.9 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण कीजिए।

2) भूकम्प से आप क्या समझते हैं?

3) बाढ़ किसे कहते हैं?

4) सूखे के प्रकार की व्याख्या कीजिए।

12.10 सारांश (Summary)

ऊपरलिखित विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आपदाएएं प्राकृतिक या मानवकृत दोनों प्रकार की हो सकती हैं, परन्तु हर संकट आपदा भी नहीं होती। आपदाओं और विशेषकर प्राकृतिक आपदाओं पर नियंत्रण मुश्किल है। इसका बेहतर उपाय इनके निवारण की तैयारियां करना है। आपदा निवारण और प्रबंधन की तीन अवस्थाएं हैं:

(1) **आपदा से पहले**– आपदा के बारे में आंकड़ें और सूचना एकत्र करना, आपदा संभावी क्षेत्रों का मानचित्र तैयार करना और लोगों को इसके बारे में जानकारी देना। इसके अलावा संभावी क्षेत्रों में आपदा योजना बनाना, तैयारियां रखना और बचाव का उपाय करना।

(2) **आपदा के समय** – युद्ध स्तर पर बचाव व राहत कार्य, जैसे– आपदाग्रस्त क्षेत्रों में लोगों को निकालना, आश्रय स्थल निर्माण, राहत कैंप, जल, भोजन व दवाई आपूर्ति।

(3) **आपदा के पश्चात्** – प्रभावित लोगों का बचाव और पुनर्वास। भविष्य में आपदाओं से निपटने के लिए क्षमता–निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना।

भारत जैसे देश में, जहां दो–तिहाई क्षेत्र और जनसंख्या आपदा सुभेद्य है, इन उपायों का विशेष महत्त्व है। आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 और राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान की स्थापना इस दिशा में भारत सरकार द्वारा उठाए गए सकारात्मक कदम का उदाहरण है।

12.11 शब्दावली (Glossary)

- **प्रदूषण** – हवा, पानी, मिट्टी आदि का अवांछित द्रव्यों में दूषित होना, जिसका सजीवों पर प्रत्यक्ष रूप से विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- **पर्यावरण**– पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है जो किसी जीवधारी अथवा पारितंरीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं।

12.12 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 12.2.1 देखें।

2) सन्दर्भ 12.3.1 देखें।

3) सन्दर्भ 12.5 देखें।

4) सन्दर्भ 12.6.1 देखें।

12.13 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

12.14 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) भारत में प्राकृतिक आपदाओं की व्याख्या कीजिए।

2) बाढ़ किसे कहते हैं?

3) सूखे के परिणामों की व्याख्या कीजिए?

4) भूस्खलन से आप क्या समझते हैं?

5) आपदा प्रबंधन अधिनियम की व्याख्या करें।

*****

अध्याय – 13
पर्यावरणीय आन्दोलन
(Environmental Movement)

संरचना

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 पर्यावरण आन्दोलन

13.2.1 चिपको आन्दोलन

13.2.2 अप्पिको आन्दोलन

13.2.3 साइवेंट घाटी आन्दोलन

13.2.4 विश्नाई आन्दोलन

13.3 पर्यावरणीय नैतिकता

13.3.1 पर्यावरणीय नैतिकता से सम्बन्धित मुद्दे

13.3.1 पर्यावरणीय नैतिकता को बनाए रखने के उपाय

13.4 पर्यावरणीय विचार तथा जन जागरूकता

13.4.1 पर्यावरण जागरूकता के उद्देश्य

13.5 स्वयं जांच प्रश्न

13.6 सारांश

13.7 शब्दावली

13.8 स्वयं जांच उत्तर

13.9 सन्दर्भ–ग्रन्थ

13.10 अभ्यासात्मक–प्रश्न

13.0 प्रस्तावना (Introduction)

पर्यावरण आंदोलन सामाजिक आंदोलन का एक प्रकार है जिसमें व्यक्तियों, समूहों और गठबंधन की एक सरणी शामिल होती है जो पर्यावरण संरक्षण में एक आम रुचि का अनुभव करते हैं और पर्यावरण नीतियो और प्रथाओं में बदलाव लाने के लिए कार्य करते हैं (टोंग, यांकी 2005)। मुख्य पर्यावरण आंदोलनों में चिपको आंदोलन, उत्तर प्रदेश में भागीरथी और स्टॉप टिहरी परियोजना समिति, मध्य प्रदेश और गुजरात में नर्मदा आंदोलन (नर्मदा आंदोलन), युवा संगठनों और गांधीधर्मन हिल्स में आदिवासी लोगों को बचाने की है, जिनके अस्तित्व को सीधे खतरा है।

13.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय में हम जानेंगे–

- चिपको आन्दोलन के बारे में जानेंगे।
- पर्यावरण नैतिकता की विस्तृत चर्चा करेंगे।
- पर्यावरण जागरूकता उद्देश्य का पता चलेगा।

13.2 पर्यावरण आन्दोलन

भारत में पर्यावरण आंदोलन मूल रूप से लोगों के जल, जंगल और जमीन से जुड़े परम्परागत अधिकारों को पुनः स्थापित करने के संघर्ष से जुड़े हैं। ये आंदोलन आधुनिक विकास के मॉडल की आलोचना ही नहीं करते बल्कि विकल्प भी पेशे करते हैं। ऐसा विकल्प जो विकास के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण भी प्रदान करता है, लोगों के परम्परागत अधिकारों की रक्षा करता है तथा आम लोगों की विकास प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करता है। इन आंदोलनों की एक ओर विशेषता यह भी है कि इन्होंने जन आंदोलनों का रूप ग्रहण किया है जिसमें आम जनता खासकर महिलाओं तथा युवकों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। भारत में पर्यावरण आंदोलन गांधीवादी तकनीकों–अहिंसा और सत्याग्रह के प्रयोग को दर्शाते हैं। पर्यावरण आंदोलन विकास विरोधी आंदोलन नहीं हैं। ये केवल विकास को पर्यावरण संरक्षण आधारित करने विकास परियोजनाओं को सामाजिक तथा मानवीय मूल्य आधारित बनाने तथा आम आदमी के परम्परागत अधिकारों के संरक्षण तथा विकास योजनाओं में उसकी भागीदारी का समर्थन करते हैं। ये आंदोलन भारतीय राज्य के विकास की उन नीतियों पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं जो आम आदमी से उसके संसाधनों को छीनकर विशिष्ट वर्ग के हितों को संरक्षित कर रहा है तथा जो अंततः पर्यावरणीय विनाश को प्रोत्साहित कर रहा है। अतः पर्यावरणी आंदोलन विनाश तथा संसाधनों के आसमान वितरण को समाप्त कर एक पर्यावरणीय लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयास हैं। ये न केवल भारत बल्कि विश्व पर्यावरण संकट का भी एक स्थायी उत्तर प्रदान करते हैं।

13.2.1 चिपको आंदोलन

चिपको आंदोलन भारत में एक वन संरक्षण आंदोलन था। वह 1970 के दशक में उत्तराखण्ड में शुरू हुआ, फिर उत्तर प्रदेश का एक हिस्सा दुनिया भर में भविष्य के कई पर्यावरण आंदोलनों के लिए एक रैली स्थल बन गया। 1970 के दशक में, जंगलों के विनाश का एक संगठित प्रतिरोध पूरे भारत में फैल गया और इसे चिपको आंदोलन के रूप में जाना जाने लगा। आंदोलन का नाम 'आलिंगन' शब्द से आया है, क्योंकि ग्रामीणों ने पेड़ों को गले लगाया और ठेकेदारों को पेड़–पौधों को कटने से रोका।

बहुत से लोग जानते हैं कि पिछली कुछ शताब्दियों में भारत में कई समुदायों ने प्रकृति को बचाने में मदद की है। ऐसा ही एक है राजस्थान का बिश्नोई समुदाय। इस समुदाय द्वारा राजस्थान में 18वीं शताब्दी के शुरूआती भाग में लगभग 260 वर्ष पूर्व मूल चिपको आंदोलन शुरू किया गया था। जोधपुर के महाराजा के आदेश पर पेड़ों को गिरने से बचपाने के प्रयास में अमृता देवी नामक एक महिला के नेतृत्व में 84 गांवों के एक बड़े समूह ने अपना जीवन लगा दिया। इस घटना के बाद महाराजा ने सभी बिश्लोई गांवों में पेड़ों की कटाई को रोकने के लिए एक मजबूत शाही फरमान दिया।

20वीं शताब्दी में, यह उन पहाड़ियों में शुरू हुआ, जहां जंगल आजीविका का मुख्य स्रोत हैं, क्योंकि कृषि गतिविधियों को आसानी से नहीं किया जा सकता है। 1973 का चिपको आंदोलन इनमें से सबसे प्रसिद्ध था। पहली चिपको की कार्यवाही अप्रैल 1973 में ऊपरी अलकनंदा घाटी के मंडल गाँव में हुई और अगले पांच वर्षों में उत्तर प्रदेश के हिमालय के कई जिलों में फैल गई। अलकनंदा घाटी में एक खेल सामग्री कंपनी को वन क्षेत्र का एक भूखंड आवंटित करने के सरकार के फैसले से यह छिड़ गया था। इसने ग्रामीणों को नाराज कर दिया क्योंकि कृषि उपकरण बनाने के लिए लकड़ी का उपयोग करने की उनकी समान मांग को पहले नकार दिया गया था। एक स्थानीय एन.जी.ओ. (गैर सरकार संगठन), डी.जी.एस.एस. (दसोली ग्राम स्वराज संघ) से प्रोत्साहन के साथ, क्षेत्र की महिलाएं, एक कार्यकर्ता, चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में, जंगल में गई और पेड़ों के चारों ओर एक घेर बनाया।

1974 में कुछ महीने बाद, सरकार ने उत्तराखंड में रेनी गांव के पास 2,500 पेड़ी की नीलामी की घोषणा की, जो अलंकनंदा नदी की अनदेखी करते हैं। ग्रामीणों ने पेड़ों को गले लगाकर सरकार के कार्यों का विरोध किया। 24 मार्च, 1974 को जिस दिन रेनी में पेड़ों को काटने के लिए लकड़हारे थे, एक स्थानीय लड़की ने रेना गांव की महिला मंडल दल की प्रमुख गौरा देवी को सूचित किया। गौरा देवी ने गांव की 27 महिलाओं को घटना स्थल पर पहुंचाया और लकड़हारे से भिड़ गईं। टकराव हुआ और दोनों समूहों के बीच बातचीत विफल रही। लकड़हारे महिलाओं को धमकाने और गाली देने लगे, उन्हें बन्दूक से धमकाया। महिलाओं ने शांतिपूर्ण विरोध करते हुए पेड़ों को गिराने से रोकने के लिए गले लगाने का सहारा लिया। महिलाओं ने कटर से ट्रेस की रखवाली करने के लिए रात भर चौकसी की, तब लकड़हारे से कुछ भी नहीं कर पाए और उन्होंने गांव छोड़ दिया।

इस विरोध द्वारा प्राप्त सफलता ने देश के अन्य हिस्सों में भी इसी तरह के विरोध को जन्म दिया। उनमें उद्‌गम के रूप में उत्तर प्रदेश में हिमालय में गाली गलौज के खिलाफ एक सहज विरोध के रूप में, चिपको आंदोलन के समर्थकों, मुख्य रूप से गांव की महिलाओं ने, कई क्षेत्रों में पेड़ों की कटाई पर सफलतापूर्वक प्रतिबंध लगा दिया है और भारत में प्राकृतिक संसाधन नीति को प्रभावित किया है। धूम सिंह नेगी, बचनी देवी और कई अन्य गांव की महिलाओं ने सबसे पहले पेड़ों को बचाकर उन्हें गले लगाया। उन्होंने नारा लगाया– जंगलों का क्या मतलब है? मिट्‌टी, पानी और शुद्ध हवा। पहाड़ियों मे चिपको आंदोलन की सफलता ने हजारों पेड़ों को गिरने से बचा लिया।

कुछ अन्य व्यक्ति भी इस आंदोलन में शामिल हुए हैं और इसे उचित दिशा दी है। गांधीवादी कार्यकर्ता और दार्शनिक, श्री सुंदरलाल बहुगुणा जिनकी भारत की तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से अपील थी, के परिणामस्वरूप हरे रंग की कटाई पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। श्री बहुगुणा ने चिपको का नारा दिया– पारिस्थितिकी स्थाई अर्थव्यवस्था है। श्री चंडी प्रसाद भट्‌ट, चिपको आंदोलन के एक अन्य नेता हैं। उन्होंने स्थानीय लाभ के लिए वन संपदा के संरक्षण और स्थायी उपयोग के आधार पर स्थानीय उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया। श्री घनश्याम रतूड़ी, चिपको कवि, जिनके गीत पूरे उत्तर प्रदेश के हिमालय में गूंजते हैं, ने एक कविता लिखी थी जिसमें वृक्षों को गले लगाने से बचाने के लिए गले लगाने की विधि का वर्णन किया गया था। उन्होंने उत्तर प्रदेश में चिपको विरोध प्रदर्शनों को 1980 में भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के आदेश से उस राज्य के हिमालयी जंगलों में हरियाली पर 15 साल के प्रतिबंध के साथ एक बड़ी जीत हासिल की। तब से यह आंदोलन देश के कई राज्यों में फैल गया। उत्तर प्रदेश में 15 साल के प्रतिबंध के अलावा, आंदोलन ने पश्चिमी घाटों और विध्य में बाड़ लगाना बंद कर दिया है और प्राकृतिक संसाधन नीति के लिए दबाव बनाया है। जो लोगों की जरूरतों और पारिस्थितिक आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील है।

13.2.2 अप्पिको आंदोलन

चिपको आंदोलन की तरह दक्षिण भारत के अप्पिको आंदोलन को अब तीन दशक से ज्यादा हो गए हैं। दक्षिण भारत में पर्यावरण के प्रति चेतना जगाने में इसका उल्लेखनीय योगदान है। देशी बीजों से लेकर वनों को बचाने का आंदोलन लगातार कई रूपों में फैल था। अप्पिको आंदोलन के सूत्रधार पांडुरंग हेगड़े के अनुसार– करीब 34 वर्षों से वे इस मिशन में लगातार सक्रिय रहें। वे अलग–अलग तरह से पर्यावरण के प्रति चेतना जगाने की कोशिश कर रहे हैं।

80 के दशक में उभरे अप्पिको आंदोलन में पांडुरंग हेगड़े जी की ही प्रमुख भूमिका रही है। एक जमाने में दिल्ली विश्वविद्यालय से सामाजिक कार्य में गोल्ड मेडलिस्ट रहे हैं। अपनी पढ़ाई के दौरान वे चिपको आंदोलन में शामिल हुए और कई गांवों में घूमे, कार्यकर्ताओं से मिले। चिपको के प्रणेता सुन्दरलाल बहुगुणा से

मिले। यही वह मोड़ था जिसने उनकी जिन्दगी की दिशा बदल दी। कुछ समय मध्य प्रदेश के दमोह में लोगों के बीच काम किया और अपने गांव लौट आये और जीवन में कुछ सार्थक करने को तलाश करने लगे। कुछ वर्षों बाहर रहने के बाद गांव लौटे तो इलाके की तस्वीर बदली–बदली लगी। जंगल कम हो रहे हैं, हरे पेड़ कट रहे हैं। इससे पांडुरंग व्यथित हो गए, उन्हें उनका बचपन याद आ गया। उन्होंने अपने बचपन में इस इलाके में बहुत घना जंगल देखा था। हरे पेड़, शेर, हिरण, जंगली सुअर, जंगली भैंसा, बहुत से पक्षी और तरह–तरह की चिड़ियां देखी थीं, परन्तु कुछ वर्षों के अन्तराल में इसमें कमी आई।

इस सबको देखते हुए उन्होंने काली नदी के आसपास पद यात्रा की। उन्होंने देखा कि वहां जंगल की कटाई हो रही है। खनन किया जा रहा है। ग्रामीणों के साथ मिलकर कुछ करने का मन बनाया। सबसे पहले सलकानी गांव के करीब डेढ़ सौ स्त्री–पुरुषों ने जंगल की पद यात्रा की। वहां वन विभाग के आदेश से पेड़ों को कुल्हाड़ी से काटा जा रहा था। लोगों ने उन्हें रोका, पेड़ों से चिपक गए और आखिरकार, वे पेड़ों को बचाने में सफल हुए। यह आन्दोलन जल्द ही जंगल की तरह फैल गया। सलकानी के आंदोलन की चर्चा पड़ोसी सिद्दापुर तालुका और प्रदेश में दूसरे स्थानों तक पहुंच गई। यह अनूठा आंदोलन था, यह चपको की तरह था। कन्नड़ भाषा में अप्पिको शब्द चिपको का ही पर्याय है। पांडुरंग जी ने बताया–हमारा उद्देश्य जंगल को बचाना है, जो हमारे जीने के लिये और समस्त जीवों के लिए जरूरी है। हमें सबका सहयोग चाहिए पर किसी का एकाधिकार नहीं। हम सरकार की वन नीति में बदलाव चाहते हैं, जो कृषि में सहायक हो। क्योंकि खेती ही देश के बहुसंख्यकों की जीविका का आधार है। चिपको आंदोलन हिमालय में 70 के दशक में उभरा था और देश–दुनिया में इसकी काफी चर्चा हुई थी। पर्यावरा के प्रति चेतना जगाने का यह शायद देश में पहला आंदोलन था। चिपको के प्रणेता सुन्दरलाल बहुगुणा ने अप्पिको पर बनी फिल्म में चिपको की शुरूआत कैसे हुई, इसकी कहानी सुनाई है। उन्होंने उस महिला से सवाल किया, जो सबसे पहले पेड़ को बचाने के लिए उससे चिपक गई थी, आप को यह विचार कैसे आया? महिला ने जवाब दिया– कल्पना करें कि मैं अपने बच्चे के साथ जंगल जा रही हूँ और जंगल से भालू और शेर आ जाएं। तब मैं उन्हें देखते ही अपने बच्चे को सीने लगा लूँगी और उसे बचा लूँगी। इसी प्रकार जब पेड़ों को काटने के लिए चिन्हित किया गया तो मैंने सोचा मैं उसे गले से लगा लूँ, वे मुझे नहीं मारेंगे और पेड़ बच जाएंगे। इस तरह चिपको का विचार सभी जगह फैल गया।

चिपको से प्रभावित अप्पिको आंदोलन भी कर्नाटक के सिरसी से होते हुए दक्षिण भारत में फैलने लगा। इसके लिये कई यात्राएं की गई, स्लाइड शो और नुक्कड़ नाटक किए गए। सागौल और यूकेलिप्टस के वृक्षारोपण का काफी विरोध किया गया। क्योंकि इससे जैव विविधता का नुकसान होता। यहां न केवल बहुत समृद्ध जैवविविधता है बल्कि सदानीरा पानी के स्रोत भी हैं।

शुरूआती दौर से आंदोलन को दबाने की कोशिश की, परन्तु यह आंदोलन जनता में बहुत लोकप्रिय हो चुका था और पूरी तरह अहिंसा पर आधारित था। जगह–जगर लोग पेड़ों से चिपक गए और उन्हें कटने से बचाया। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार ने हरे वृक्षों की कटाई पर कानूनी रोक लगाई, जो आंदोलन की बड़ी सफलता थी। इसके अलावा, दूसरे दौर में लोगों ने अलग–अलग तरह से पेड़ लगाए। इस आंदोलन का विस्तार बड़े बांधों का विरोध हुआ। इसके दबाव में केन्द्र सरकार ने माधव गाडगिल की अध्यक्षता में गाडगिल समिति बनाई। यहां हर साल अप्पिको की शुरूआत वाले दिन 8 सितम्बर को सहयाद्री दिवस मनाया जाता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जो अप्पिको आंदोलन कर्नाटक के पश्चिमी घाट में शुरू हुआ था, अब वह फैल गया है। इस आंदोलन ने एक नारा दिया था उलीसू, बेलासू और बालूसू। यानी जंगल बचाओ, पेड़ लगाओ और उनका किफायत से इस्तेमाल करो। यह आंदोलन आम लोगों और उनकी जरूरतों से जुड़ा है, यही कारण है कि इनते लम्बे समय तक चल रहा है। अप्पिको को इस इलाके में आई कई विनाशकारी परियोजनाओं को रोकने में सफलता मिली, कुछ में सफल नहीं भी हुए। लेकिन अप्पिको का दक्षिण भारत में वनों को बचाने के साथ पर्यावरण चेतना जगाने में अमूल्य योगदान हमेशा ही याद किया जाएगा।

13.2.3 साइलेंट घाटी आंदोलन

केरल की शांत घाटी 89 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में है जो अपनी घनी जैवविधिता के लिए मशहूर है। 1980 में यहां कुंतीपूंझ नदी पर कुंदरेमुख परियोजना के अंतर्गत 200 मेगाबाट बिजली निर्माण हेतु बांध का प्रस्ताव रखा गया। केरल सरकार इस परियोजना के लिए बहुत इच्छुक थी लेकिन इस परियोजना के विरोध में वैज्ञानिकों, पर्यावरण कार्यकर्ताओं तथा क्षेत्रिय लोगों के आवाज गूंजने लगे। इनका मानना था कि इससे इस क्षेत्र के कई विशेष फूलों, पौधों तथा लुप्त होने वाली प्रजातियों को खतरा है। इसके अलावा यह पश्चिमी घाट की कई सदियां पुरानी संतुलित पारिस्थितिकी को भारी हानि पहुंचा सकता है। लेकिन राज्य सरकार इस परियोजना को किसी की परिस्थिति में सम्पन करना चाहती थी। अंत में तत्कालीन प्रधामंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस विवाद में मध्यस्था की और अंततः राज्य सरकार को इस परियोजना को स्थगित करना पड़ा जो घाटी के पारिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखने में मील का पत्थर साबित हुआ।

वनस्पति विज्ञान के शिक्षक एमके प्रसाद भी साइलेंट वैली में हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट के खतरों को भांप चुके थे। वे केरल शास्त्र साहित्य परिषद (के.एस.एस.पी.) नाम के एक लोक विज्ञान आंदोलन से जुड़े थे। परिषद् की पत्रिका में उन्होंने साइलेंट वैली में बांध निर्माण की योजना के खिलाफ एक लेख लिखा। इस लेख को खूब प्रतिक्रियाएं मिलीं। जल्द ही एक मुद्दा मीडिया और जन सभाओं में चर्चित हो गया। बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, फ्रेंड्स ऑफ ट्रीज सोसायटी और वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड जैसी संस्थाएं ने भी इस अभियान को समर्थन देना शुरू कर दिया।

हालांकि, केरल राज्य विद्युत मंडल ने इस मुद्दे को अपने पक्ष में मोड़ने के भरसक प्रयास किए। तर्क दिया कि परियोजना से उत्तर केरल के इलाकों में बिजली पहुंचेगी, जबकि बांध से जंगल का एक छोटा–सा हिस्सा (830 हैक्टेयर) ही डूबेगा। लोगों को यहां तक समझाने की कोशिश की गई कि साइलेंट वैली में दरअसल कुछ भी खास नहीं है। लेकिन साइलेंट घाटी बचाओ आंदोलन के समर्थकों ने इन दावों को नकार दिया। तब तक कई प्रोफैसर, वैज्ञानिक और तत्कालीन व पूर्व नौकरशाह अभियान से जुड़ चुके थे। प्रसाद बताते हैं कि 'दि हिंदू' और 'इंडियन एक्सप्रेस' को छोड़कर मंडल पूरे अंग्रेजी और मलयाली मीडिया को बांध के पक्ष में करने में कामयाब हो गया था। इन्होंने प्रसाद पर अमेरिकी एजेंट होने के आरोप भी लगाए। उन्हें परोक्ष रूप से जान से मारने की धमकियां भी दी गई।

इस बीच, सरकार ने जलविद्युत परियोजना से साइलेंट वैली के पर्यावरण पर पड़ने वाले असर को जानने के लिए कई समितियों का गठन किया। विशेषज्ञों ने पहली बार साइलेंट वैली की समृद्ध जैव–विविधता के सर्वेक्षण के लिए वहां का दौरा किया। एक समिति ने पर्यावरण को बचाने के लिए सुरक्षात्मक उपायों का सुझाव दिया, जिसे केरल सरकार ने तुरंत स्वीकार कर लिया। तत्कालीन कृषि सविच एम.एस. स्वामीनाथ की अध्यक्ष्यता वाली एक अन्य समिति ने परियोजना को खारिज करने की सिफारिश की। यह लड़ाई अदालतों में भी लड़ी गई। सन 1980 में जब इंदिरा गांधी दूसरी बार प्रधानमंत्री बनीं तो उन्होंने केरल सरकार से बांध का काम तक तक रोकने को कहा, जब तक परियोजना के प्रभाव का पूरा मूल्यांकन नहीं हो जाता। इसका नतीजा यह हुआ कि एम.जी.के. मेनन की अध्यक्षता में केंद्र और राज्य की एक संयुक्त समिति बनाई गई। अपनी रिपोर्ट में समिति ने कहा कि 830 हैक्टेयर का जो क्षेत्र बांध की वजह से डूबेगा, वह प्राकृति द्वारा संजोये गए आवाजाही बढ़ेगी और जैव–विविधता पर बुरा असर पड़ सकता है जिससे पूरा इको–सिस्टम गड़बड़ा जाएगा। आखिर 15 नवम्बर, 1984 को साईलेंट वैली को राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर दिया गया। देश के पर्यावरण इतिहास में यह ऐतिहासिक क्षण था। इससे पहले पर्यावरण संरक्षण आमतौर पर वृक्षारोपण तक सीमित समझा जाता था, लेकिन इस आंदोलन ने देश को एक नई दृष्टि दी। विकास योजनाओं की मंजूरी से पहले पर्यावरण पर इसके असर के मूल्यांकन यानी एन्वायरनमेंट इम्पैक्ट असेस्मेंट (ई.आई.ए) का विचार यहीं से जन्मा और जन सुनवाई अनिवार्य हो गई। प्रसाद कहते हैं, मैं बहुत किस्मत वाला हूँ कि ऐसे आंदोलन का हिस्सा बन सका।

13.2.4 बिश्नाई आंदोलन

विकास की अंधी दौड़ में इंसानों ने पर्यावरण को तहस–नहस कर दिया है। अपने महत्त्वकांक्षी प्रॉजेक्ट्स के लिए कई बार सरकार ने जंगलों का दोहन किया, नदियों को बांधा और लाखों पेड़ कटवा लिए। लेकिन ऐसे में कई बार अपने पर्यावरण के लिए खुद स्थानीय लोगों ने लड़ाइयां लड़ी।

बिश्नोई आंदोलन मध्यकालीन राजस्थान से हमें पर्यावरण चेतना का एक सुदूर उदाहरण मिलता है। विश्नोई सम्प्रदाय के संस्थापक जम्भोजी (1451–1536ई.) द्वारा अपने अनुयायियों के लिए 29 नियम दिए गए थे।

राजस्थान का बिश्नोई समुदाय। इस समुदाय द्वारा राजस्थान में 18वीं शताब्दी के शुरूआती भाग में लगभग 260 साल पहले मूल चिपको आंदोलन शुरू किया गया था। जोधपुर के महाराज के आदेश पर पेड़ों को गिरने से बचाने के प्रयास में अमृता देवी नामक एक महिला के नेतृत्व में 84 गांवों के एक बड़े समूह ने अपना जीवन लगा दिया।

1730 में जोधपुर के राजा अभय सिंह ने महल बनवाने के लिए लकड़ियों का इंतजाम करने के लिए अपने सैनिकों को भेजा। महाराज के सैनिक पेड़ काटने के लिए राजस्थान के खेजरी गांव में पहुंचे ते वहां की महिलाएं अपनी जान की परवाह किए बिना पेड़ों को बचाने के लिए आ गई। विश्नोई समाज के लोग पेड़ों की पूजा करते थे। सबसे पहले अमृता देवी सामने आई और एक पेड़ से लिपट गई। उन्हें अपनी जान गंवानी पड़ी। उन्हें देखकर उनकी बेटियां भी पेड़ों से लिपट गई। उनकी भी जान चली गई। यह खबर जब गांव में फैली तो गांव की 300 से ज्यादा महिलाएं पेड़ों को बचाने के लिए पहुंच गई और अपने प्राणों का बलिदान दे दिया। इस घटना के बाद, महाराजा ने सभी बिश्नोई गांवों में पेड़ों की कटाई को रोकने के लिए एक मजबूत शाही फरमान दिया।

13.2.5 नर्मदा बचाओ आंदोलन

नर्मदा बचाओ आंदोलन भारत में चल रहे पर्यावरण आंदोलनों की परिपक्वता का उदाहरण है। इसने पहली बार पर्यावरण द्वारा विकास के संघर्ष को राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बनाया जिसमें न केवल विस्थापित लोगों बल्कि वैज्ञानिकों, गैर सरकारी संगठनों तथा आम जनता की भी भागीदारी रही। नर्मदा नदी पर सरकार सरोवर बांध परियोजना का उद्घाटन 1961 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने किया था। लेकिन तीन राज्यों–गुजराज, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान के मध्य एक उपयुक्त जल वितरण नीति पर कोई सहमति नहीं बन पायी। 1969 में, सरकार ने नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण का गठन किया ताकि जल सम्बन्धी विवाद का हल करके परियोजना का कार्य शुरू किया जा सके। 1979 में न्यायाधिकरण सर्वसम्मति पर पहुंचा तथा नर्मदा घाटी परियोजना ने जन्म लिया जिसमें नर्मदा नदी तथा उसकी 4134 नदियों पर दो विशाल बांधों गुजरात में सरदार सरोवर बांध तथा मध्य प्रदेश में नर्मदा सागर बांध, 28 मध्यम बांध तथा 3000 जल परियोजनाओं का निर्माण शामिल था। 1985 में इसे परियोजना के लिए विश्व बैंक ने 450 करोड़ डॉलर का लोन देने की घोषणा की सरकार के अनुसार इस परियोजना से मध्य प्रदेश, गुजरात तथा राजस्थान के सूखा ग्रस्त क्षेत्रों की 2.27 करोड़ हैक्टेयर भूमि को सिंचाई के लिए जल मिलेगा, बिजली का निर्माण होगा, पीने के लिए जल मिलेगा तथा क्षेत्र में बाढ़ को रोका जा सकेगा। नर्मदा परियोजना ने एक गंभीर विवाद को जन्म दिया है। एक ओर इस परियोजना को समृद्धि तथा विकास का सूचक माना जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई, पेयजल की आपूर्ति, बाढ़ पर नियंत्रण, रोजगार के नये अवसर, बिजली तथा सूखे से बचाव आदि लाभों को प्राप्त करने की बात की जा रही है वहीं दूसरी ओर अनुमान है कि इससे तीन राज्यों की 37000 हैक्टेयर भूमि जलमग्न हो जाएगी जिसमें 13000 हैक्टेयर वन भूमि है। यह भी अनुमान है कि इससे 248 गांव के एक लाख से अधिक लोग विस्थापित होंगे। जिनमें 58 प्रतिशत लोग आदिवासी क्षेत्र के हैं।

इस परियोजना के विरोध ने अब एक जन आंदोलन का रूप ले लिया है। 1980–87 के दौरान जन–जातियों के अधिकारों की समर्थक गैर सरकारी संस्था ऑक वाहनी के नेता अनिल पटेल ने जनजातीय लोगों के पुर्नवास के अधिकारों को लेकर हाई कोर्ट व सर्वोच्च न्यायालय में लड़ाई लड़ी। सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के परिणामस्वरूप गुजरात सरकार ने दिसम्बर 1987 में एक पुर्नवास नीति घोषित की। दूसरी ओर 1989 में मेधा पाटेकर द्वारा लाए गए नर्मदा बचाओ आंदोलन ने सरदार सरोवर परियोजना तथा इससे विस्थापित लोगों को पुर्नवास की नीतियों के क्रियांवयन की कमियों को उजागर किया है। शुरू में आंदोलन का उद्देश्य बांध को रोककर पर्यावरण विनाश तथा इससे लोगों के विस्थापन को रोकना था। बाद में आंदोलन का उद्देश्य बांध के कारण विस्थापित लोगों को सरकार द्वारा दी जा रही राहत कार्यों की देख–रेख तथा उनके अधिकरों के लिए न्यायालय में जाना बन गया। आंदोलन की यह भी मांग है कि जिन लोगों की जमीन ली जा रही है उन्हें योजना में भागीदारी का अधिकार होना चाहिए, उन्हें अपने लिए न केवल उचित भुगतान का अधिकार होना चाहिए बल्कि परियोजना के लाभों में भी भागीदारी होनी चाहिए। इस प्रक्रिया में नर्मदा बचाओ आंदोलन ने वर्तमान विकास के मॉडल पर प्रश्नचिन्ह लगाया है।

नर्मदा बचाओ आंदोलन जो एक जन आंदोलन के रूप में उभरा, कई समाजसेवी, पर्यावरणविदों, छात्रों, महिलाओं, आदिवासियों, किसानों तथा मानव अधिकार कार्यकर्त्ताओं का एक संगठित समूह बना। आंदोलन ने विरोध के कई तरीके अपनाए जैसे– भूख हड़ताल, पदयात्राएं, समाचार पत्रों के माध्यम से, फिल्मी कलाकारों तथा हस्तियों को अपने आंदोलन में शामिल कर अपनी बात आम लोगों तथा सरकार तक पहुंचाने की कोशिश की। इसके मुख्य कार्यकर्त्ताओं में मेधा पाटेकर के अलावा अनिल पटेल, बुकर सम्मान से नवाजी गयी अरुणधती रॉय, बाबा आम्टे आदि शामिल हैं।

13.3 पर्यावरणीय नैतिकता (Environmental Ethics)

पर्यावरणीय नैतिकता का सम्बन्ध प्राकृतिक पर्यावरण के साथ मनुष्यो के नैतिक सम्बन्धों से है, यह इस तथ्य को प्रकट करती है कि पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीवों को जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है। प्रकृति को नष्ट करके हम सभी जीवों के जीवन जीने के इस अधिकार को अस्वीकृत करते हैं।

पर्यावरणीय नीतिशास्त्र व्यवहारिक दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जिसके अंतर्गत आस–पास के पर्यावरण के संरक्षण से संबंधित नैतिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् मनुष्य एवं पर्यावरण के आपसी संबंधों का नैतिकता के सिद्धान्तों एवं नैतिक मूल्यों के आलोक में अध्ययन किया जाता है। मुख्यतः मनुष्य के उन क्रियाकलापों का नैतिक आधार पर मूल्यांकन किया जाता है जिससे पर्यावरण प्रभावित होता है।

पर्यावरणीय नैतिकता इस विश्वास पर आधारित है कि मनुष्य के साथ–साथ पृथ्वी के जैवमण्डल में निवास करने वाले विभिन्न जीव–जन्तु, पेड़–पौधे भी समाज का हिस्सा है।

13.3.1 पर्यावरणीय नैतिकता से संबंधित मुद्दे

- **प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग** : प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग एवं अत्यधिक दोहन से पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो रही है क्योंकि मानव प्रकृति का हिस्सा है, अतः प्रकृति के साथ सहयोग एवं समन्वय स्थापित करके प्राकृतिक संसाधनों का धारणीय उपयोग किया जा सकता है।
- **वनों का विनाश** : बड़े–बड़े उद्योगों एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों की स्थापना हेतु वनों की अंधाधुंध कटाई की जा रही है। इसके अलावा कृषि के लिए भी वनों का सफाया किया जा रहा है।
- वनों के विनाश से न केवल गरीब एवं जनजातीय लोगों जो कि आजीविका हेतु वनों पर निर्भर रहते हैं, पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है बल्कि जैव विविधता में भी कमी आ रही है।

- निर्वनीकरण के कारण पशु–पक्षियों के निवास स्थान समाप्त हो रहे हैं अतः वनों का संरक्षण पर्यावरणीय नैतिकता से संबंधित है।

13.3.2 पर्यावरणीय नैतिकता को बनाये रखने के उपाय

- अमेरिकी विद्वान् एल्डो लियोपोल्ड ने 'भूमि नैतिकता' की अवधारणा प्रस्तुत की है। उन्होंने कहा है कि हमें भूमि को संसाधन मात्र समझने के विचार को रोकना/त्यागना होगा।
- पृथ्वी पर मानवीय एवं गैर मानवीय कल्याण एवं समृद्धि स्वयं में एक मूल्य है। यह मूल्य मानवीय उद्देश्यों के लिए गैर मानवीय जीवन की उपयोगिता से स्वतंत्र है।
- प्राकृतिक संसाधनों की समृद्धि एवं विविधता का स्वयं में ही मूल्य है, अतः मानव को यह समझना होगा कि इनके दोहन का अधिकार इसे नहीं है।
- मानव जीवन एवं संस्कृति की समृद्धि के लिए जनसंख्या को नियंत्रित करना भी आवश्यक है। गैर मानव जीवन की समृद्धि के लिए भी जनसंख्या में कमी करने की आवश्यकता है।
- आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।
- प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग को रोककर संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है।
- पर्यावरण संरक्षण की पारम्परिक गतिविधियों को व्यवहार में लाने की आवश्यकता है।

13.4 पर्यावरण विचार तथा जन जागरूकता (Environment Commmunication and Replic Awareness)

पर्यावरण संचार सूचना का प्रसार और पर्यावरण से संबंधित संचार प्रथाओं का कार्यान्वयन है। शुरुआत में, पर्यावरण संचार का एक संकीर्ण क्षेत्र था। हालांकि आज यह एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें अनुसंधान और अभ्यास शामिल है कि कैसे विभिन्न अभिनेता जैसे संस्थान, राज्य, लोग पर्यावरण से संबंधित विषयों के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं और सांस्कृतिक उत्पाद पर्यावरण की ओर समाज को कैसे प्रभावित करते हैं। पर्यावरण संचार में पर्यावरण के साथ मानवीय अंतः क्रियाएं भी शामिल है। इसमें पारस्परिक संचार और आभासी समुदायों से लेकर भागीदारी निणर्य लेने और पर्यावरण मीडिया कवरेज तक संभावित बातचीत की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। अभ्यास के दृष्टिकोण से, अलेक्जेंडर फलोर पर्यावरण प्रबंधन और संरक्षण के लिए संचार दृष्टिकोण, सिद्धान्तों, रणनीतियों और तकनीकी के अनुप्रयोग के रूप में पर्यावरण संचार को परिभाषित करता है। पर्यावरण संचार, पारंपरिक, अलंकारिक सिद्धान्त से अलग होकर, संयुक्त राज्य अमेरिका में 1980 के दशक के आसपास उभरा। एक अकादमिक क्षेत्र के रूप में, पर्यावरण संचार, पर्यावरण अध्ययन पर्यावरण विज्ञान, जोखिम विश्लेषण और प्रबंधन समाजशास्त्र और राजनीतिक परिस्थितिकी से जुड़े। अतः विषय कार्यों से उभरा। अलैक्जेंडर लोर पर्यावरण संचार को पर्यावरण विज्ञान में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं, जिसे वे ट्रांसडिसिप्लिनरी मानते हैं। लोर के अनुसार पर्यावरण संचार में यह आवश्यक है– परिस्थितिकी कानूनों का ज्ञान, सांस्कृतिक आयाम के प्रति संवेदनशीलता, प्रभावी ढंग से नैटवर्क की क्षमता, पर्यावरण नैतिकता की प्रशंसा और अभ्यास, संघर्ष समाधान मध्यस्थता। जलवायु संचार पर्यावरण संचार और विज्ञान संचार का एक क्षेत्र है जो मानव जनित जलवायु परिवर्तन के कारणों, प्रकृति और प्रभावों पर केंद्रित है। इस क्षेत्र में अनुसंधान 1990 के दशक में उभरा और तब से मिडिया, वैचारिक निर्धारण और सार्वजनिक जुड़ाव और प्रतिक्रिया से संबंधित अध्ययनों को शामिल करने के लिए इसमें वृद्धि और विविधता हुई है। इंटरनेट की उपस्थिति में सशक्त तकनीकी सफलाताएं भी पर्यावरण समस्याओं में योगदान दे रही है। वायु प्रदूषण, अम्ल वर्षा, ग्लोबल वार्मिंग और प्राकृतिक स्त्रोतों में कभी भी आनलाइन तकनीकी का परिणाम है। इन मुद्दों से निपटनें में मदद करने के लिए 'ग्रीन वेबसाइट' जैसी

धारणाएं सामने आई हैं। 'ग्रीन वेबसाइट' जलवायु के अनुकूल नीतियों से जुड़ी है और इसका उद्देश्य पृथ्वी के प्राकृतिक आवास में सुधार करना है। नवीकरणीय स्त्रोत, काले रंग का उपयोग और पर्यावरण संबंधी समाचारों का मुख्य आकर्षण जलवायु के मुद्दों पर सकारात्मक योगदान देने के कुछ सबसे आसान व सस्ते तरीके हैं। उपरोक्त शब्द 'ग्रीन कंप्यूटिंग' की छतनी के नीचे है, जिसका उद्देश्य कार्बन पदचिन्ह, ऊर्जा खपत को सीमित करना और कंप्यूटिंग प्रदर्शन को लाभ पहुंचाना है।

पर्यावरण जागरूकता पर्यावरण संबंधी तथ्यों, प्रत्ययों, प्रक्रियाओं का ज्ञान तथा बोध कराया जाता है। पर्यावरण के कारकों तथा घटकों की पारस्परिक निर्भरता, समस्याओं तथा समाधान की जानकारी प्रदान की जाती है। इस प्रकार पर्यावरण जागरूकता का अर्थ है–

1. भौतिक पर्यावरण, पौधे, जानवर तथा मनुष्य पारस्परिक संबंध व निर्भरता को पहचान और अभिवृद्धि तथा विकास को समझना।
2. सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास हेतु व्यक्तिगत रूप में या सामूहिक रूप में क्रियाओं को आरंभ करना।
3. पर्यावरण के अंतर्गत मानवीय सामग्री, स्थान तथा समय और स्रोतों को पहचानना। जिससे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास एवं अभिवृद्धि की जा सके।
4. प्राकृतिक स्रोतों के उपयोग के लिए निणर्य लेना तथा उनके महत्त्व को समझना और समुदाय प्रयासों में सहायता करना जिससे उनका विशिष्ट उपयोग हो सके।

पर्यावरण जागरूकता पर्यावरण शिक्षा का ही मुख्य अंग है। पर्यावरण शिक्षा में वास्तविक ज्ञान की अनुभूति कराई जाती है। भावात्मक पक्ष का विकास अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें पर्यावरण के कारकों तथा घटकों की पारस्परिक निर्भरता, समस्याओं तथा समाधान की सामग्री प्रदान की जाती है। पर्यावरण प्रदषणों की जानकारी दी जाती है और प्रदूषणों का भी ज्ञान दिया जाता है। मानवीय जनसंख्या वृद्धि का परिस्थितिकी पर प्रभाव की जानकारी दी जाती है।

पर्यावरण हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। पर्यावरण के प्रभाव का अध्ययन किए बिना जीवन को समझ पाना असंभव है। पर्यावरण की रक्षा करने में लापरवाही बरतने का अर्थ अपना विनाश करना है। हम अपने दैनिक जीवन में पर्यावरणीय संसाधनों का प्रयोग करते हैं। मानव की सभी क्रियाओं का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। पर्यावरणीय मुद्दे महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनके समाधान के बिना स्थिति बहुत भयावह होगी। यदि पर्यावरणीय समस्याओं को हल नहीं किया गया तो यह पृथ्वी भावी पीढ़ी के रहने योग्य नहीं रहेगी। इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भविष्य को सम्भव बनाने के लिए पर्यावरण की रक्षा एवं बचाव अनिवार्य है। आज अक्षम विकास तथा परिवर्तनशील पर्यावरण के सुधार एवं संरक्षण की आवश्यकता है।

13.4.1 पर्यावरण जागरूकता के उद्देश्य

1. पर्यावरण समस्याओं के प्रति जागरूकता का विकास करना।
2. पर्यावरण के घटक, प्रकृति, चक्र, प्राकृतिक संसाधन, प्रदूषण, संरक्षण संबंधी ज्ञान उपलब्ध कराना।
3. छात्रों में अवलोकन, भाषा प्रयोग, सारणीयन, संग्रह, एकत्रीगण, चित्रण, सामाजिक दायित्वों का ज्ञान, समूह में काम करना, चित्रांकन करने के कौशलों का विकास करना।
4. पर्यावरणीय प्रयास, उपाय, कार्यकलापों, अवधारणाओं के संदर्भ में मूल्यांकन करने की योग्यता का विकास करना।

5. शहरीकरण, बढ़ती जनसंख्या, प्राकृतिक स्रोतों की कमी के प्रभाव को जानना, समझना सक्रिय चिंतन व व्यवहार करने के लिए प्रेरित करना।
6. राष्ट्रीय धरोहर, वन संपदा, जैव विविधता को जानना, समझना तथा प्रकृति से लगाव रखने की अभिव्यक्ति को विकसित करना।

13.5 स्वयं जांच प्रश्न (Self Check Questions)

1) पर्यावरण आन्दोलन से आप क्या समझते हैं?

2) नर्मदा बचाओ आन्दोलन की व्याख्या कीजिए।

3) पर्यावरण नैतिकता से आप क्या समझते हैं?

13.6 सारांश (Summary)

भारत में पर्यावरण आन्दोलन मूल रूप से लोगों के जल, जंगल और जमीन से जुड़े परम्परागत अधिकारों को पुनः स्थापित करने के संघर्ष से जुड़े हैं। पर्यावरण नैतिकता इस विश्वास पर आधारित है कि मनुष्य के साथ–साथ पृथ्वी के जैवमण्डल में निवास करने वाले विभिन्न जीव–जंतु, पेड़–पौधे भी समाज का हिस्सा है।

13.7 शब्दावली (Glossary)

- **आन्दोलन** – संगठित तथा तंत्र या व्यवस्था द्वारा शोषण और अन्याय किए जाने के बोध से उसके खिलाफ पैदा हुआ संगठित और सुनियोजित अथवा स्वतः स्फूर्त सामूहिक संघर्ष है।
- **चेतना**– कुछ जीवधारियों में स्वयं के और अपने आसपस के वातावरण के तत्त्वों का बोध होने, उन्हें समझने तथा उनकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।
- **राज्य**– उस संगठित इकाई को कहते हैं जो एक शासन के अधीन हो।

13.8 स्वयं जांच उत्तर (Self Check Answer)

1) सन्दर्भ 13.2 देखें।

2) सन्दर्भ 13.2.5 देखें।

3) सन्दर्भ 13.3 देखें।

13.9 सन्दर्भ–ग्रन्थ (Suggested Readings)

1. गलीसन, बी. व लोअ, एन., वैश्विक नैतिकता और पर्यावरण, लंदन, रोटलेज, 1999
2. ग्रोम, मार्था जे., गारी के. मेफी व कार्ल रोनाल्ड केरोल, संरक्षण जीव विज्ञान के सिद्धान्त, सुन्दरलैंड, 2006
3. मैक कुली, पी., नदियां अब और नहीं : बांधों के प्रभाव, जेड बुक्स, पृष्ठ 29–64
4. राव एम.एन. व दत्ता ए.के., व्यर्थ पानी का उपचार, ऑक्सफोर्ड व आई.बी.एच. पब्लिशिंग को.प्रा.लि., 1987
5. रेवन, पी.एच. हसनजाहल, डी.एम. व बैग, एल.आर., पर्यावरण, जोहन वीले व सन्स, 2012
6. रोसेनक्रेंस ए., दीवान एस. व नोबल एम.एल., भारत में पर्यावरण कानून और नीति, 2001
7. सिंह जे.एस., सिंह एस.पी. व गुप्ता एस. आर., पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान और संरक्षण, एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014
8. पर्यावरण व विकास पर विश्व आयोग, हमारा सांझा भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987

9. वीलसन ई.ओ., सृष्टि : पृथ्वी पर जीवन बचाने की अपील, न्यूयार्क, 2006
10. गनिंबाईन आर. एडवर्ड व पंडित एम.के., भारत में हिमालय बांधों से खतरा, साईंस, 339 : 36–37, 2013

13.10 अभ्यासात्मक–प्रश्न (Terminal Questions)

1) चिपको आन्दोलन की विस्तारपूर्वक व्याख्या करें।
2) पर्यावरण नैतिकता को बनाए रखने के क्या उपाय है?
3) पर्यावरण जागरूकता के उद्देश्य क्या–क्या है?

*****

स्नातक अनिवार्य पाठ्यक्रम
AECC

कोर्स कोड : ENVS-2

पर्यावरण विज्ञान

अध्याय : 1 से 13

लेखक : डॉ. महेन्द्र ठाकुर

अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं मुक्त-अध्ययन केन्द्र
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ
समरहिल शिमला -171005

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
अध्याय – 1	पर्यावरण व पर्यावरण अध्ययन **(Environment and Environment Studies)**	1
अध्याय – 2	पारिस्थितिक तंत्र **(Ecosystem)**	13
अध्याय – 3	जैव विविधता व लुप्तप्राय प्रजातियां **(Biodiversity & Endangered Species)**	24
अध्याय – 4	संधारणीयता एवं सतत् विकास **(Sustainability and Sustainable Development)**	39
अध्याय – 5	प्रकृति संसाधन : भूमि संसाधन, भूमि अवनयन, मृदा अपरद व मरूस्थलीकरण के कारण व परिणाम **(Natural Resource : Land Resource, Land Erosion, Soil Erosion and Desertification cause and Effect)**	52
अध्याय – 6	बांध, वन, जल–कारण व प्रभाव **(Cause and Effect of Dam, Forest and Water)**	62
अध्याय – 7	सूखा, जल संघर्ष तथा ऊर्जा संसाधन के स्रोत **(Drought, Water Conflict and Sources of Energy Resource)**	70
अध्याय – 8	पर्यावरण प्रदूषण तथा उसके प्रकार **(Environment Pollution and Their Types)**	79
अध्याय – 9	जलवायु परिवर्तन **(Climate Change)**	95
अध्याय – 10	पर्यावरण नीतियां तथा कानून **(Environmental Laws and Act)**	113
अध्याय – 11	मानवीय जनसंख्या वृद्धि **(Human Population Growth)**	126
अध्याय – 12	प्राकृतिक संकट तथा आपदाएं	**139**
अध्याय – 13	पर्यावरणीय आन्दोलन **(Environmental Movement)**	155